इन्सानियत फिर भी जीवित है

हमारा रोचक कहानी तथा उपन्यास साहित्य

इन्सानियत फिर भी जीवित है

[एक सामाजिक उपन्यास]

लेखक

क रु णे न्द्र

१९५७

आत्माराम एण्ड सन्स
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य
तीन रुपया

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली-६

अन्याय
विषमता
एवं
दुर्जनता
के
क्रूर हाथों में
पलती हुई
उन कोटि-कोटि
कुंठित
शोषित
एवं
पीड़ित प्रतिभाओं को
मेरे
स्नेह का यह शब्द-पुष्प

दो शब्द

आठ वर्षों के सामाजिक जीवन के अन्वेषण एवं कुछ पुस्तकों के अध्ययन के उपरान्त मुझे इस बात की ओर विवश होना पड़ा कि मैं अपने कुछ विचार गद्य में प्रकट करूँ, अतः इसके लिए मुझे एक ऐसे कथानक की प्रेरणा मिली जो सर्वथा संघर्षशील, आशावादी और जीवन की अनेक कुंठित भावनाओं को अपने में समाविष्ट किये हुए था। जिसमें आदर्शवादी तथा यथार्थवादी विचारधारा का कठिनतम संघर्ष था और जो मुझे कल्पना एवं यथार्थ के बीच की कड़ी के समान दृष्टिगत हुआ। मैंने इस उपन्यास को इसी कथानक पर आधारित किया।

जीवन के उपवन में विनाश, संघर्ष और निराशा के तत्व बिखरे हुए हैं, तथापि इन्सानियत की आशाओं की सौरभ से भी वह रिक्त नहीं है, कुछ मुझे ऐसा ही प्रतीत होता रहा है। सुख-दुःख की भावानुभूति प्रत्येक मनुष्य को होती है, फिर भी न जाने क्यों वह अपने आत्महित में दूसरों के दुःखों की उपेक्षा कर देता है, यही बात आज न्याय एवं मानवता की कुंठा का एकमात्र कारण है। जब-जब मुझे मनुष्यता एवं न्याय की अन्तरात्मा बिलखती हुई दिखाई पड़ी, मैं अपने हृदय की करुणा के उद्रेक को न रोक सका और जो अक्षरों एवं वाक्यों में अंकित होकर उपन्यास का स्वरूप बन गयी।

उपन्यास के सम्बन्ध में मैं कुछ अधिक लिखूँ अथवा बड़े-बड़े उपन्यासकारों एवं आलोचकों के मन्तव्यों को अभिव्यक्त करूँ, मैं सोचता हूँ समीक्षा का यह मापदण्ड तो आपके पास होगा ही। इसे पढ़ने के उपरान्त आपको अपना व्यक्तिगत मन्तव्य अभिव्यक्त करने का पूर्णाधिकार है ही, अतः आप स्वयं ही इसे पढ़कर देख लेंगे और यदि मैं आपके विचार से अपनी लड़खड़ाती हुई लेखनी से कुछ उचित बात कह सकने में समर्थ हो सका तो इसके लिए मुझे प्रसन्नता ही होगी।

इस उपन्यास के सम्बन्ध में एक बात कह देना मैं उचित समझूँगा कि इसमें वर्तमान सामाजिकता का ही विशेष रूप से चित्रण है, अतः समस्याओं के अनुकूल पात्र आये हैं जो सर्वथा कल्पित हैं और कहीं-कहीं पर स्थान आदि भी। यह कोई व्यक्तिगत कुंठा का प्रतिबिम्ब नहीं बल्कि आज की तृषित एवं शोषित मानवता का आर्त्तविलाप है जिसे दुर्जनता अपने क्रूर हाथों से खाये जा रही है। बहुत से मित्रों, उपन्यासकारों एवं आलोचकों का यह कहना कि मैं कहीं-कहीं पर उपदेशक-सा हो गया हूँ, किन्हीं अंशों तक ठीक भी हो सकता है, किन्तु मैंने मानव जीवन में वार्तालाप को ही प्रधान न समझकर उसकी चिन्तन आदि अवस्थाओं को अधिक महत्वपूर्ण समझा है जिनमें मनुष्य के मस्तिष्क में आदर्श और यथार्थ का एक अन्तर्द्वन्द छिपा रहता है तथा जिसकी प्रेरणा से ही उसके कार्यों का निरूपण होता है। ये विचार ही उसके जीवन के प्रत्येक कर्म की आधारशिला बनते हैं। वार्तालाप का विशेष महत्व नाटक में रहता है, जहाँ पर मानव की चिन्तन आदि अवस्थाओं का समावेश नहीं हो सकता, किन्तु मेरे विचार से यह उपन्यास के लिए आवश्यक तत्व है। इसके अभाव में नाटक तथा उपन्यास में थोड़ा ही अन्तर रह जाता है।

उपन्यास में कल्पना आदि के सामंजस्य के उपरान्त भी स्वाभाविकता तथा मौलिकता लाने का भी मैंने यथा साध्य प्रयत्न किया, फिर भी यह आवश्यक नहीं है कि मैं कोई दोषरहित रचना कर सका हूँगा, लेकिन आशा है पाठकगण तथा आलोचक-बन्धु इसमें निहित मूल भावना को ही ध्यान में रखकर इसके गुण दोषों पर विचार करेंगे।

करुणेन्द्र

१

"लीजिये बाबू जी" कहकर बैरे ने रमेश की मेज पर चाय का प्याला रख दिया। दरियागंज का यह एक नया रेस्ट्राँ है जिसके मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा 'कमल रेस्ट्राँ' साइन बोर्ड लगा है। मालिक ने बहुत छान-बीन करने के उपरान्त इसका नाम कमल रखा है। यह नाम हिन्दी-प्रेमी व्यक्तियों के लिए तो विशेष आकर्षक है। कोई आराम से बैठे-बैठे सड़क पर से आने-जाने वालों के सुन्दर मुखों तथा उनकी वेष-भूषा और चाल-ढाल को देख सकता है। एक द्वार के सामने फैज बाजार का चौराहा तथा दरियागंज के भीतर जाने वाली सड़क और दूसरे द्वार के सामने ऐडवर्ड पार्क तथा कश्मीरी गेट और जामा मस्जिद को जाने वाली दो सड़कें हैं। अन्दर बैठने के लिए तो स्थान अधिक नहीं है, किन्तु कोई अन्दर बैठकर चाय की चुस्कियों के साथ सड़क-सौन्दर्य तथा वायु के मस्त झकोरों का भी आनन्द ले सकता है। कभी मोटर की पों-पों, कभी उसकी भर-भराहट, रिक्शे वालों की सरसराहट, ताँगे वालों के खड़कते हुए पहियों की ध्वनि तथा उनमें जुते हुए घोड़ों की नालों की टपटपाहट और सिगनल की भाँति कार्य करने वाले चौराहे के सिपाही, इस रेस्ट्राँ में बैठकर चाय पीने वालों के लिए विशेष आकर्षण हैं, किन्तु मुफ्त चाय की तलाश करने वाले मित्रों से आँख बचाकर चाय पीना कुछ आसान नहीं है। यहाँ का वातावरण नई दिल्ली और पुरानी दिल्ली का अच्छा मेल उत्पन्न करता है। कभी-कभी जब युवतियों के समूह अपने सौन्दर्य की छटा बिखराते हुए निकलते हैं, तो जाने कितने ही मनचले व्यक्तियों के हृदय में प्रेम की भावनाएँ अँगड़ाई लेने लगती हैं, कितने ही मुरझाये हृदयों में

नई जिन्दगा का संचार होने लगता है। रात्रि में तो यहाँ का दृश्य अत्य-धिक सुहावना हो जाता है। एक उभरी हुई काली चट्टान का भाँति लाल किला और उस पर ध्रुवतारे की भाँति जलती हुई बत्ती तथा चाँद से होड़ लगाने वाली पेट्रोल पम्प की बत्ती और नाचते हुए सितारों की तरह 'सर्न लाइट' की बत्तियाँ एक मनोहर वातावरण उपस्थित कर देती हैं। रेशमी साड़ियाँ, सलवार, दुपट्टे, होठों पर लगी सेंदुरी लिपस्टिक, गुलाबी पाउडर लगाये हुए स्त्रियाँ तथा सूट, पैंट और भाँति-भाँति के डिजाइनों की टाइयाँ, रंग-बिरंगे साफे, सफेद कुर्ते, धोतियाँ तथा जवाहरकटें पहने हुए व्यक्ति एक दूसरे की दृष्टि को आकर्षित करते हुए निकलते रहते हैं। यहाँ के सौन्दर्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि स्त्रियाँ अपने को अधिक सुन्दर बनाने के लिए अपने वक्षों को इस प्रकार नुकीले तथा उभरे हुए बनाकर चलती हैं कि किसी की भी दृष्टि उस ओर मुड़कर देखे बिना नहीं रहता। यह अभिरुचि जवान स्त्रियों में ही नहीं वृद्ध स्त्रियों में भी रहती है। प्रायः लोग सान्ध्य-वेला में अपने दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर निकलते हैं तब यह सड़क मानो सौन्दर्य के भार से बोझिल-सी हो उठती है।

सामने एक गोल-सा छोटा मैदान है जिस पर कुछ छाबड़ी वाले और खोमचे वाले खड़े रहते हैं तथा रिक्शे वाले, ताँगे वाले, झल्ली वाले और कुली आदि भी इकट्ठे रहते हैं, जो अपने अतृप्त नेत्रों से बिजलियाँ गिराने वाली युवतियों के सौन्दर्य को देखते रहते हैं, शायद उनकी दिन भर की थकन और रोटी की चिन्ता को इस प्रकार से भी कुछ सन्तोष प्राप्त हो जाता हो। किसी नई छोकरी की तलाश में कालेज के युवकों के समूह इधर-उधर मँड़राते ही रहते हैं। चाँदनी चौक की भाँति उन्हें धक्का देकर निकलने के अवसर तो कम ही प्राप्त होते हैं, किन्तु आने-जाने वाली लड़कियों और स्त्रियों की ओर घूर-घूर कर देखना तो मिल ही जाता है। यह है वह स्थल जहाँ रमेश कभी-कभी चाय पी लेता है। रेस्ट्राँ के मालिक ने अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए कुछ दिनों से चाय का कप दो आने के

स्थान पर छै पैसे का कर दिया और सच पूछो तो रमेश के लिए इस रेस्ट्राँ में चाय पीने का एक यही आकर्षण है।

अभी वह ठीक प्रकार से चाय पी भी न पाया था कि किशोर ने अपने दो अन्य मित्रों सहित रेस्ट्राँ से सटे हुए फुटपाथ पर से 'नमस्ते' किया। यह उन्हीं मुफ्त चायखोर मित्रों में से हैं, जो कभी-कभी अपने मित्र के लिए सिर दर्द बन जाते हैं। अपने उन मित्रों का रमेश से परिचय कराते हुए—"आप हैं मि० कपिल एक दैनिक पत्र के संपादक, और आप हैं मि० सोमचन्द्र प्रसिद्ध लेखक" और उन दोनों से रमेश का परिचय कराते हुए—"आप हैं मि० रमेश हमारे घनिष्ट मित्र"—पड़ी हुई कुर्सियों पर बैठ गये। रमेश ने अपनी चाय पीते-पीते उन्हें भी इन्सानियत के नाते चाय के लिए पूछा। बैरे ने तीन कप और चाय के मेज पर रख दिये। किशोर ने दो प्लेट रसगुल्ले, चार प्लेट समोसे तथा चार प्लेट दाल मोठ की भी आज्ञा दे दी। बैरे ने तत्काल ही वे प्लेटें भी मेज पर लाकर रख दीं।

रमेश की जेब में उस समय केवल ६ आने पैसे थे और वह सोच रहा था कि इन्होंने उसे आर्डर दिया है तो ये स्वयं उसका भुगतान करेंगे। धीरे-धीरे सब लोग चाय पीते रहे। किशोर और उसके मित्र अपनी गप्पें हाँककर एक अनावश्यक हास्य का वातावरण उत्पन्न कर रहे थे, यद्यपि रमेश को इसमें कोई आनन्द न आ रहा था। उसे अपने जीवन की आर्थिक चिन्ताएँ किसी भी समय चैन की साँस नहीं लेने देती थीं। वाह्य वस्तुओं के खान-पान की इच्छाएँ तो उसके पास मरी-मरी सी थीं ही, जाड़े के दिनों के कारण एक आध कप चाय वह अवश्य पी लेता था। होठों की हँसी तो जाने कब की उससे अलविदा करके चली गई थी, फिर भी वह उनके साथ बातचीत कर रहा था, ताकि वे उसे कहीं शुष्क या हृदयहीन न समझ लें।

"अच्छा तो आप अपनी कोई पुरानी कविता आदि तो सुनाइये। आप तो पहले बहुत बढ़िया लिखा करते थे" कहकर किशोर ने कविता सुनने

की अपनी इच्छा प्रकट की। रमेश उनके इस अनुरोध से क्षमा ही माँगता रहा। इसी बीच मि० कपिल और मि० सोम लघुशंका करने का बहाना करके चल दिये। किशोर अपनी गप्पें हाँकता रहा और रमेश को अपनी बातों की ओर लगाये रहा। थोड़ी देर बाद किशोर भी अपने एक अन्य मित्र से बातें करने का बहाना करके बाहर निकले तथा रमेश से आँख बचाकर जामा मस्जिद की ओर खिसक गये। रमेश अपनी चाय पीने की अपेक्षा उन लोगों की बातचीत सुनने की ओर लगा रहा ताकि वे लोग प्रथम परिचय में उसे कहीं अशिष्ट न समझें। उसकी चाय काफी ठंडी हो चुकी थी। चाय पीने के उपरान्त वह थोड़ी देर तक बैठा उनकी प्रतीक्षा करता रहा। उन लोगों को आने में देर देखकर उसने दरवाजे से बाहर झाँककर किशोर और उनके मित्रों को सन्देहात्मक भावना से देखा कि आखिर बात क्या है जो इतनी देर होने पर भी वे नहीं लौट सके, किन्तु उन लोगों का पता न लगा। दरवाजे के बाहर जाकर उन लोगों का पता लगाये कि रेस्ट्राँ के मालिक ने बिल का भुगतान करने को कहा—"बाबू जी यह दिल्ली है। वे लोग चले गये। पैसे आपको ही देने पड़ेंगे।"

"नहीं, नहीं, वे तो पेशाब करने गये थे।" रमेश ने उसकी बात काटते हुए कहा।

"जी हाँ, आपके विचार से ! लड़के थोड़ा उधर देख तो आना।" —रेस्ट्राँ के मालिक ने कहा। चाय देने वाला नौकर साथ के ही पेशाबघर की ओर चला गया। "जी, वहाँ तो कोई नहीं",— आकर उसने उत्तर दिया।

"अब तो आपको विश्वास हो गया है।"

"लेकिन मेरी जेब में तो केवल छै आने पैसे हैं।"

"मुझे इससे क्या मतलब। बिल के तो ढाई रुपये आपको देने ही पड़ेंगे। बाकी आप जानें आपका काम। मेरा तो काम है आर्डर की वस्तुएँ दे देना।"

वह बड़े असमंजस में पड़ा रहा और सोचता रहा कि क्या करे और क्या न करे।

"मैंने तो उनकी बातों से ही अन्दाज लगा लिया था। और फिर उनके हाथ, मुँह तथा जबान तीनों एक साथ ही काम करने में अपनी होड़ लगा रहे थे। लेकिन मुझे इससे क्या पड़ी। यह तो रेस्ट्राँ है। कोई भी अपने को शरीफ जाहिर करके आ सकता है।"

उधर वे लोग गप्पें मारते हुए जामा मस्जिद तक आ गये थे—"कहो भाई खूब फँसी आज मुर्गी" किशोर बोला, "और वाह तुम लोग तो अच्छे रहे, मैं ही मुसीबत में आ गया था। मुर्गी फँसने की क्या मेरे लिए एक आपदा बन गई थी। लेकिन भगवान का शुक्र किसी प्रकार वहाँ से निकल आये। देखो बेटा, तुम्हें आज मैंने लेखक और संपादक बना दिया है, अब पिक्चर दिखानी पड़ेगी। और वह भी क्या बुद्धू तुम्हें बिल्कुल ही ऐसा समझ गया।" "अबे चल, तेरी इसमें क्या यह शान है। मैंने वो गप्पें मारीं कि वह भी क्या याद करेगा। मगर आदमी मनहूस है। कहाँ तुमने भिड़ा दिया। किसी ऐसे से परिचय करवाते कि शान से वह अपने पैसों से पिक्चर दिखवाता और किसी लौंडिया के चक्कर में डालकर पैसे भी खूब ऐंठे जाते।"—कपिल बोले, "वाह बेटे, खूब रहे, मजे के मजे मारे और ऊपर से एहसान नहीं।"

रमेश बड़ी चिन्तित अवस्था में था। वह सोच नहीं पा रहा था कि क्या करे और क्या न करे। उसे दिल्ली आये हुए लगभग ढाई वर्ष हो गये थे, किन्तु वह अपने को यहाँ के रँग में न रँगा सका था। उसे ऐसे शरीफ गिरहकटों से बचने के दाँव न मालूम थे। वरना वह यह भी कह कर छुट्टी ले सकता था—"अच्छा आप क्षमा करें तो मैं चाय पी लूँ।" अथवा जब उन्होंने चाय के साथ अन्य वस्तुओं का आर्डर दिया था तो जल्दी से ही अपनी चाय समाप्त करके चार कपों की चाय का पेमेन्ट करके वहाँ से चल देता। समय के इस निष्ठुर व्यंग्य से उसका मन बहुत दुखी हो रहा था। उसने यहाँ पर कई बार चाय पी थी, लेकिन उसे छै

पैसे अथवा दो आने से अधिक कभी भी न भुगतान करना पड़ा, इस नाते से रेस्ट्राँ वाले को इस बात से प्रभावित न कर सका था कि वह समय-कुसमय पर ढाई-तीन रुपये का भुगतान कर सकता। रेस्ट्राँ वाला तो यही सोचता था कि यह भुक्खड़ आदमी है, अगर आज छूट गया तो फिर कभी अपनी शकल भी न दिखायेगा। वह किसी भी स्थिति में उधार की बात मानने को तैयार न था। उसके पास न तो कोई गिरवी रखने की वस्तु ही थी और न किसी व्यक्ति की जमानत की ही उस समय कल्पना कर सकता था। कुसमय पर परिचित भी अपरिचित हो जाते हैं, उसने अपने जीवन में इस बात का अवश्य अनुभव कर लिया था। गनीमत थी कि उसकी जेब में एक पुराना पेन अवश्य लगा हुआ था। जिसे उसने डेढ़ वर्ष पूर्व पाँच रु० का खरीदा था। उसे निकालते हुए वह रेस्ट्राँ के मालिक से बोला—"मेरी जेब में छै आने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है लेकिन आप विश्वास रखें कि मैं आपको आज शाम तक ही इसका भुगतान कर दूँगा। मेरी जिन्दगी का यह पहला अवसर है जब किसी ने मुझे ऐसी चपत लगाई है। आपको यदि फिर भी विश्वास न हो तो आप यह पेन गिरवी तौर पर रख लीजिये।"

"जी, आपके जीवन में यह पहला अवसर है, लेकिन मेरी जिन्दगी में तो ऐसे अवसर आते ही रहते हैं। यह पेन तो कोई आठ आने का भी नहीं खरीदेगा। और फिर क्या पता कहीं चोरी का हुआ तो कौन इसका जिम्मेदार होगा? बाबूजी! आप पैसे दिये बिना नहीं जा सकते।" रेस्ट्राँ के मालिक ने अपने शुष्क तथा कठोर शब्दों में कहा। उसका दिल धड़क रहा था। इस यथार्थवादी जीवन में बिना पैसे के किसी का सम्मान सुरक्षित रहे, यह गूलर के फूल की कल्पना के सिवाय और क्या है। वह सोच रहा था कि कहीं यदि यह मामला अधिक बढ़ गया तो उसकी क्या इज्जत रह जायेगी। कहावत है 'ईश्वर सबका सहायक है।' और कभी-कभी ईश्वर में विश्वास रखने वालों को इसका आभास भी होता है। वह अपने भाग्य तथा ईश्वर पर भरोसा करके थोड़ी देर और वहाँ पर

बैठा रहा। अकायक सुषमा वहाँ के सटे हुए फुटपाथ पर से निकलते हुए दिखाई पड़ी, जिसे उसने एक वर्ष पूर्व मैट्रिक की परीक्षा के लिए प्राइवेट ट्यूटर के रूप में पढ़ाया था। उसे सुषमा को रोककर अपनी दुष्परि-स्थिति में सहयोग के लिए कुछ कहते हुए झिझक तो लगी; किन्तु मुसी-बत में इन्सान को अपने आत्म-सम्मान के विरुद्ध भी कार्य करने पड़ते हैं, यह इस युग का अटल नियम है। यही सोचकर उसने पुकारा—"सुषमा !" वह चौंककर देखने लगी तथा रमेश को देखते ही उसने 'नमस्ते' किया—"क्षमा करना मैं आपको देख न सकी।"

"मुझे इस समय एक सज्जन ने बड़ी मुसीबत में डाल दिया है। किसी प्रकार तुम ढाई रुपये का प्रबन्ध कर दो। मैं कल तक ही तुम्हें लौटा दूँगा।"—रमेश ने कहा।

वह आश्चर्यचकित-सी रमेश की ओर देखने लगी। दुर्भाग्यवश उसकी जेब में भी केवल आठ आने पैसे थे। वह सोचती रही कि मास्टर जी ने लगभग १ वर्ष तक उसे पढ़ाया, किन्तु आज तक इस प्रकार से पैसे माँगने का एक बार भी अवसर न आया। उसे विश्वास हो गया कि वह इस समय अवश्य किसी दुष्परिस्थिति के चंगुल में हैं, अन्यथा वह कभी इस प्रकार बात न कहते। यही सोचकर वह शीघ्र ही पैसे लाने का वचन देकर अपने घर की ओर लौट पड़ी। रमेश दुखी मन से उसकी प्रतीक्षा में कुर्सी पर बैठ गया। रमेश का उस लड़की से परिचय देखकर रेस्ट्राँ के मालिक ने कहा—"तुम इसे जानते हो तो इससे ही क्यों नहीं कहलवा दिया।"

"कहलवाने की बात क्या अब तो आपको मैं भुगतान करके ही जाऊँगा। आपको बिना पैसों के किसी पर विश्वास कैसे आयेगा। पेन को आप चोरी का समझते हैं। इसमें आपका कोई दोष नहीं, यह तो सब कुसमय की बात है।"

"नहीं, नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं। आजकल का जमाना ही कुछ ऐसा हो गया है। भले-बुरे की किसी के मत्थे पर मोहर नहीं लगी रहती

है । हम लोग भी क्या करें, कलेजा तो छलनी पड़ा है । आप तो आज एक ही बार की घटना से ऐसा सोचते हैं । हमें तो विश्वास और इन्सानियत के नाम पर जो कुछ भुगतना पड़ा है, उसे अगर सुनाऊँ तो आप दाँतों-तले उँगली दाबे लेंगे । मैंने होटल चलाई और उधार के सेस्टम ने ही चार सौ के कर्ज में डाल दिया । जिन बाबू लोगों को महीनों पका-पकाकर अपने पास से पैसा लगाकर खिलाया, आज उनसे पैसे की माँग करता हूँ तो टके-सा उत्तर लेकर लौट आता हूँ । सिवा इसके कि गुण्डा-गीरी करूँ और कोई चारा नहीं । तभी से मैंने होटल को तोड़कर रेस्ट्राँ खोला । उधार का सेस्टम ही बन्द कर दिया । चाहे चार पैसे मिलें लेकिन मिल तो जाते हैं । सबके पास दिल है, लेकिन क्या किया जाये यथार्थ के अनुभव उसे कठोर बना देते हैं । वरना ढाई रुपये की कोई ऐसी बात न थी ।"

रमेश रेस्ट्राँ के मालिक के व्यवहार से क्रोधित तो हो गया था, लेकिन उसकी बातचीत से उसे विश्वास हो गया कि मनुष्य के जीवन के कटु अनुभव ही उसे हृदयहीन तथा शुष्क बना देते हैं । वह सोच रहा था कि इनमें इनका क्या दोष । यह तो वास्तव में हमारे सामूहिक कर्मों तथा व्यवहार का ही परिणाम है । मनुष्य जब किसी के साथ भलाई करता है और उसका परिणाम बुराई निकलता है तो उसकी प्रतिक्रिया साधारणतः इन्सान को इसी ओर प्रेरित कर देती है कि वह किसी के साथ सोच-समझकर भलाई करे ।

सुषमा रास्ते भर मास्टर जी की सौम्यता तथा उच्च विचारों को सोचती रही । एक साधारण कमीज और पैंट, जिनमें किसी प्रकार की चड़क-धड़क का आभास न होता था, सादे चप्पल, पिचके हुए गाल और सकरुण नेत्र, सबके सब रमेश को उसके मस्तिष्क में चित्रांकित कर रहे थे, जब वह उसे पढ़ाने आया करते थे । वह निकट सम्पर्क में भी रहकर उनके व्यक्तिगत जीवन से अपरिचित थी । उसके हृदय में रमेश के लिए असीम श्रद्धा तथा स्नेह का सागर उमड़ रहा था ।

९

रमेश सुषमा की प्रतीक्षा कर ही रहा था कि ठीक इसी समय उसके एक कवि मित्र विकल भी आ गये, जो मित्रों की श्रेणी में सबसे अधिक उसके निकट थे। वह अधिक धनवान तो नहीं, किन्तु हृदयवान अवश्य थे। रमेश को उन पर बहुत विश्वास था कि वह कोई भी सम्भव सहायता उसकी आपत्तिजनक अवस्था में कर सकते थे। कई अवसरों पर उन्होंने ऐसा किया भी था। वह मुसीबत में आ गया था फिर भी उसे सुषमा से रुपया उधार के रूप में लेते हुए पहले भी लज्जा अनुभव हो रही थी, इसी कारण उसने झिझकते हुए सुषमा से इसके लिए कहा था। अतः उसने विकल को अपनी परिस्थिति बताकर उससे ढाई रुपये लेकर रेस्ट्राँ के मालिक को दे दिये। इसी समय सुषमा भी रुपयों का प्रबन्ध करके आ गई। "सुषमा, मैंने तुम्हें इस समय कष्ट अवश्य दिया, उसके लिए क्षमा करना तथा इसके लिए धन्यवाद, मेरा काम चल गया।" यह कह रमेश तथा विकल दोनों ही फैंज बाजार होते हुए दिल्ली गेट की ओर चल दिये। सुषमा भी थोड़ी दूर उनके साथ-साथ चली, किन्तु वह फैंज बाजार के चौराहे से तिराहा बैरमखाँ को जाने वाले रास्ते की ओर मुड़कर चली गई। वह समझ नहीं पा रही थी कि बात क्या है। वह अपने मन में जाने क्या-क्या सोच रही थी, किन्तु रमेश से उसे पूछने का कुछ भी साहस न हो सका।

दोपहर के लगभग दो बजे का समय था। जाड़ों के दिन थे। हल्की-हल्की ठंड पड़ रही थी। सुषमा नमस्ते करके तो चली गई, किन्तु उसके मोहक स्वभाव तथा सौन्दर्य ने विकल के हृदय पर वह छाप डाली कि वह बार-बार उसे मुड़-मुड़कर देखने को विवश हो रहा था। उसका मोहक मुख, चंचल तथा सकरुण नेत्र जिनसे लज्जा और स्नेह की बूँदें बरस रहीं थीं, गुलाब के फूल-से कपोल, चौड़ा और कुछ-कुछ गोल माथा, रेशम-से महीन तथा घटाओं-से काले बाल, कमल-से मुस्कराते हुए होंठ, उभरे हुए उरोज, लम्बा कद, रेशमी हरी साड़ी और रेशमी लाल कंचुकी उसे सुन्दरता से बोझिल कर रहे थे। विकल इन सबको देखकर उसके

अनुपम सौन्दर्य को सोचता ही रह गया । बात करने को तो वह बात कर रहा था, किन्तु उसका मन कहीं और था । वह उसके सम्बन्ध में क्या नहीं जान लेना चाहता था, किन्तु व्यावहारिकता कुछ भी उससे पूछने को मना कर रही थी । फिर भी वह अपने को रोक न सका, इतना पूछ ही लिया--"यह कौन लड़की है ?" क्योंकि वह जानता था रमेश यहाँ पर अकेला ही रहता है तथा उसके रिश्तेदार भी उसके साथ नहीं हैं । रमेश इस प्रश्न की गहराई को न छू सका । उसने साधारण रूप से यही उत्तर दिया--"मैंने इसे पिछले वर्ष मैट्रिक में पढ़ाया था ।"

"तुमने इसे पढ़ाया था !"

"तो तुम्हें इसमें आश्चर्य क्या है ?"

विकल आश्चर्यचकित-सा था । वह सोचता था कि इसने इतनी सुन्दर लड़की को कैसे पढ़ाया होगा, जिसे देखकर एक योगी भी अपना व्रत भंग करदे । बात यह थी कि वह सौन्दर्य का महान् प्रेमी था । प्रियतम का मिलन ही अपने जीवन का महान् लक्ष्य तथा महान् सुख समझता था । सौन्दर्य ही उसके आनन्द का उपवन था । उसका हृदय रह-रहकर उसके रूप की ओर आकृष्ट हो रहा था । यथार्थ की भूमि पर खड़े होकर भी वह आकाश की ओर ही देखता रहता था । वास्तव में वह चरित्र से उच्च कोटि का था, किन्तु सौन्दर्य की प्यास उसके नेत्रों में अगाध थी । उसकी रातें सौन्दर्य की चाह में सपनों में बीता करती थीं, तथा दिन सौन्दर्य की खोज में । सौन्दर्य-पान की अतृप्त अभिलाषा ही उसे हर घड़ी बेचैन किये रहती थी । कदाचित् इसी कारण उसने अपना उपनाम विकल रखा हो । वैसे तो उसका नाम विमलानन्द शुक्ल था । उसके दिल्ली आने की कहानी भी विचित्र थी । वह जब झाँसी में रहता था तो नवीन, सुन्दर मुखों को देखने तथा किसी एक को अपना बनाने की भावना लेकर झाँसी के स्टेशन पर प्रायः जाया करता था । एक दिन उसे वहाँ एक लड़की दिखाई पड़ी जो अकेली थी तथा पंजाब मेल से दिल्ली जा रही थी । उसका छलकता हुआ यौवन तथा मोहक मुख विकल

के मन में समा गये । उसकी आँखों से ऐसा पता चलता था जैसे कि उसे भी किसी विशाल हृदय वाले प्रेमी की चाह हो । विकल जाने क्या सोचकर स्टेशन से टिकट लेकर दिल्ली की ओर चला आया । बड़े आश्चर्य की बात है कि इन बातों के उपरान्त भी उसका चरित्र महान् है और क्यों ?···

वह उस लड़की वाले डिब्बे में ही बैठा । डिब्बे में अधिक भीड़भाड़ न थी । रास्ते भर उसके मिलन के सपने सजाता हुआ वह अपने भावी जीवन की योजनाएँ बनाता रहा । इस लड़की के सौन्दर्य ने उसके हृदय को इस प्रकार उद्वेलित कर दिया था कि उसके विचार उसमें असीम वेदना को संचारित कर रहे थे । वह उसकी रूप-माधुरी में डूबा हुआ भी, सचरित्र होने के कारण, व्यावहारिकता के बाहर न जा सका । उसके जीवन की इसी घटना ने उसके हृदय में कविता की रस-धारा प्रवाहित कर दी । इतना अच्छा था कि वह एफ० ए० की परीक्षा पास कर चुका था । उसने एक कविता पढ़ रखी थी जो उसे काफी अच्छी लगी थी जिसे वह प्रायः गुनगुना लेता था—

रूप की चाँदनी को बिछा नयन पर,
प्राण को इस तरह तिलमिलाओ नहीं ।
सूखता जा रहा कंठ है प्यास में, स्नेह-जल-बूँद की कल्पना को लिये ।
झूमते चल रहे हैं गगन में जलद, प्यार के सिन्धु को हैं हृदय में पिये ।
तुम हृदय की व्यथा को असह जानकर,
सींचदो इस तरह से सताओ नहीं ।
तुम प्रणय-सिन्धु-उपहार हो इसलिए, देखते हैं तुम्हें हो निरंतर नयन ।
और तुम्हारे बिना प्यार के, मिट न सकती कभी प्राण की यह जलन ।
प्यार की एक लघु बूँद भी यदि नहीं,
तो हृदय की तृषा को जगाओ नहीं ।
प्राण तुझमें किसी के समाये अगर, दोष उसका बताओ यहाँ क्या हुआ ।
जी रहा जो तुम्हारे लिए ही यहाँ, जीवनी दो उसे है तुम्हें सोच क्या ।

प्यार दो एक क्षण जिन्दगी जी उठे,

मौत को इस तरह से बुलाओ नहीं।

ढल रहा सूर्य है, राह पर थक गया, शाम आई, मगर मौत के गान से।
यह गगन के अधर की घनी लालिमा, मिट रही है यहाँ कालिमा पान से।

जिन्दगी प्यार का एक आशा-दिवस,

तुम निराशा-निशा को बुलाओ नहीं।

आँसुओं की झड़ी है हँसी बन रही, प्यार भी तो बना जा रहा वेदना।
बेबसी बंद कर हास के होंठ को, खा रही है विकलता हृदय-चेतना।

अश्रु के बूँद ही छलछला यदि पड़ें,

इस तरह से मुझे गुदगुदाओ नहीं।

गाड़ी झक्-झक् की ध्वनि से चलती जा रही थी। रात का समय था। वह लड़की भी सो गयी थी, किन्तु विकल तो विकल ही था, उसे नींद कैसे आती। वह उसके मुँदे हुए नेत्रों को अपलक देखता रहा। उसे ऐसा लग रहा था जैसे कोई कमल का फूल चट्टान पर सोया हुआ हो। वह उसके कमल के समान विशाल नेत्र, उसकी पंखुड़ियों की तरह उसकी पलकें और फूल-सा मुरझाया हुआ फिर भी सुन्दर मुख को जी भर कर देखता रहा। वह ऐसे देखता रहा जैसे कि उस पर उसका अपना ही अधिकार हो। आँखें निडर होकर उसके रूप का पान कर रही थीं। वह सोच रहा था कि उसकी सुसुप्त अवस्था उसके जागरण से कहीं अधिक उसके समीप है, मगर फिर भी संदेह था कि कहीं उसकी दृष्टि न खुल जाये और उसे इस प्रकार देखते हुए उसे उससे घृणा हो जाये। रात बीतती गई। स्टेशनें आईं और निकल गईं। लोगों ने नींद में डूबी हुई कितनी झपकियाँ ली होंगी, किन्तु वह जागता ही रहा। एकायक उस लड़की की नींद टूटी। तत्काल ही विकल की दृष्टि मुड़ गई। अब उसके रूप-दर्शन का अधिकार भी वह खो बैठा। वह भी मुख ढाँपकर लेट गया। अब करता भी तो क्या करता। काफी देर तक जागने के कारण उसे भी एक झपकी-सी आ गई। थोड़ी देर बाद दिल्ली आ गई।

गाड़ी स्टेशन पर रुकी और वह लड़की उस डिब्बे से उतरकर चली गई। एकाएक उसे एक झटका-सा लगा। उसे ऐसा लगा जैसे कि उसकी कोई अमूल्य वस्तु खो गई हो। कुलियों का शोर मचा हुआ था। सारा डिब्बा खाली हो गया था। वह जल्दी से डिब्बे से उतरकर गेट से बाहर आया, किन्तु तब तक वह लड़की कहीं जा चुकी थी। उसे उसका पता लगाना असम्भव-सा हो गया। यद्यपि उसने उसकी तमाम खोज की। सारा शहर छान डाला। पागलों की तरह से गली-गली में भटकता रहा, किन्तु उसका कोई पता न लग सका। तब से उसके मिलन का आसरा थामकर वह दिल्ली में ही रहने लगा।

'कभी आते-जाते मुलाकात होगी,
इसी आसरे पर जिये जा रहा हूँ।'

यही उसके जीवन का एक आसरा तथा विश्वास बन गया। खोजते-खोजते उसे एक आफिस में क्लर्की का कार्य मिल गया। दिल्ली में सुन्दरता की कमी नहीं। जाने कितने ही सुन्दर मुखों को उसने देखा होगा, किन्तु उसके नेत्रों में तो उस लड़की का ही चित्र छलकता रहा। उसने अपना प्रथम प्रेम उस लड़की पर न्योछावर किया था, अत: उससे बढ़कर उसको संसार की कोई अन्य वस्तु न लगती थी। प्रेम की चाह ने उसे इस प्रकार बावला कर दिया था कि उसे अपने घर के किसी भी व्यक्ति तथा मित्र आदि की चिन्ता न होती। वहीं पर म्युनिसपल बाग में उसका रमेश से परिचय हुआ था तभी से दोनों एक दूसरे के निकट आ गये थे। दोनों में जीवन के अपने-अपने दुख थे, इस कारण वे अधिक निकट आते गये। वे दोनों जाने कितनी बार एक दूसरे से मिले, साथ खाया-पिया तथा रहे और इस कारण और भी घनिष्टता बढ़ती गयी। इन दिनों रमेश दरियागंज में कूचा ताराचंद में तथा विकल सब्जी मंडी में रहता था। साथ-साथ रहना कभी-कभी मित्रता के लिए अभिशाप-सा हो जाता है, ऐसी अवस्था में जीवन की कुछ सुविधाओं और लाभ को ध्यान में रखकर भी वे स्थायी रूप से कभी एक साथ न रहे। कवि होने के नाते

विकल के अनेक मित्र हो गये थे, तदापि रमेश सबसे अधिक निकट का उसका मित्र था। आज कई दिनों उपरान्त, विकल और रमेश अचानक ही मिले थे। अतः बातचीत करने के लिए प्रचुर सामग्री भी इकट्ठी हो गयी थी।

वे चलते-चलते दिल्ली गेट के निकट आ गये थे। वे आपस में बात-चीत कर रहे थे, फिर भी विकल का ध्यान सुषमा के सौन्दर्य की ओर आकर्षित हो जाता था। यह उसके जीवन की दूसरी घटना थी, जब उसके हृदय का प्रेम पहले की भाँति उफान खा गया हो। यद्यपि उसने अनेक सुन्दर मुखों को देखा, किन्तु किसी की ओर कभी भी इस प्रकार आकर्षित न हुआ। बात यह है कि आघात खाया हुआ व्यक्ति बहुत सोच-समझ कर पग बढ़ाता है। संसार में हर वस्तु की दवा मिल जाती है, किन्तु सौन्दर्य की चोट की दवा मुश्किल से ही प्राप्त होती है। जब तक किसी वस्तु के किसी प्रकार से भी प्राप्त करने का आभास नहीं होता है, तब तक चाहे प्रेम का रूप नहीं धारण करती है। यहाँ पर विकल सोच रहा था कि प्रयत्न करने से शायद वह सुषमा का प्यार पा सके। दिल्ली गेट से दाईं ओर मुड़कर वे डिलाइट सिनेमा की ओर चल दिये। दिल्ली गेट से लेकर तुर्कमान गेट तक लम्बा घास का मैदान है। आगे चलकर यही भाग रामलीला मैदान के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है। यहाँ पर उगी हुई हरी-हरी घास लोगों को बैठने तथा खुला हुआ मैदान मुक्त वायु में विचरण करने के लिए आमंत्रित करता रहता है। यदा-कदा इस घास की सिंचाई तथा कटाई होने के कारण यह काफी हरी-भरी रहती है। सन्ध्या समय कुछ लड़के फुटबाल आदि खेलते हैं तथा नर-नारियाँ यहाँ की मुक्त वायु में बैठकर शहर की अस्त-व्यस्तता से थोड़ी शांति प्राप्त करते हैं। कितने ही लोग यहाँ पर आकर प्यार के सपने सजाते हैं। पुलिस की कोई उचित व्यवस्था न होने के कारण गुण्डों का तीर्थ-स्थल भी यही है, फिर भी लोग यहाँ आते हैं, बैठते हैं तथा जीवन में सुख और शान्ति का अनुभव प्राप्त करते हैं। अमीर लोगों के

लिए स्नेहालय तथा वार्तालाप के अनेक स्थल, रेस्ट्राँ और होटलें हैं, किन्तु धनहीन तथा छोटे-छोटे घरों में रहने वालों के लिए यह उपयुक्त स्थल है। यहीं आकर विकल तथा रमेश बैठ गये और बातें होती रहीं। दोनों एक दूसरे के निकट हैं, क्योंकि दोनों दुखी हैं। एक कल्पनाओं की आघातों से चकनाचूर तथा दूसरा यथार्थ के तमाचे खाते-खाते तंग आ गया है। दोनों के रास्ते अलग-अलग हैं। यही कारण है कि एक रास्ते पर आकर होड़ लगाने और मित्रता टूटने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यों तो ये लोग कई दिनों उपरान्त मिले थे और बातें करने के लिए प्रचुर सामग्री इकट्ठी हो गयी थी, किन्तु विकल अन्य बातों को भूल गया था। उसे तो केवल सुषमा की मनमोहक मूर्ति ही स्मरण हो रही थी। वह घुमा-फिरा कर सुषमा से सम्बन्धित ही कोई बात छेड़ता, किन्तु वह सोच रहा था कि कहीं वे दोनों एक रास्ते पर ही न टकरा जायँ और मित्रता किसी दूसरे रूप में परिणित हो जाय। वह सोचता था—कदाचित् रमेश का सुषमा से प्यार हो क्योंकि वह साल भर तक उसे पढ़ाता रहा है। उन्हें कभी न कभी तो अपने-अपने हृदय की बातें एक दूसरे से कहने का अवसर तो मिला ही होगा। आखिरकार दोनों ही युवक हैं। सुषमा के हृदय में जब रमेश के लिए इतना स्नेह है, तो रमेश फिर इन्सान ही है। रमेश के यह बताने पर कि वह हिन्दी कविता भी उसे पढ़ाता रहा है, उसकी यह धारणा और भी पुष्ट हो गयी। क्योंकि वह सोच रहा था—उसे प्रेम सम्बन्धी कविता को पढ़ाने के लिए कितने ही अवसर आये होंगे। फिर स्वभावतः, उन्हें अपने प्रेम को प्रकट करने का भी कभी न कभी तो अवसर मिला ही होगा, यही सोचकर उसके हृदय में व्यथा का पारावार बढ़ता जा रहा था। उसे ऐसा लगता था कि जैसे वह कोई बहुत अटपटे मार्ग पर जा रहा है। लेकिन सुषमा का सौन्दर्य उसके हृदय की तृषा उतनी ही अधिक तीव्र कर रहा था, जितना अधिक वह यह सब सोचकर निराश हो रहा था। उसे सुषमा के स्नेह की ही भाँति अपने एक सच्चे मित्र से भी स्नेह था,

क्योंकि उसने अनुभव कर लिया था सच्चा मित्र कोई सौभाग्य से ही मिलता है। यही कारण है कि वह रमेश को बहुत स्नेह करता था। वह कभी यह भी सोचता कि रमेश अपने सिद्धान्तों को मानकर चलने वाला व्यक्ति है और यह भी सम्भव है कि वह उससे प्रेम न करता हो केवल सुषमा के हृदय में ही उसके लिए स्नेह हो। क्योंकि यदि वह किसी से प्रेम करेगा तो विकल को अवश्य बतायेगा और जिससे करेगा उससे ही जीवन भर निर्वाह करेगा। इतनी जल्दी वह अपने जीवन का प्रेम किसी पर छलकाने वाला नहीं— इस प्रकार वह जाने किन-किन विचारों में उलझ रहा था। पंजाब मेल से आने वाली लड़की की जगह सुषमा लेती जा रही थी। उसे ऐसे लग रहा था जैसे उसका प्रेमोन्माद पुनर्जीवित-सा हो गया हो।

रमेश का जीवन भौतिक चिन्ताओं से परेशान था। वह सोच रहा था—इस मास तो उसके पास होटल वाले को देने के पैसे भी नहीं हैं। खाने का क्या होगा। बीमारी के कारण उसके दो अच्छे ट्यूशन भी छूट गये थे। दो वर्ष से वह किसी प्रकार ट्यूशन की आमदनी से जी रहा था। भतीजेवाद के कारण नौकरी तो उसके लिए गूलर का फूल थी, फिर भी वह अपने आशावाद और साहस के सहारे जी रहा था। कई बार वह आत्महत्या करने के विचार से भी उद्यत हुआ और तब उसके आशावाद तथा दृढ़ साहस ने ही मानों मौत के कुयें से डूबते-डूबते बचा लिया। उसका जीवन मजदूर के जीवन से भी गया-बीता था। कम से कम वे लोग अपने जीवन में कुछ-न-कुछ आन्तरिक आनन्द का तो अनुभव कर लेते हैं, भले ही सफेद वस्त्र न पहनें, भले ही कालेज की छोकरियों के प्रेम की कल्पना न कर सकें, किन्तु अपने बाल-बच्चों की तुतली बोली तथा पत्नी के प्यार भरे शब्द सुनकर उनके थके हुए हृदय को एक शान्ति तो अनुभव होती है।

स्वच्छ कपड़े यदि कोई न पहने, तो शिष्ट समाज में बैठना भी दुष्कर हो जाये, कोई ठीक प्रकार से बात भी न करे और यदि उस प्रकार

के समाज के अनुसार अपने को बनाये तो पैसा-देवता की आवश्यकता। किन्तु वह सिद्धान्तवादी था। उसने धनवान होने की अपने मन में कभी कल्पना भी न की थी क्योंकि वह जानता था कि सुचरित्र व्यक्ति कभी धनवान नहीं हो सकता और धनवान कभी सुचरित्र नहीं हो सकता। बहुत से धनवानों के नाम के आगे उनके चरित्र के कितने ही विशेषण जोड़े जाते हैं, उनकी प्रशंसा के पुल बाँधे जाते हैं और लोग उन्हें आँख मूँदकर धनवान ही नहीं महान् चरित्रवान् समझ लेते हैं, लेकिन वास्तव में यदि गहराई से देखा जाए तो ऐसा हो ही नहीं सकता कि मनुष्य सुचरित्र हो और धनवान हो यह दोनों एक दूसरे के परस्पर विरोधी हैं। जो कुछ भी उनके सम्बन्ध में कहा अथवा लिखा जाता है वह पैसे का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव होता है। पैसा उनके हाथ पकड़ कर लिखवाता है। चरित्रवान् व्यक्ति और धन, दोनों का मीलों अंतर है और वास्तव में बात यह है कि चरित्र की जब हम परिभाषा करते हैं तो जाने कितने ही गुणों का उनमें समावेश करते हैं, लेकिन किसी को इसकी संज्ञा देते समय हम अपनी आँखों पर या तो पट्टी बाँध लेते हैं, या बाँध दी जाती है, हमारे समाज की कुछ ऐसी ही गतिविधि है।

उसने सरकारी नौकरी न करने का भी व्रत लिया था। सरकारी नौकरी किन-किन योग्यताओं पर मिलती है, यह सब उसने अपनी आँखों से खूब देख लिया था। वह आशावादी था, इस कारण सोचता था कि ऐसा करने से वह अपना जीवन उच्चकोटि न बना सकेगा तथापि यह उसका विश्वास था कि समय में एक दिन अवश्य परिवर्तन होगा और देश का नैतिक स्तर मानवता के दृष्टिकोण से ऊपर उठेगा। इस परिवर्तन के युग में जाने कितने ही नवयुवकों को उसकी ही भाँति अपने स्वार्थ का सामूहिक बलिदान करना पड़ेगा तभी देश का नव निर्माण अच्छे ढंग पर हो सकेगा। सरकारी नौकरियों के भ्रष्टाचार का एकमात्र यही कारण है कि यदि एक रिक्त स्थान है तो सौ उम्मीदवार। फिर दासता ने हमें जाने कितने ही नारकीय गुणों को सिखा दिया है। शिक्षा के कारखाने इसलिए

खोले गये थे कि वे सरकारी नौकर समझकर विदेशी सरकार के स्वामि भक्त हो सकें, किन्तु दुख है कि आज भी हम उसी चश्मे से अपने को देखते आ रहे हैं। हमारे देश में सामूहिक हित को ध्यान रखकर भी व्यक्तिगत कार्यों का अभाव है। जिन लोगों में ऐसी भावनाएँ हैं भी, वे असमर्थ अवस्था में हैं। दूसरे, विदेशी छत्र-छाया में पलने के कारण हमारे अंदर सामूहिक रूप से कार्य करने की भी तो कमी है। हम एक दूसरे का विश्वास हड़प गये हैं। न किसी को आप पर विश्वास है और न आपको किसी पर, नहीं तो यदि लोग मिलकर कार्य करें तो व्यक्तिगत रूप से भी सामूहिक स्वार्थ के हितार्थ बड़े-बड़े कार्य हो सकते हैं, बड़े-बड़े उद्योग खुल सकते हैं। वास्तव में हमारे समाज में इस भावना का सर्वथा अभाव है और यदि है कोई भावना तो जनता का सेवक बनकर देश लूटने की, नेतागीरी करने की या आराम से पड़े-पड़े खाने की।

यही सोचकर वह दुखी सा हो जाता था। वह सोचता था कि समय आ रहा है। राजाओं की पूजा के दिन लद चुके हैं। जनता जाग चुकी है। अब मीनारों की पूजा न होकर नींव की पत्थरों की पूजा होगी। राजाओं और धनवानों का गौरव न बढ़कर त्यागियों, तपस्वियों तथा सच्चरित्र व्यक्तियों का गौरव बढ़ेगा। भले ही इस कार्य में देर लगे, किन्तु परिवर्तन के इस युग की यह पुकार है। अभी हमारे समाज में क्या है। नेहरू और गांधी की जय बोलने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते। हमें यह पता नहीं कि हमारे समाज के बच्चे-बच्चे में नेहरू और गांधी जैसी महान् प्रतिभाएँ छिपी हुई हैं। यदि इन्हीं से प्रेरित होकर हम उनके विकास के लिए ध्यान दें, तो देश पुनः अपने खोये हुए अतीत के गौरव को प्राप्त कर ले। यदि हम सुचरित्र तथा महान् व्यक्तियों के जीवन से प्रेरित होकर अपनी महानता पर ध्यान दें, तो व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय से गाँधी और जवाहर जैसे व्यक्तित्व उभर चलेंगे। हम अपनी महानता को समझकर अपने कार्यों में यदि उसे उतारने लगें तो हमारी आत्मा अपनी त्रुटियों को दूर करने के लिए विद्रोह कर उठेगी। फिर कौन रोक सकता है

हमारी महानता को। विषमता की दुर्गंध तथा अमानवता की धुंध तभी इस संसार से लुप्त होगी। अब वह युग आ गया है जब लेखक धन तथा शक्ति का दास न होकर राम और बुद्ध, नेहरू और गांधी की प्रशंसा की ही भाँति अपनी सच्ची लेखनी से, धूप में तपते हुए हल बैल लेकर काम करने वाले किसान, भट्टी की आँच में तपते हुए कारखाने के नौकर सिर पर बोझा लादे हुए झल्ली वाले, लेखनी घिसते हुए लिपिक के जीवन पर तथा दुखी और पीड़ित मानव पर, न्यायपूर्वक बताएगा कि वे प्रशंसा के पुल बाँधे जानेवाले लोगों से किसी प्रकार कम नहीं हैं।

उसके जीवन का प्रत्येक कार्य उसके विचारों की एक महानतम देन थी। यथार्थ ने उसके वे तमाचे लगाये थे कि जिनकी पीड़ा से वह रह-रहकर कराह उठता था। वह सोच रहा था कि इस माह का खर्च किस प्रकार चलेगा। नौकरी कहीं प्राइवेट फर्मों में भी मिलना कुछ आसान नहीं,क्योंकि बेकारी का बोलबाला है। फिर क्या करेगा। खोमचा लगाएगा, डलिया ढोयेगा या कुलीगीरी करेगा और यदि ऐसा करता है तो उसे ट्यूशन फिर फिर कौन देगा। ट्यूशन वाले तो स्कूल का मास्टर चाहते हैं, शायद इस-लिए कि वे परीक्षा में अंक बढ़वाने में वे कुछ सहयोग दें। फिर मास्टर की पोजीशन देखते हैं। ट्युशन के चाहे वे दस रुपये माहवार देने की ही सामर्थ्य रखते हों। यह भी एक विचित्र धंधा है। खैर, डूबते को तिनके का सहारा वाली दशा है। बैठे से बेगार भली। भूखों मरने से तो बचत हो जाती है। वैसे तो साहब लोग ट्यूशन मास्टर को गये बीते नौकर से भी अधिक समझते हैं। पहले जैसे गुरु-शिष्य के व्यवहार कहाँ। कुछ ही व्यक्ति समाज में शायद इस प्रकार के हों जिनके हृदय में पहले जैसे गुरु-शिष्य के विचार हों। वह बैठे-बैठे यही बातें सोच रहा था। विकल का हृदय-दर्द सिर-दर्द का रूप धारण कर गया था और वह मस्थे को एक हाथ से दबाकर लेट गया था। रमेश ने विकल को सिर-दर्द से पीड़ित देखकर अपने घर की ओर चलने को कहा। वह कूचा ताराचंद की तरफ एक नीचे मकान में रहता था। जिसमें उसके पास नीचे की एक कोठरी

थी और इसका किराया भी पन्द्रह रुपये था। वह भी बड़ी परेशानी के उप-रांत मिला था। दिल्ली में दोनों समस्याएँ एक मकान की और दूसरे बेकारी की एक दूसरे से होड़ लगाती हैं। विकल किसी प्रकार तैयार होकर रमेश के साथ उसके घर की ओर चला। अबकी बार रमेश शार्ट कट से उन्हें ले चला। यह रास्ता डिलाइट सिनेमा के पीछे से कूचा तारा चन्द की ओर निकल जाता है। गन्दी और सड़ी नालियों की बदबू, जीर्ण-शीर्ण मकान तथा गलियों में सीना उचकाकर चलने वाले गुण्डे और आवारा लोगों को देखकर विकल सोच रहा था कि सब्जीमण्डी के मुहल्ले तथा इस मुहल्ले में थोड़ा ही अन्तर है। रास्ते में एक लड़की सीना उभारे, आँखों में सुरमा लगाये और दुपट्टा ओढ़े रमेश के कन्धे से इस प्रकार टकराकर निकल गयी कि मानों वह बिल्कुल आँख मूँदकर चल रही हो। अगर कहीं रमेश का धक्का ऐसी जगह लगा होता तो आप ही सोचिए कि क्या होता ? यह वही दिल्ली है जिसको देखने के लिए भारतीय ही नहीं, विदेशियों की आँखे भी लालायित होती रही हैं। कितना ही सुन्दर शहर है, कितने भले आदमी हैं, वर्णन ही करते बनता है। यह वही नगर है जिसके ऐश्वर्य और वैभव के लिए सैकड़ों बार रक्तपात हुआ, खून की होलियाँ खेली गईं।

रमेश इन बातों से भलीभाँति परिचित हो गया था वह बिना कुछ कहे-सुने अपने घर चला आया। दरवाजे बन्द थे। बड़ी मुश्किल से मोटी बहन जी ने किवाड़ खोले मानों वह उसको खा जायेंगी। यह बहन जी भी एक प्रसिद्ध हस्ती हैं। यहाँ पर समय नहीं कि इनके सम्बन्ध में कुछ अधिक कहा जा सके। परदे की ओट में इन्होंने कितने ही शिकार खेले होंगे। पति देवता जानकर भी अन्जान बने रहते हैं, शायद उन्हें दूसरी कोई औरत न मिले अथवा उनका कोई अन्य लाभ हो। आँखें लाल करके, पिनक करके ऊपर चली गईं। कहावत है—बेकार आदमी से मिट्टी भी घृणा करने लगती है। वही दशा इस रमेश की थी। विकल का घर रमेश के घर से काफी अच्छा था। उसे ऐसे सीले तथा बन्द मकान में बैठना बिल्कुल अच्छा

न लगता था, किन्तु यदि वह वहाँ न रुकता तो रमेश शायद कुछ बुरा मान जाता इसी कारण वह पड़ी हुई चारपाई पर लेट गया। रमेश ने अँगीठी जलाई तथा चाय के लिए पानी गर्म करने को रख दिया। विकल को नींद सी आ गई और वह झपकी लेने लगा। इसी बीच रमेश पड़ोस की दूकान से चाय के लिए दूध लेने चला गया। उसने दूध लाकर चाय तैयार की और रमेश को जगाया। विकल और रमेश चाय पी ही रहे थे कि सुषमा आ गई। वह उस समय चली तो गई थी, किन्तु रास्ते भर जाने क्या-क्या सोचती रही। रमेश के पैसे न लेने से उसे काफी दुख हुआ था। वास्तव में उस समय उसके पास भी पैसे न थे। महीने के अंतिम दिन थे और पिताजी से प्राप्त किए हुए पैसे भी खर्च हो गये थे। घर में उसके यही दशा थी, किन्तु उसकी माता जी ने रमेश की आवश्यकता पूर्ति करने के लिए किसी से उधार लेकर उसे दिये थे। उसकी माता जी भी चिन्तित थीं कि आखिर बात क्या हुई, क्योंकि उसके घर के सभी लोग रमेश को स्नेह तथा आदर से देखते थे। रमेश कभी-कभी क्रोध जल्दी कर जाता था। यद्यपि ऐसा उसने पढ़ाने की अवस्था में ही किया था, किन्तु इसी का प्रभाव उनके घरवालों पर था। वे सोचते थे कि कहीं वह किसी बात से अप्रसन्न तो नहीं हो गये।

सुषमा की आँखें करुणार्द्र थीं और वह यही जानने के लिए आई थी कि आखिर बात क्या है, किन्तु विकल के बैठे होने से वह कुछ भी न बोल सकी। रमेश ने उसे चाय के लिए दो-तीन बार पूछा; किन्तु वह इन्कार कर गयी। वह बैठी भी नहीं, खड़ी ही रही। साल भर के बाद यह पहला अवसर था जब वह रमेश के घर आई थी। परीक्षा के दिनों में वह कुछ अधिक समय पढ़ने के लिए अवश्य अपने भाई के साथ आया करती थी। विकल ने अबकी बार जी भरकर सुषमा की ओर देखा। उसकी आँखों में एक प्रेम का निवेदन-सा था किन्तु सुषमा तो कुछ और ही भाव लेकर आई थी। उसकी आँखें कुछ लज्जा से धरती की ओर ही झुकी रहीं। उपयुक्त अवसर न पाकर उसने कुछ भी कहना ठीक न समझा। इतना कहकर—

मास्टर जी कल मेरे यहाँ आप अवश्य शाम को आइएगा—वह चली गयी। विकल का सिरदर्द तो समाप्त हो गया था, किन्तु उसके हृदय की बेचैनी पुनः जीवित हो गई थी। वह सोचता था—रमेश कितना भाग्यशाली है और वह कितना अभागा। जब तक किसी की जीवन स्थिति का ठीक-ठीक हमें पता नहीं होता है, हम प्रायः ऐसा ही सोचा करते हैं।

अँधेरा हो गया था विकल सुषमा के सौन्दर्य में डूबा हुआ प्रेम का दीपक जलाकर चल पड़ा। उसका हृदय सागर की भाँति व्याकुल था और आँखें चारों ओर सुषमा के सौन्दर्य को टटोल रही थीं। विकल के 'नमस्ते' का उत्तर देते हुए रमेश ने उसे विदा किया और फिर मिलने का कोई निश्चय न हो सका। यह समय और भाग्य के ऊपर ही छोड़ दिया गया। दोनों को अपनी-अपनी व्यथा झकझोर रही थी—रमेश को रोटियों के लाले थे और विकल को दिल का बुखार।

सुषमा के हृदय में रमेश के लिए कितनी श्रद्धा और स्नेह था, इसका अनुमान लगाना भी कठिन है। वह उससे संसार में सबसे अधिक स्नेह और श्रद्धा करती थी। आजकल ईश्वर जिन्हें रूपवान बनाता है, उन्हें अपने सौन्दर्य का इस प्रकार अभिमान होता है, मानो उनसे अधिक सुन्दर संसार में कोई है ही नहीं। सुषमा में यह बात न थी। वह मनुष्य के शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा उसके विचार तथा भावनाएँ अधिक देखती थी। रमेश की प्रभावोत्पादक बातचीत, पढ़ाने का ढँग, सुचरित्र तथा शिष्ट व्यवहार उसके हृदय में घर कर गये थे। 'जैसे काली कामरी चढ़ै न दूजो रंग' वाली कहावत है, उसी प्रकार रमेश का सुषमा पर जो प्रभाव पड़ा वह किसी अन्य अध्यापक का न पड़ सका। रमेश को जब वह कभी देखती तो उसका मन श्रद्धा से नत-मस्तक हो जाता। उसका रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठता।

आज शाम के छः बजे से ही वह रमेश की बाट जोह रही थी। साढ़े छः बज गये थे, किन्तु रमेश अभी तक न आ सका था। प्रतीक्षा की घड़ियाँ अति बेचैन कर रही थीं। वह सोच रही थी कि मास्टर जी सचमुच ही

उससे अप्रसन्न हैं अन्यथा वे अवश्य आते । वह अपनी त्रुटि को खोजकर भी न खोज पाती थी । इसी बीच रमेश आ गया ।

'सुषमा !' सुनते ही मानो उसके प्राण का मुरझाया हुआ पौधा खिल गया । उसके स्नेह का पारावार न रहा और उसके करुणार्द्र नयनों में प्रसन्नता की बूँदे छलक उठीं । रमेश बरामदे में पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया । बोला—"सुषमा, मुझे आने में कुछ देर हो गई, ध्यान न देना मुझे कई जगहों पर आवश्यक कार्य से जाना था । वास्तव में इस समय भी मेरे पास समय न था किन्तु तुम्हें वचन दे दिया था इस कारण मैंने आना आवश्यक समझा । दूसरे मुझे यह भी ध्यान था कि तुम लोग मेरी प्रतीक्षा अवश्य करते होगे ।" "वह तो ठीक ही है" सुषमा ने कहा । "मैं जानता था कि तुम विशेषकर यह पूछना चाहती होगी की मैंने तुमसे उस समय रुपये क्यों नहीं लिये । मैं तुमसे छिपाऊँ क्या । बात यह थी कि उस रेस्ट्रां के मालिक से मेरा कोई विशेष परिचय न था । मेरे कुछ परिचित व्यक्तियों ने ही उस समय ऐसी चपत लगादी कि मेरी जेब में केवल छै आने पैसे थे जबकि उसका भुगतान ढाई रुपये करने को मेरे मत्थे आ पड़ा । ऐसी अवस्था में मेरी समझ में नहीं आया कि क्या करूँ और क्या न करूँ । मैं काफी परेशान था, इज्जत का मामला था । यकायक तुम मुझे दिखाई पड़ी और ऐसी अवस्था में मैंने तुमसे कहना उचित समझा यद्यपि मुझे कुछ झिझक अवश्य लगी, किन्तु विकल के आ जाने के कारण मैंने उससे लेकर उसे दे दिये—" रमेश ने कहा ।

"उसी बात के लिए आप इतनी बड़ी परेशानी में पड़ गये आपने उस समय क्यों नहीं कहा, नहीं तो मैं तो उससे उसी समय कहला देती । मैं बड़ी चिन्तित थी पता नहीं क्या बात हो । आपका मुख भी बहुत उदास था ।" सुषमा बोली

"पहले मुझे मालूम न था कि आपका उससे कुछ परिचय है, बाद में मालूम हुआ । वैसे तो कोई बड़ी बात न थी, किन्तु कभी-कभी जीवन में छोटी-छोटी बातें भी बड़ी-बड़ी समस्याएँ बन जाती हैं, उस समय मेरे

साथ भी कुछ ऐसी ही बात घटी। खैर, चिन्ता की कोई बात नहीं। विकल भी अपना घनिष्ट मित्र है और सच पूछो तो दिल्ली में अनेक परिचित व्यक्तियों के बीच में वही अपना एक अच्छा मित्र है, जिससे मुझे समय कुसमय पर बहुत आशाएँ हैं।"

यह पहला अवसर था जब रमेश ने अपने किसी भी मित्र के लिए इतने शब्दों में प्रशंसा की थी। अच्छे व्यक्ति का मित्र भी अच्छा ही होगा—कुछ ऐसा सोचकर सुषमा ने विकल के प्रति अपने भाव बहुत अच्छे बना लिये थे।

"मास्टर जी चाय पीजिये" कहकर उसकी छोटी बहिन ने चाय को कपों में भरकर रख दिया तथा उसके माता और पिता जी भी आ गये जिन्हें वह घर पर मम्मी और डैडी कहकर पुकारा करती थी। "मास्टर जी नमस्ते" की झड़ी लग गयी। वह सोचता था—कितनी सज्जनता है इन लोगों में, कितना स्नेह है। यों तो उसे बहुत से क्रिश्चियन व्यक्तियों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ था, किन्तु जितनी सौम्यता और सज्जनता उसे यहाँ पर दिखाई पड़ी अन्यत्र कहीं भी नहीं। इसीलिए रमेश के हृदय में भी इन लोगों के लिए काफी स्नेह था। इतने दिनों उसने यहाँ पर पढ़ाया, लेकिन कभी भी धर्म आदि की बात नहीं आई और न किसी प्रकार के भेद-भाव की ही। उनके हृदयों में भी ईशा की भाँति राम, कृष्ण और बुद्ध से प्रेम तथा उनके प्रति श्रद्धा है। यह अपने को मानवता वादी घोषित तो नहीं करते, किन्तु उनके हृदयों में मानवता वादी विचार धाराएँ अवश्य हैं। न उन्हें जल्दी-जल्दी किसी के चरित्र पर ही शंका होती है, न कोई और ही बात। यही कारण है कि सुषमा को रमेश से अकेले-दुकेले मिलने तथा उठने-बैठने की पूरी छूट दे रखी थी।

"मास्टर जी, यह पिक्चर-विक्चर बहुत करती है, यदि आपके पास समय हो तो आप इसे एक दिन दिखादें"—सुषमा के पिता ने कहा—"आप अन्य किसी बात की चिन्ता न करें।" वे सोचते थे कि कहीं मास्टर जी पैसे आदि का ध्यान करें, क्योंकि उनके पास कोई विशेष कार्य आजकल

नहीं है। किन्तु रमेश को पैसे की उतनी चिन्ता न थी। दो चार रुपये तो किसी न किसी प्रकार से प्रबंध कर ही सकता था। किन्तु उसे चिन्ता विशेषकर इस बात की थी कि उसके पास समयाभाव था। ट्यूशन न होने के कारण वह एक प्रायवेट फर्म में एकाउन्ट आदि का काम करता था। उसे फर्म का मालिक तीन माह के ट्रेनिंग काल में ३०) मासिक से अधिक देने को किसी प्रकार राजी न हो सका। ३०) दिल्ली में पाकर एक मास का खर्च चलाना यदि ऊँट को सुई के छेद में निकालना नहीं तो और क्या है ? उसने अपनी आमदनी का एक और साधन बना रखा था। रात्रि में वह कपड़े बदल कर स्टेशन पर कुलीगीरी का काम करता था। दुकान का मालिक कभी-कभी इतवार को भी अवकाश न देता था किन्तु आने वाले इतवार को उसे छुट्टी मिलने की पूर्ण आशा थी। अतः उस दिन का पहला शो तै हो गया।

लड़की के माता-पिता विचार और बुद्धि के धनी थे। वे सोचते थे कि लड़कियों पर, उनके समझदार हो जाने पर, अनर्गल प्रतिबन्ध लगाना उनके मानसिक तथा चारित्रिक दोनों विकास के लिए अच्छा नहीं है। उन्हें सुषमा के सद्‌विचारों तथा चरित्र दोनों पर विश्वास था। वास्तव में लड़कियाँ लड़कों से जितनी ही अधिक दूर रखी जाती हैं, उतना ही उन दोनों का विकास अलग-अलग ढंग से होता है। परिणाम यह होता है कि स्त्रियों और पुरुषों के बीच एक खाई सी पड़ जाती है। ईश्वर ने प्राणि वर्ग में दो रूप बनाये एक नर दूसरा नारी। ऐन्द्रिय विभिन्नता होते हुए भी दोनों में अन्य बातें समान हैं। वे दोनों जितना ही अधिक निकट सम्पर्क में आते हैं उतना ही अधिक वे एक दूसरे को अधिक अच्छे ढँग से जान पाते हैं तथा एक दूसरे की प्रेरणा से जो विकास होता है वह अधिक अच्छा होता है। जितना ही दूर रहते हैं, उनका विकास अलग-अलग ढँग से तथा अपूर्ण रहता है। दोनों में जो एक दूसरे के प्रति सहज आकर्षण है, वह उनके विकास का साधन न बनकर विनाश का कारण बनता है। सौन्दर्य-पान तथा प्रेम की लोलुपता, व्यभिचार की भाव-

नाएँ जितना दूर रहकर पनपती हैं, उतना निकट रहकर नहीं। निकट सम्पर्क से जो प्रेम होता है, वह स्थायी होता है।

हमने अपनी सुख वृद्धि के लिए स्त्री और पुरुष के बीच भेद-भाव की एक ऐसी खाई खोद दी है, जिसे पटने में जाने कितनी देर लगे। मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण तथा राज्य करके उसे और भी विस्तृत कर दिया। उनका तो केवल एक ही उद्देश्य था कि वह पर्दे तथा बुर्के की ओट में वह अधिक से अधिक कितनी स्त्रियों से सम्भोग कर सकें। इतिहास इस बात का साक्षी है। स्त्रियाँ उनके लिए गाय-भेंड़ से अधिक और कुछ न रहीं। उन्होंने उन्हें पालतू जानवर से शायद कुछ और न समझा। परिणामतः भारत व्यभिचार तथा भ्रष्टाचार का गढ़ बन गया और आज भी हम उसी चश्मे से अपने को देख रहे हैं। स्त्रियाँ कोई ऐसी मिठाई नहीं हैं, जिसे कोई हाथ में ही लेते खा जायेगा। पुरुषों के साथ प्रत्येक कार्य में कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करने की उनमें शक्ति है। अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्णतया ज्ञान है। लड़कियों के पीछे कालेज के लड़कों का दीवानापन, गुण्डों की भीड़ यह सब उसी का परिणाम है। उनके हृदय में सुन्दर स्त्री से सम्भोग करने की इच्छाएँ विद्रोह सी करती रहती हैं और अवसर पाने पर जब वे भड़कती है तो उसका परिणाम भयावह होता है। यह बात स्त्रियों में भी पुरुषों के प्रति रहती है। उनका तो सदैव केवल यही दृष्टिकोण रहता है कि कोई लड़की जलेबी और रसगुल्ले की भाँति खाने को कब मिले और कब वे अपनी इस चाह को तृप्त कर सकें।

वे सोचा करते थे — किसी भी देश का उत्थान तो अच्छे ढंग से तभी होगा, जब वहां के लड़के और लड़कियाँ समान स्वतन्त्रता और समान प्रकार के नियमों के नियन्त्रण में पलेंगे, मनुष्य को अच्छा ज्ञान मिले और स्वतंत्र रूप से उसे अपने विषय में सोचने का अवसर प्राप्त करे तभी वह अपना आत्मविकास अच्छे ढँग से कर सकेगा। यदि उस पर कोई अपने ज्ञान का ही सदैव अंकुश लगाये रहेगा तो विकास कहाँ विनाश होगा।

हमारे यहाँ भारतीय संविधान के अनुसार स्त्रियों तथा पुरुषों को

समान स्वतंत्रता प्रदान की गई है फिर भी व्यवहार में आने में काफी देर लगेगी। बात यह है कि अधिकतर स्थानों में प्राय: प्रायमरी कक्षाओं से ही लड़कियों और लड़कों को अलग-अलग शिक्षा दी जाने लगती है। बड़े होने पर उनमें मिलने के सपने अँगड़ाई लेने लगते हैं और जब वे विद्रोह करते हैं तो हम अनैतिकता और अश्लीलता के वातावरण को दोष देते है। वास्तव में सरकार और जनता दोनों को ही इस दिशा में सक्रिय कदम उठाना चाहिए।

काफी देर तक सुषमा तथा उसके घरवालों में और रमेश में बातें होतीं रहीं। रात के आठ बज चुके थे। रमेश सबको नमस्ते करते हुए चल पड़ा।

× × ×

इतवार का दिन था। रमेश दुकान के मालिक से आज्ञा लेकर घर चला आया। घर पर आया तो उसे एक कवि सम्मेलन का निमन्त्रण आया हुआ था। वह वास्तव में अब कविता न करता था, किन्तु कविता की प्रतिभा उसके पास अवश्य थी। उसने साहित्यिक क्षेत्र की छीछालेदर देखकर तथा देश को कर्मठ व्यक्तियों की आवश्यकता देखकर इस प्रतिभा की कुछ उपेक्षा सी कर दी थी। वह सोचता था—यश केवल कविता में नहीं ही है। मनुष्य का प्रत्येक श्रेष्ठ कार्य उसके अक्षुण्ण गौरव की ओर ले जा सकता है।

हिन्दी साहित्य के मठाधीशों की अपनी शिष्यता का जाल बिछाने, बेकारी तथा मिथ्या यश लोलुपता की भावना ने सहस्रों लेखकों और कवियों के अंडे उगल दिये। जिसे देखो वही कवि जिसे देखो वही लेखक। कोई ईंट उठाओ कवि और लेखक निकल पड़ेंगे। यही नहीं वे अपने को किसी आचार्य से कम नहीं समझते। हिन्दी में कवि और लेखकों की इस प्रकार भीड़ लग गयी है कि कोई भी सम्पादक बिना चाय पान अथवा कुछ घूस लिए अच्छी से अच्छी कविता को रद्दी की टोकरी में फेंकने को तत्पर है। 'खेद सहित धन्यवाद' के पत्र तो उसने छपवा कर रख ही लिये हैं। सम्पादकों की घूस भी विचित्र प्रकार की घूस है जो सिक्कों

में नहीं किन्हीं दूसरे माध्यमों द्वारा दो जाती है। इसका अनुभव तो किसी युक्त भोगी के पास ही होगा।

हमारे देश का अनैतिकता का बाजार इस प्रकार से गर्म हुआ है कि यह बात बेचारे सम्पादकों तक ही सीमित नहीं रही जमाने की हवा बन गई। लेखकों और कवियों ने भी अपनी सहृदयता को ताक में रख दिया। गुटबाजी का बोलबाला हो गया। यदि किसी लेखक अथवा कवि की कविता के सम्बन्ध में यदि कोई सहायतापूर्वक भी कुछ कह दे तो वह सड़क, रेस्टराँ, कवि सम्मेलन आदि में कहीं भी मल्लयुद्ध करके अपनी काव्य शक्ति अथवा लेखन शक्ति का परिचय देने को तत्पर हो जायेगा। दिल्ली तो दिल्ली ही है। इस सम्बन्ध में कानपुर की भी अपनी ही विशेषता है। एक समय में कोई हटिया, सूटरगंज, जवाहर नगर, मालरोड, तिलक लाइब्रेरी आदि में आसानी से कवि सम्मेलन कर सकता है। स्वागत और सम्मान करने की भी कोई आवश्यकता नहीं, चाय पिला देना काफी है। और यही नहीं कोई उन्हें कविता पढ़ने का अवसर प्रदान करता है, यही क्या कम है। और यदि किसी को ड्रामे आदि देखने की विशेष अभिरुचि है तो सभी मुहल्लों के दिग्गजों को एक ही प्लेटफार्म पर बुलायें। नगेश जी मंच पर से बाँहें संभालते हुए दौड़ेंगे तो प्रवेशजी डंडा लेकर उतर पड़ेंगे। फिर कौन किसकी माँ बहन को छोड़ने वाला है। धन्यवाद के पात्र हैं ऐसे कवि और कवि सम्मेलन और इस सम्बन्ध में कोई कुछ कहने की धृष्टता करे तो कम से कम अपने घर में किसी से हल्दी बँटवाकर रख देने की इत्तिला अवश्य करवा दे।

जमाने की हवा कुछ इस प्रकार बदली कि फिल्म कम्पनी और रेडियो स्टेशन खुदा के घर बन गये। कोई भी वहाँ की भभूत लगाकर अपने को कलाकार, संगीतकार, साहित्यकार घोषित कर सकता है। एक जमाना था जब बेचारे रमेश ने भी रेडियो स्टेशन के चक्कर लगाये थे। लेकिन उसे कोई सफलता न मिल सकी। कई सहृदय व्यक्तियों ने उसे सलाह दी कि वह लड़के से लड़की बन जाये तो अवश्य ही उसे सफलता मिल

जाये। चमेली से चन्द्रप्रकाश बनाने वाले डा० तो हो गये थे फिर भी कोई भी कम्बख्त ऐसा डा० न मिल सका उसे लड़के से लड़की का सार्टिफिकेट दे देता। कुछ शुभचिन्तकों ने उसे चापलूसी और हाँ-हजूरी की दूसरी योग्यता बतायी कि दुर्भाग्यवश वह इस कार्य में भी अपने को निपुण न कर सका। तीसरी योग्यता जानकर भी वह अभागा का अभागा ही रह गया क्योंकि गुटबाजी का गुरुमन्त्र वह अपने जीवन में न ले सका था। करता भी तो क्या करता। जिस रास्ते से जाता, बिल्ली रास्ता काट जाती।

उसने ऐसे भी कवि देखे थे, जो थे तो मानवतावादी। गीत प्रेम के गाते थे लेकिन किसी गुंडे से कम नहीं। लडकियाँ पटाने के मन्त्र तो उन्हें एक नहीं सैकड़ों आते थे और सच पूछो तो असली उनका यही लक्ष्य था। वरना वह बहुत से काम कर सकते थे। एक पंथ दो काज हो जायें, तो क्या बुरा।

प्रकाशकों के भी कभी चक्कर लगाये थे। वहाँ भी उसने यही देखा था--कविता संग्रह तो वे छाप नहीं सकते क्योंकि चातक जी आकुल जी, विरही जी के उन्होंने संग्रह छापे थे, चाहे वे कविताएँ न होकर कोरी-कोरी बकवास हों, चाहे उनको पढ़कर कोई समझदार पाठक कुछ खिन्नता अनुभव करे, किंतु वे चले नहीं इसलिए उनकी दृष्टि में कविताओं का संग्रह निकालना एक बकवास है। बात यह है सावन के अन्धे को सब हरा-हरा ही दिखाई पड़ता है। हाँ, यदि कोई उपन्यास लिखा होता तो शायद छप जाता। और उपन्यास भी कैसा होना चाहिए, अनुभव या ज्ञान की बात नहीं, मनचली और चटपटी बातें जरूर होनी चाहिए तथा नकद रुपया मिलने को भी नहीं बिकने पर मालूम होगा। और मिलेगा तो इतना जितना उपन्यास लिखने के चौथाई समय में आसानी से झल्ली ढोकर कमाया जा सकता है। और उपन्यास में मोटर या साइकिल घटना अथवा पार्क मिलना ऐसी कुछ बात अवश्य होनी चाहिए बाकी तो उनके मुंशी लेखक ही पूरा कर लेंगे। फिर उन बेचारों का भी तो कोई दोष नहीं नये लेखकों ने तो उनकी नाक में दम कर रखी है।

बड़े-बड़े प्रकाशकों का तो वह सपना भी नहीं देख सकता था। और फिर आप ही सोचिये कि वहाँ भी तो सबसे बड़ी योग्यता है कि किसी की उनके प्रायवेट सेक्रेटरी से कितनी घनिष्टता है। कितनी बार उसने उन्हें चाय पिलाया। कितनी बार वह उनके साथ सिनेमा देखने गया। फिर उसे जी-हजूर करना भी तो अच्छी तरह से नहीं आता था जब कि वहाँ पर बड़े-बड़े हुक्का भरते थे। रेडियो स्टेशन के मठाधीस तक चक्कर काटते थे। उन्हें क्या किसी प्रतिशत पर रौयल्टी मिलनी चाहिए। किसी-न-किसी परीक्षा में अपनी पुस्तक घोषित कर लेना, इनाम प्राप्त कर लेना तो उनके बायें हाथ की बात है। और हो सका तो सुपरवाइजर महोदय को भी कभी-न-कभी रेडियो स्टेशन से दक्षिणा दिलवा दें। आप यह निश्चित समझ लें कि कवियों और लेखकों में अच्छी प्रतिभाएँ वे नहीं हैं, जिन्हें आप समाचार पत्रों में देख रहे हैं, रेडियो पर सुन रहे हैं, जिन्हें रँगे चुँगे पुस्तकों के मुख्य पृष्ठ पर देख रहे हैं, जिनके नाम पर इनाम घोषित किये जा रहे हैं और पुष्पमालायें पहनाई जा रही है। अच्छी प्रतिभाएँ तो हवन की सामग्री रही हैं। किसी ने आत्महत्या करली होगी तो कोई अपनी विवशता और दुर्बलता पर आँसू बहा रहा होगा। कोई भाड़ झोंक रहा होगा तो कोई ठेला खींच रहा होगा तो कोई तंदूर के फुलके बनाकर अपनी प्रतिभा को भी भट्टी की आँच में सेंक रहा होगा। जो कुछ आज दिखाई पड़ रहीं ये सड़ी-गली प्रतिभाएँ हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी की बदौलत नहीं; अपनी चापलूसी, हाँ हजूरी की बदौलत स्थान बना लिया जो सामर्थ्यवान लेखकों के पुछल्ले बन गये। चूँकि आपने इन्हीं को देखा है इसलिए आप उनके सम्बन्ध में ऐसा विश्वास कैसे कर सकते हैं जैसे आप ईश्वर के आकार स्वरूपों से उनके निराकार स्वरूप से अधिक विश्वास करते हैं। शायद आपको यह भी विश्वास न हो कि इन लेखकों और कवियों से अधिक उच्च कोटि के लेखक निराशावाद की भयावह गोद में पल रहे हैं। आप ही सोचिये यदि किसी के पास प्रतिभा है किन्तु उसका उचित उपयोग तथा उचित प्रोत्साहन न हो सकेगा तो निश्चित

ही उसका विनाश होगा। दुख तो इस बात का है कि यह नग्न सत्य होते हुए भी लोगों को कम दिखाई पड़ता है।

उसने अपनी आँखों से देखा था कि कितने ही ओजस्वी विद्यार्थी धनहीनता के कारण उच्च शिक्षा न प्राप्त कर सके। धनहीनता अशिक्षित लड़की की भाँति उनके पाँव पकड़ कर बैठ गयी।

वे प्रतिभाएँ जो देश, समाज तथा कला और साहित्य में नव-निर्माण का शंख फूँक सकती थीं उस कली की भाँति जन्मी जो अनफूले ही मुरझा गई। जीवन की घटनाओं को देखते-देखते उसका हृदय बहुत कुंठित हो गया था। वह सोचता था—उसे यदि अपनी प्रतिभा के विकास का अवसर न प्राप्त हो तो कोई बात नहीं, लेकिन जो लाखों प्रतिभाएँ कुढ़-कुढ़ कर जीवन-यापन करती हैं कम-से-कम वे तो समाज और देश की उन्नति में सहयोग देने की स्थिति में आ सकें। 'मारते-खाते' का जमाना तो चलता ही रहेगा। सामूहिक हितार्थ को ध्यान रखकर कार्य करने वाले समाज में बहुत थोड़े हैं। यही सोचकर उसने निश्चय किया था कि वह साहित्य सेवाएँ न करके भी देश तथा समाज सेवाएँ अवश्य कर सकता है क्योंकि उसके हृदय में आदर्शवाद की अपेक्षा कर्मठता से अधिक प्यार था। उसने संकल्प किया था कि वह एक मजदूर कुली की भाँति जीवन व्यतीत करके उनको नयी चेतना का संचार करेगा। इन मजदूरों में सारे गुण हैं, किन्तु शिक्षा के अभाव ने उन्हें बौद्धिक रूप से पतित कर दिया है। इसी कारण उनमें मानवीय अवगुण अपना प्राधान्य बनाये रहते हैं। किन्तु देश का पुनरुत्थान तो सबके सहयोग और सबकी उन्नति से होगा। जब मनुष्य के पेट और रोटी ही उसके एक महान समस्या बन जाते हैं तब वह उनके अतिरिक्त सोच भी क्या सकता है। उसने देखा था कि गुण्डे लोग चन्द पैसों के लालच में अपनी मानवता को तिलांजलि दे देते हैं; मनुष्य होकर भी जानवरों जैसा व्यवहार करते हैं, समाज में रहकर भी समाज की शिष्टता से परे रहते हैं। प्रश्न उठता है आखिर क्यों?

इन्हीं सब बातों को सोचकर देश के नवनिर्माण तथा समाज-सुधार

की भावना को लेकर रमेश ने कविता को छोड़कर कर्मठता को गले लगाया था। वह सोचता था—साहित्य-सृजन करने वालों की अपेक्षा देश को उन व्यक्तियों की आवश्यकता है जो उसके बहुमूल्य सिद्धान्तों के आधार पर अपने जीवन के कार्यों को ढाल सकें। कवियों और लेखकों का थोड़ा-सा भ्रम है—उनका यश अक्षुण्ण रहेगा। युग-युग तक लोग उनकी कीर्ति गायेंगे। किन्तु, वास्तव में, ऐसी बात उनकी मधुर कल्पना ही है। आज हम जिन्हें श्रद्धा के सुमन चढ़ाते हैं, कल का समाज उन्हें पाँवो के नीचे भी रौंद सकता है। इसका निर्णय तो बदलते हुए समाज की मनोभावनाएँ करेंगी। हाँ, उनका सहयोग मानवता के विकास में अवश्य सहायक है सो अच्छे अन्य कार्य भी। यह कभी भी नहीं सोचा जा सकता कि भावी युग में एक शिल्प-कार का मान सबसे अधिक होगा, या राजा का, या नेता का, या कवि का, या बावर्ची का, या किसान का अथवा पंडित का। अच्छा कार्य सदैव महान है, चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा। जिस वस्तु का मूल्य हम आज नहीं चुका पाते हैं कल अवश्य चुकाना पड़ेगा। वास्तव में साहित्यकार की सेवाएँ देश तथा मानवता के लिए कुछ कम नहीं, किन्तु यदि हम उनका अपने व्यावहारिक जीवन तथा रचनात्मक कार्यों में उपयोग नहीं करते तो वे किस काम की। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि आज के साहित्यकार अपने कर्त्तव्यों का कहाँ तक निर्वाह कर रहे हैं। कालिदास, तुलसी, शेक्सपियर और गोर्की होने की सभी सोचते हैं, किन्तु क्या उनके जैसे हृदय और साधना भी उनके पास हैं? बहुत-सी बातें थीं, जिन्हें उसने साहित्य-कारों के निकट सम्पर्क में रहकर, उनके व्यवहार, विचार तथा हृदय आदि को अच्छी तरह से देखकर अनुभव के रूप में एकत्र थीं और जिनके आधार पर अपने जीवन के सिद्धान्त बनाये थे।

वह घर पर आकर बैठा ही था कि सुषमा आ गई।

"मास्टर जी नमस्ते"

"नमस्ते, बैठो सुषमा।"

सुषमा पास की पड़ी हुई चारपाई पर बैठ गयी।

"सुषमा, तुम्हें कविताओं से विशेष रुचि थी। मेरे लिए एक स्थान से निमंत्रण आया है, तो मैं सोचता हूँ कि आज तुम्हें कवि-सम्मेलन दिखा लायें, पिक्चर से क्या मिलेगा। और पिक्चर के समय तक यह भी समाप्त हो जायेगा।" रमेश ने कहा।

"जैसी आपकी इच्छा हो" कहकर सुषमा ने रमेश की इच्छा को ही अपनी इच्छा बना दिया। कितना मोहक है इसका स्वभाव, किन्तु कर्त्तव्य प्रेम से भी बढ़कर है और चरित्र हिमालय से भी अधिक उन्नत वस्तु है, यही बात सदैव रमेश के समक्ष रही। वह योगी की ही भाँति माया में लिपट कर भी उससे निर्लिप्त है, कमल की ही भाँति पानी में रहकर भी उससे दूर है। उसका सुषमा के स्वभाव तथा व्यवहार से स्नेह है, किन्तु सौन्दर्य से नहीं।

"तो क्या आप कविता भी करते हैं ?" सुषमा ने पूछा

हाँ, कभी करता था, मगर अब नहीं।

"तो आपने कभी सुनाया नहीं।"

"मैंने कोई ऐसी आवश्यकता भी अनुभव नहीं की।"

"तो क्या आप सुनायेंगे भी नहीं।"

"यह अब सम्भव नहीं।"

"क्यों ?" बड़े आश्चर्य से सुषमा ने पूछा। उसे कविताओं से विशेष अभिरुचि थी, किन्तु कवि सम्मेलन आदि जाने का कोई अवसर उसे न प्राप्त हुआ था।

"क्यों का उत्तर देने में देर लगेगी फिर कभी दूँगा"—कहकर रमेश ने चलने की जल्दी की।

× × ×

कवि-सम्मेलन प्रारम्भ हो गया था। यह दिल्ली के टाउन हाल में हो रहा था। जब वह गया तो कोई जोकर भाई अपनी ऊँटपटाँग बातों से जनता को हँसा रहे थे। हँसते-हँसते लोगों का पेट फूल रहा था। किसी को वह बिल्ली बना रहे थे तो किसी को कुत्ता। स्वयं तो सिर ताज थे

ही। किसी की नाक को इलायची बता रहे थे, तो किसी के मुँह को छुहारा, यही था उनकी कविता का स्तर। किसी को साले कहकर सम्बोधित कर रहे थे, तो किसी को गधे की महान उपाधि से विभूषित कर रहे थे। किसी मिनिस्टर को गालियों के विशेषणों से अलंकृत कर रहे थे तो किसी अफसर पर अपनी आग उगल रहे, यद्यपि वे स्वयं नेता जी थे। दूसरों के रूप को कुरूप बनाने में बड़े चतुर चित्रकार थे। खुदा ने शायद इसीलिए उनकी शकल-सूरत भी नमूने की ही बनाई थी। यह था उनकी कविताओं का स्तर फिर भी जनता देवी हँस रही थी, मजे ले रही थीं। उनकी इस बकवास के पीछे उनका एक महान लक्ष्य था—साहित्य सेवा का नहीं अच्छे साहित्य का निर्माण नहीं—अच्छी पोस्टिंग का। मिनिस्टर साहब घबराकर कहीं उनकी अच्छी पोस्टिंग कर दें और फिर क्या वह सिद्धहस्त तो हैं ही आज ऐसी कविता करते हैं, कल को उनके गुण गाने लगेंगे। वोट घसीटने की मशीन का काम करेंगे। विचित्र-विचित्र हस्तियाँ मंच पर विद्यमान थीं। सभापति महोदय ने ध्वनिविस्तारक यंत्र से घोषित किया अब हिन्दी के उदीयमान कवि विकल अपनी कविता पाठ करेंगे। उनके सम्बन्ध में कुछ अधिक विशेषण न जोड़े गये थे क्योंकि वह उनकी पार्टी के न थे। यह भी उन्हें विवश होकर ही कहना पड़ा। वास्तव में यदि उनका वश चलता तो उसको प्रोग्राम भी न देते, किन्तु जनता विकल से बिना कविता सुने नहीं मानती।

विकल की कविताएँ दिन पर दिन परिमार्जित होकर उच्चकोटि की होती जा रही थीं। विकल ने अपनी सुमधुर ध्वनि से कविता पढ़ी—

रूप ने सौ-सौ बार छला
न माना फिर भी मेरा मन।

(१)

बहुत पछताये मेरे प्राण चाँदनी पर होकर आसक्त।
निशा से भी कर सका न प्यार विभा पर होकर के अनुरक्त

रूप की निष्ठुरता ने किये मोम से उर में अनगिन घाव।
मगर उसको कैसे दूं दोष बिना जिसके हो उर-उन्मन

× × ×

(२)

नयन से यह समझाकर कहा—"न जाना तुम कलियों के द्वार।
उन्हें निज सुन्दरता पर गर्व, कहीं देंगी तुमको दुत्कार।"
नयन उत्तर में कहने लगे—"बात यह कब रह पाती याद,
देखकर कोई सुन्दर कली छलक उठता जब विह्वलपन।"

(३)

प्राण से पतझर लिपटा रहा, दृष्टि के सम्मुख रहा वसंत।
एक क्षण भर भी रहा न साथ सृष्टि का यह सौन्दर्य अनंत।
चाहता मैं लहरों का प्यार, डालती गलबाहें बड़वाग्नि,
मरुस्थल में है मेरा नीड़, दृष्टि क्यों जाती नंदन वन।

(४)

आज तड़पन ही मेरे लिए, बन गयी एक अमर वरदान।
व्यथा की बजती शहनाई, चिता पर बैठी है मुस्कान।
निराशा-अग्नि जली इस तरह, बन गयी आशाएँ सब भस्म,
न फिर भी हुई रूप से घृणा, चाह का इतना पागलपन।

(५)

नयन में ही घन घुमड़ा किये, हृदय की मिटी न फिर भी प्यास।
पास का नीर न आये काम, दूर के जल का क्या विश्वास।
हृदय-सागर में कितनी बार, उमंगों की सीमाएँ तोड़,
तृषा सिर धुनती रही, मगर पसीजा तनिक न निष्ठुर पन।

लोगों ने कविता को बहुत पसन्द किया। पुनः पुनः की ध्वनि आई

और अन्तिम पंक्तियाँ तो लोगों ने जी खोलकर पसन्द कीं। उसने सुषमा को बैठे हुए देखकर एक कविता और सुनाई जो विशेषतय: उसके लिए ही लिखी थी।

ये हुस्न ये नजाकत सारी उमर न होगी,
मैं बे गुनाह मुझको इतना नहीं सताओ।

(१)

मेरा न और कोई इस दर्द के अलावा।
यह रूप दे रहा है हर क्षण मुझे भुलावा।
मुस्कान यह तुम्हारी, ये मद भरी निगाहें।
बस देखकर उमड़तीं उर में अमिट कराहें।
अँगड़ाइयाँ न लेकर यों बिजलियाँ गिराओ।
मैं बे गुनाह मुझको इतना नहीं सताओ।

(२)

मन चाहता तुम्हें मैं अपना सदा बना लूँ।
रोते हुए क्षणों में कुछ देर मुस्करा लूँ।
उर में जलन बहुत है थोड़ी इसे मिटा दो।
यह प्यास प्यार की है प्रिय, हो सके बुझा दो।
मैं रो चुका बहुत हूँ, अब और मत रुलाओ।
मैं बे गुनाह मुझको इतना नहीं रुलाओ।

(३)

मैं भी कभी न हूँगा, तुम भी कभी न होगी।
यह रूप भी न होगा तो गर्व क्या करोगी।
इस बेकरार दिल को इतना यहाँ बतादो।
'क्या प्यार है तुम्हें भी?' उत्तर मुझे बतादो।
मैं जल चुका बहुत हूँ, अब और मत जलाओ।
मैं बे गुनाह मुझको, इतना नहीं सताओ।

इस कविता को अन्य साहित्यिकों तथा जनता ने अधिक पसन्द नहीं किया, किन्तु फिर भी सुषमा को बहुत अच्छी लगी। वह स्वयं जानता था कि यह कविता उसकी अधिक साहित्यिक नहीं है, तथापि उसने पढ़ना इसलिए चाहा क्योंकि जिस लिए उसने लिखी है शायद वह पूरा हो जाये।

कविता पढ़ने के उपरान्त विकल मंच से उतर कर रमेश के पास आया और सुषमा के होने से उसका मन कुछ प्रसन्न था। किन्तु वह सोचता था—रमेश का शायद सुषमा से प्यार हो, जिसे उसने उससे गोपनीय बना रखा हो। और ऐसी अवस्था में नहीं वह उसके रास्ते का रोड़ा न बन जाये। अतः उसने अपने उभरते हुए प्रेम को तिलांजलि दे देना चाहा था क्योंकि उसके हृदय में अपने सच्चे मित्र के लिए भी अपनी प्रेमिका से कम स्नेह न था। सुषमा ने विकल की कविताओं की आवश्यकता से अधिक प्रशंसा की और उसे अपने घर आने का निमंत्रण भी दे दिया। इस बात से विकल अपने मन में काफी प्रसन्न हो रहा था, किन्तु उसका मानसिक अन्तर्द्वन्द्व समाप्त नहीं हो पा रहा था।

"अच्छा, तो आप किसी दिन मेरे यहाँ तशरीफ लायेंगे ?" सुषमा ने पूछा।

"जिस दिन आप कहें।" विकल ने उत्तर दिया।

"मेरे कहने से क्या होगा, यह तो आपकी इच्छा पर निर्भर करता है। मैं तो कहती हूँ कि आप अभी चलें—" सुषमा बोली।

"तो अभी चलता हूँ," कहकर विकल सुषमा और रमेश के साथ चल दिया और टाउनहाल के बाहरी कम्पाउन्ड से निकल कर वे लोग सामने चाँदनी चौक के एक रेस्ट्राँ में बैठ गये। चाय की चुस्कियों के साथ वे लोग आपस में बातचीत करते रहे। रात के साढ़े नौ बजे का समय था अतः रमेश ने चलने को कहा क्योंकि वह जानता था कि सुषमा को घर पर दस बजे तक अवश्य पहुँच जाना चाहिए। घर पर उसके माता-पिता उसकी प्रतीक्षा में होंगे। यह सोचकर सब एक दूसरे को नमस्ते करके चल पड़े कि सुषमा ने विकल को रोकते हुए कहा—"अच्छा तो आप फिर

चले नहीं, यों ही कह रहे थे।"

"मैं सोचता हूँ आप लोगों को क्यों अधिक कष्ट दिया जाये, फिर कभी सही।" क्योंकि विकल भी जानता था यह तो तकल्लुफ की बात है।

"अच्छा तो आप अगले इतवार को शाम को मेरे यहाँ आइयेगा। क्यों मास्टर जी ठीक है ना ?" सुषमा ने रमेश की सहमति लेते हुए पूछा। रमेश मौन रहा क्योंकि वह जानता था पता नहीं उस दिन मालिक उसे अवकाश दे या न दे। बड़ी कठिनाई से नाक भौं सिकोड़ कर तो उसने इस इतवार को ही छुट्टी दी है। वह 'ना' भी नहीं कर सकता था। इसीलिए वह मौन ही रहा। अगले इतवार को सुषमा के यहां चलने की बात पक्की हो गयी,

"अच्छा रमेश, तो फिर मैं आपके यहाँ होते हुए ही चलूंगा।" कह कर विकल टाउनहाल की ओर चल पड़ा। क्योंकि उसको सब्जी मंडी तक जाने की सवारी का वहाँ से कवि सम्मेलन के संयोजक कुछ-न-कुछ प्रबन्ध कर ही देंगे।

"अच्छा नमस्ते," कहकर रमेश और सुषमा नई सड़क से सुषमा के घर चल पड़े।

जाड़ों की रात के दस बजे का समय था। सड़क पर भीड़-भाड़ कम थी। इने-गिने ही आदमी चल रहे थे। वैसे शाम के समय तो इस सड़क पर मारे भीड़ के देह छिलने लगती है। रिक्शे और ताँगे वाले भी कम हो गये थे। जो चलते भी तो मनमानी हवा के चाल से सरसराते हुए रिक्शे को ले जा रहे थे मानों भारत की सारी स्वतन्त्रता उन्हीं को प्राप्त हो गयी हो। गुण्डों तथा आवारा लोगों के समूह इधर-उधर जा रहे थे। एक आध पुलिस वाले भी गश्त लगा रहे थे। इस समय जाने वाली युवतियों को लोग बहुत घूर-घूर कर देखते हैं, उल्टे-सीधे व्यंग्य भी करते हैं। यदि अवसर मिला तो एक-आध धक्का भी छेड़खानी करने के लिए लगाकर निकल जाते हैं। धीरे-धीरे वे लोग चावड़ी बाजार के रास्ते जामा-मस्जिद की ओर आये। यह स्थल इसीलिए विशेष महत्व का नहीं है कि

ऐतिहासिक है, बल्कि दिल्ली में तो विशेष रूप से इसका इसीलिए महत्व है कि यहाँ निर्धन, आवारा, गुण्डे, मैले-कुचैले आदमी, डलियावाले, खोमचे वाले और झल्लीवाले सभी आकर इकट्ठे होते हैं। यहाँ पर आकर कोई भी यह अवश्य सोचेगा कि वह नरक में आ गया है। कसाई, कबाड़ी, जुँआरी, शराबी और लफंगा कौन यहाँ पर नहीं इकट्ठा होता है। कोई मस्ती के गाने गाता है, तो कोई प्रीतम की बेवफाई पर रोता है कोई अपने सीने का जोर दिखाता हुआ चलता है तो कोई सीटियाँ बजाता है। कोई किसी की छाती पर सवार हो जाता है, तो कोई किसी से धर-पटक करता है। रात्रि के इस समय तो यहाँ पर इन लोगों का एक छत्र राज्य रहता है। पुलिस वाले, वैसे तो दिल्ली की पुलिस बड़ी शर है कम से कम शरीफ आदमियों के लिए, इनसे थोड़ा दुबककर ही रहते हैं। वे भी बेचारे सोचते हैं कि खाँमखाँ में कौन इनसे जहमत मोल ले।

यकायक बेकार जी दिखाई पड़े। मैट्रिक पास बेकार जी को जब कोई नौकरी न मिली तो उन्होंने अपना बेकार नाम रखकर कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया। ये हास्य रस तथा गम्भीर कविताओं दोनों में ही अपनी कलाबाजी दिखाते रहे, किन्तु जब उधर से भी कोई काम न बना तो इन्होंने रिक्शे चलाने का काम प्रारम्भ कर दिया। इनमें इनके दो लाभ थे कोई आशिक दिलवाली कहीं रिक्शे में ही टकरा गई तो फिर क्या दिन दूनी रात चौगुनी कमाई होगी। गुण्डागीरी में भी ये बड़े निपुण थे। मारधाड़ के मौकों पर चाकू भी चला सकते थे। वह कवि और शायर दोनों ही थे। उर्दू के भी काफी मर्मज्ञ थे। हाँ, कविता लिखने का कष्ट कम करते थे। किसी की भी कविता को अपनी कहकर सुना देने से ही, वह अपना उल्लू सीधा कर लेते थे। और कोई कुछ कहने की धृष्टता करे तो उसे पहले उनसे जोर आजमाना पड़ता था। यह भी दिल्ली के महान् व्यक्ति थे। थे तो बेचारे यह भी मुसीबत के मारे लेकिन मुसीबत के मारों को ठगने में, या उन्हें हानि पहुँचाने में इन्हें कोई दर्द न होता था।

इन्होंने रमेश को भी कुछ गुरुमन्त्र दिये थे, लेकिन रमेश तो कवि

के रूप से अपनी प्रसिद्धि का ही उत्सुक न था। यकायक रिक्शे को रोक कर तथा आँखों की लज्जा को बेचकर रमेश से नमस्ते किया। और 'आइए आप लोगों को रिक्शे पर घर पहुँचा दें' कहकर बेकार जी रमेश के साथ हो लिए, किन्तु वह रिक्शे की अपेक्षा पैदल जाना ठीक समझता था। इस कारण उनकी इस मेहरबानी के लिए रमेश के मुख से 'धन्यवाद' ही निकल सका। वह रमेश को अपने रिक्शे पर किसलिए बैठाकर भेजना चाहते थे, यह तो बताने की कोई आवश्यकता नहीं। फिर भी वह थोड़ी दूर तक रमेश के साथ-साथ चले। कूचा चेलान के कोने की दूकान पर पहुँचकर रमेश ने उन्हें एक पान खिलाकर विदा ली। और सुषमा के साथ उसे उसके घर भेजने चला गया। उसे घर पर भेजकर वह अपने घर की ओर लौटा। सुषमा के घर के लोग वहीं सो रहने के लिए कह रहे थे, किन्तु उसने अपने विचारों से कुछ अधिक ठीक न समझकर अपने घर की ओर चला आया। घर पर आकर घण्टे भर तक किवाड़ खटखटाता रहा। बड़ी मुश्किल से किवाड़ खुले। मुहल्ले के लगभग सभी लोग जाग चुके थे, किन्तु मोटी बहन जी तथा उनके घरवालों में से किसी की भी नींद नहीं टूट सकी। मोटी बहन जी ने जाने कितने ताने और झिड़कियाँ देकर अपने पति देवता को किवाड़ खोलने को कहा।

वह बहुत थक गया था। और उनकी झिड़कियों तथा तानों ने उसकी थकन और बढ़ा दी थी।

मनुष्य कितना स्वार्थी है, कितना इन्सान और कितना हैवान, रमेश यह सब-कुछ दिल्ली में देख चुका था। और देखते-देखते ऊब गया था, किन्तु वह हिमालय की तरह सहनशील तथा सागर की भाँति गम्भीर और उदार था। वह बहुत कुछ देखता तथा कानों से सुनता फिरभी अपने ऊपर उसका कोई प्रभाव न आने देता। वह फूल की भाँति दुखों के कंटकों को सहकर मुस्कराता रहता। काफी थक जाने के बाद वह सो गया।

इतवार का दिन था। सुषमा नित्य के कामों से निवृत्त होकर नये मेहमान विकल तथा रमेश के लिए कुछ नमकीन आदि बनाने में लग गई। वह चाहती थी कि सारी वस्तुएँ साथ की चाय के लिए बाजार से न मँगवाकर घर पर ही तैयार की जायें, उसके घर वाले भी इसी विचार के थे। वे बाजार की वस्तुओं से घर की बनी हुई वस्तुएँ अधिक पसन्द करते थे। क्रिश्चियन होते हुए भी उनमें यह भारतीय गुण था। उनके रोम-रोम में आज उल्लास छाया हुआ था।

"कितने बजे आयेंगे", सुषमा की माँ ने पूछा।

"शाम को, लेकिन समय बिल्कुल निश्चित नहीं है, शायद [illegible]-सात बजे आ जायँ।" सुषमा ने उत्तर दिया।

"अच्छा, तो क्या-क्या तुमने बना डाला है?"

"मठरी, समोसे और दालमोठ।"

"तो बस ठीक है, हलुआ और चाय शाम को बना लेना। हलुए के लिए आटा पहले से ही भून लो। ताकि उस समय देरी न लगे। उसने अपनी माता जी के कहने के अनुसार ही किया। शाम की प्रतीक्षा में उसे दोपहर का एक-एक पल एक वर्ष हो रहा था। कब शाम आये और कब वह उन लोगों के दर्शन कर सके।

दुकान के मालिक ने इतवार के दिन भी रमेश के लिए काफी काम तैयार कर रखा था। उसे इतवार के दिन आने को भी कह दिया था और इतवार के दिन दुकान बंद रखने के कारण उसे घर पर ही बुलाया था। किंतु मालिक से उसने चार बजे तक छुट्टी दे देने के लिए कह दिया था। मालिक ने भी हाँ कर ली थी।

वार के साढ़े चार बज गये थे, किन्तु काम फिर भी समाप्त न हुआ

था। काम कोई खास न होते हुए भी वह खामखाँ की झख मार रहा था। रमेश ने देर होते हुए देखकर जब उससे छुट्टी माँगी तो वह बोला—"अभी पिछले एकाउण्ट में थोड़ा हिसाब-किताब कुछ ठीक नहीं मालूम होता, उसे समझाकर जाओ।"

रमेश सोचता था कि विकल को उसने अपने यहाँ शाम को आने के लिए कह दिया है। वह अवश्य आयेगा और उसे घर पर न पाकर उसे कुछ खिन्नता अनुभव होगी। दूसरे वह भावुक है, जाने क्या-क्या सोच बैठेगा। दूसरे सुषमा भी अपने घर पर उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। यही सोचकर उसने पुनः मालिक से कहा—"मुझे एक विशेष आवश्यक कार्य से जाना है, यह काम कल आकर कर दूँगा। और कल जल्दी ही आ जाऊँगा।" किन्तु इन मोटे पेट वालों के पास किसी की आवश्यकता अनुभव करने वाला हृदय कहाँ? उन्हें तो अपने काम से मतलब है। रमेश के इस निवेदन का उसके पास यही उत्तर था—"अच्छा तो काम कल हो जायेगा। यह रहा आपका हिसाब।"

"यह रहा आपका हिसाब" सुनकर रमेश के काटो तो खून नहीं। वह थोड़ी देर मौन मुद्रा में खड़ा रहा और समय के इस व्यंग्य को बड़ी गम्भीरता से सुनता रहा। उसके हृदय का स्वाभिमान उभर रहा था। उसने आने वाली आर्थिक आय की भी चिन्ता छोड़कर २०रु० अपनी जेब में रखे और घर की ओर चल दिया। पेट की भावी चिन्ता गाम्भीर्य का रूप धारण किये हुए उसके मुख पर बिखर रही थी। विकल ने देखते ही उसे पहचान लिया कि वह किसी गहरी चिन्ता में है। विकल साढ़े चार बजे उसके घर आया था और तब से बैठा वह रमेश की प्रतीक्षा कर रहा था। रमेश को इस अवस्था में देखते ही उसने पूछा—"रमेश क्या बात है, आज मुख पर इतनी अधिक उदासी किस लिए?"

रमेश उत्तर दे भी तो क्या दे। "नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं," उसने केवल यही उत्तर दिया क्योंकि वह अपने दुख का अधिक ढिंढोरा पीटना अच्छा नहीं समझता था। "अच्छा तो चलें," कहकर वह विकल

के साथ सुषमा के घर की ओर चल दिया ।

सुषमा घर पर काफी देर से उन सबकी प्रतीक्षा कर रही थी । सात बज गये थे और वह निराश हो चली थी, किन्तु रमेश और विकल को देखते ही उसका मन प्रसन्न हो गया । उसके स्नेह तथा मधुर बोली से रमेश को ऐसा लगा मानों उसकी आर्थिक चिन्ता थोड़ी देर के लिए उसे मुक्त कर गयी हो । वरना वह भी प्रेतात्मा की भाँति उसका पीछा छोड़ने को कहाँ उद्यत थी । वह तो भूत बनकर उसके सिर पर सवार हुई थी ।

वे दोनों बाहर की कुर्सियों पर आकर बैठ गये सुषमा ने उनके आने के पूर्व ही हलुआ तैयार कर लिया था और चाय उबाल खा रही थी । उसकी छोटी बहन शीला तथा छोटे भाई मंजू ने सब सामान प्लेटों में भरकर मेज सजा दी और उसके माता-पिता भी आ गये ।

"नमस्ते मास्टरजी ।"

"नमस्ते ।"

रमेश के साथ ही साथ उन्होंने विकल को भी नमस्ते किया वे लोग भी कुर्सियों पर बैठ गये । "अच्छा अब रहने दे सुषमा, तुम आकर चाय पियो और मंजू, शीला तुम भी आकर पियो" रमेश ने कहा । वे लोग भी आकर बैठ गये ।

"हाँ, तो मैं इनका आपसे परिचय करवाऊँ", रमेश ने विकल की ओर इशारा करते हुए सुषमा के माता-पिता से कहा । "यह हैं हमारे घनिष्ट मित्र विकल, बड़े अच्छे कवि ।"

"अच्छा, आपकी तो सुषमा बड़ी तारीफ कर रही थी" सुषमा के पिता ने कहा । "हम लोग भी आपसे मिलने तथा आपकी कविता सुनने के बड़े उत्सुक थे । सौभाग्य है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ लाये ।"

"मेरा भी सौभाग्य है, जो आप जैसे सज्जन व्यक्तियों के दर्शन कर सका ।" विकल ने उत्तर स्वरूप कहा ।

"तो हम आपसे आज कविता अवश्य सुनेंगे ।"

"हाँ, हाँ इसीलिए तो मैं इन्हें लाया हूँ, आप इनकी कविता सुनकर बहुत प्रसन्न होंगे।" रमेश ने कहा।

धीरे-धीरे बातों-ही-बातों में चाय आदि समाप्त हो गयी तथा सब लोग दत्तचित्त होकर विकल की कविता सुनने की प्रतीक्षा करने लगे।

"अच्छा सुनिये, कविता का शीर्षक है, विधवा का सिन्दूर" कहकर विकल ने कविता प्रारम्भ की। सुषमा की माँ उस कविता का शीर्षक ही सुनते उसको सुनने की ओर आकृष्ट हो गयी थी। उसके सामने उसकी छोटी बहन का चित्र आ गया था जिसने अपने पति की मृत्यु के उपरान्त शादी नहीं की थी। वह क्रिश्चियन थी और विरह की विकराल व्यथा को न सहकर एक दिन इस दुनिया से चल बसी। कविता के केवल दो ही पद हुए थे कि सुषमा की माता के नयनों से आँसू टपकने लगे। विकल ने कविता सुनानी बन्द कर दी। उसके रुकते ही सुषमा की माता ने आँसू पोंछते हुए कहा—"सुनाओ ना, मुझे तो ऐसा कभी-कभी यों ही हो जाता है।" विकल को भी इससे दुख मालूम हुआ वह नहीं चाहता था कि वह कविता सुनाये। किन्तु उसने किसी प्रकार सुना ही दी। सुषमा के कई बार कहने पर—'रूप ने सौ-सौ बार छला' भी उसे इसके बाद सुनानी पड़ी। यों तो वे लोग विकल की कविताओं से इस प्रकार प्रभावित हुए थे कि वे और भी कविताएँ उससे सुनना चाहते थे, किन्तु आये हुए मेहमान को अधिक कष्ट नहीं देना चाहते थे। इस कारण उन्होंने उनसे अधिक न कहा।

"आप कविता लिखने के अलावा भी कुछ करते हैं।" सुषमा के पिता ने विकल से पूछा।

"मैं सेलटैक्स आफिस में एक क्लर्क हूँ।" विकल ने उत्तर दिया।

"दिल्ली में आप कितने दिनों से रहते हैं?"

"पाँच वर्ष से।"

"आपके माता-पिता जी कहाँ हैं?"

"झाँसी में।"

"तो आप क्या यहाँ अकेले ही रहते हैं ?"

"जी, हाँ।"

सुषमा विकल की कविताओं से बहुत प्रभावित हो गई थी। वह उसके मुख की ओर देख रही थी। उसका गौर वर्ण, गोल मुख तथा विशाल और कमल से नेत्र तथा गुलाबी होंठ उसके आकर्षण का केन्द्र बने हुए थे। विकल की कविताओं ने उसके ऊपर जादू का-सा प्रभाव किया। विकल का स्नेह भरा व्यवहार उसके हृदय में घर कर गया था। वह अपलक तथा निर्भीक चितवन से विकल को देख रही थी। विकल को भी कुछ आभास हो गया था कि वह उसकी ओर काफी आकृष्ट हो गयी है, किन्तु रमेश के प्रेम का सन्देह फिर भी उसके हृदय में बना था। रात्रि के नौ बज चुके थे। रमेश ने देर होते हुए देखकर विकल से चलने को कहा। "अच्छा, अब क्षमा करिये, फिर कभी मिलेंगे" कहकर रमेश उठ खड़ा हुआ। उसने खड़े होते ही सब खड़े हो गये। सबने नमस्ते करके विकल तथा रमेश को विदा दी। रमेश और विकल वहाँ से चल दिये। विकल का तो मन हो रहा था कि वह थोड़ी देर और बैठे किन्तु यह अब उचित न था। क्योंकि वह सुषमा को जी भर कर देखना चाहता था। ठीक यही दशा सुषमा की हो रही थी। वह रमेश को तथा विकल को और थोड़ी देर रोकना चाहती थी, किन्तु देर अधिक हो गयी थी इसलिए वह आग्रह भी नहीं कर सकती थी। वह सोचती थी देखो फिर कब मिलना हो। विकल और रमेश उसकी आँखों से ओझल हो गये थे फिर भी वह विकल के ध्यान में विकल हो रही थी। उसका रूप तथा मार्मिक कविताएँ उसके हृदय में प्रेम की प्यास को जगा रहे थे। जीवन में आज यह प्रथम अवसर था जब किसी के प्रति उसके हृदय का प्रेम छलक गया हो। घर के सब लोग अन्दर चले गये थे, फिर भी वह बाहर बरामदे में खड़ी विकल के ध्यान में डूबी थी। उसे खड़े हुए देखकर उसकी माँ ने अन्दर बुलाया। उनकी पुकार सुनते ही मानों उसके हृदय का स्वप्न चूर-चूर हो गया हो। मानों वह सोते-सोते चौंक पड़ी हो और जैसे कुछ खोते-खोते हुये वह अन्दर गयी।

सोने का समय हो गया था। वह विस्तर पर गयी और रात के बारह बजे तक विकल की याद में करवटें बदलती रही। वह सोना चाहती तो भी उसे नींद नहीं आ रही थी। उसकी नींद तो किसी चितचोर ने मानो चुरा ली थी। वह राधा की भाँति कृष्ण के लिए व्याकुल हो रही थी उसने जीवन में पहली बार प्रेम और वेदना का वास्तविक अनुभव किया था। वैसे तो उसने कई उपन्यासों आदि में ऐसा कुछ पढ़ा था, किन्तु पढ़ी और अनुभव की बात में काफी अन्तर होता है। मन की उमंग रह-रह कर उसे झकझोर रही थी। उसे याद आ रही थी प्रसाद जी की वे पंक्तियाँ—

"इस करुणा कलित हृदय में अब विकल रागिनी बजती।
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती।"

जिन्हें उसने मैट्रिक की पुस्तक में पढ़ा था। उसका मन चाहता कि इन्हें खूब गुनगुनाये, किन्तु साढ़े बारह बजे का समय था और लोग सो रहे थे। अतः वह सबकी नींद तोड़ने की धृष्टता भी नहीं कर सकती थी।

रमेश घर के किवाड़ खुलने की कठिनाई को ध्यान में रखकर विकल के घर ही चला गया। विकल को भी नींद नहीं आ रही थी, किन्तु रमेश सो गया था। उसे जीवन की चिन्ताएँ प्रेम के सपनों की अपेक्षा अधिक पीछा कर रहीं थीं। प्रेम के सपनों में एक मिठास होती है। वेदना मधुर तथा एक विशिष्ट आनन्द की ओर प्रेरित करती है, किन्तु जीवन का भौतिक चिन्ताओं में कड़ुवाहट। ये मानव जीवन को अत्यन्त विषावत तथा कटु बना देती हैं। बीच में जितनी बार उसकी नींद टूटी, उसने यही देखा कि विकल जग रहा है। कभी उसकी गुनगुनाहट सुनाई देती और कभी उसके करवटें बदलने में चारपाई की चरमर। सुषमा की भाँति वह भी प्रेम की कल्पाएँ सँजो रहा था। आज वह यह भी चाहता था कि अपने हृदय की बात रमेश से कह दे। उसके हृदय में रमेश और सुषमा के प्रेम का सन्देह काफी अंशों तक समाप्त हो चुका था।

× × ×

जनवरी के दिन समाप्त हो रहे थे। काफी जाड़ा पड़ रहा था। जाड़े के दिनों में जब मनुष्य के पास आर्थिक चिन्ताओं का अभाव होता है तो

उसके हृदय में प्रेम के सपने प्रबल वेग से अँगड़ाई लेते हैं। इस कारण विकल को सुषमा की याद क्षण भर भी पीछा नहीं छोड़ती थी। वह सदैव प्रत्येक क्षण प्रेम के सपने सँजोता रहता था। शनिवार के दिन उसके दफ्तर में अर्ध पहर तक ही कार्य करने की परम्परा होने के कारण वह दफ्तर से तीन बजे के बाद सिनेमा देखने के विचार से गोलचा सिनेमा की ओर चला आया। आज उसने बहुत बढ़िया सूट पहन रखा था तथा जाड़ा अधिक होने के कारण टाई के स्थान पर गले में मफलर बाँध रखा था। इस वेष-भूषा में विकल का सौन्दर्य और भी बढ़ गया था। शीतल वायु के झोंके रह-रहकर उसके हृदय में प्रेम का उन्माद भर रहे थे। वैसे तो जाड़ों की ठंड वस्त्रहीन व्यक्तियों के लिए बड़ी कठोर लगती है; सारा शरीर काँप जाता है, किन्तु विकल के पास कपड़ों का अभाव न था। वास्तव में प्रकृति उन्हीं के लिए प्रायः उद्दीपन का कारण होती है जिनकी आर्थिक चिन्ताएँ अधिक नहीं होतीं। इसी कारण दिल्ली की भीषण ठंडक जब धनहीन व्यक्तियों की कुछ गाथाएँ बटोरकर समाचार-पत्रों की सामग्री बनती है तब आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त व्यक्ति अपने प्रेम के सपने सजाते हैं।

यकायक वहीं पर सुषमा दिखाई पड़ी। वह दूर से तो, विकल को उसकी नवीन वेषभूषा के कारण, न पहचान सकी किन्तु थोड़ा निकट आकर तत्काल उसने पहचान लिया और नमस्ते किया। विकल को ऐसा लगा जैसे युगों का कल्पित स्वप्न साकार हो गया हो। मानो उसे रानी के मुकुट का कोहनूर मिल गया हो। या उससे भी बढ़कर कोई वस्तु उसे प्राप्त हो गयी हो। उसका रोम-रोम प्रसन्नता के गीत गा उठा। तत्काल ही उसने नमस्ते किया। और सुषमा से बिना पूछे ही उसने दो टिकट खरीद लिये।

"सुषमा, कहो कहाँ जा रही हो ?"

"कहीं नहीं, ऐसे ही एक सहेली के यहाँ जा रही थी।"

"और कहो क्या हाल है ?"

"ठीक है। आपकी कविताएँ तो मुझे बड़ी अच्छी लगीं। मुझे एक-आध अपनी कविताएँ लिखवा दो ताकि मैं उन्हें खूब पढ़ूँ। मुझे तो बड़ी अच्छी

लगती हैं।"

"हाँ, हाँ इसमें कौन-सी बात है, वह हैं ही किस लिए वैसे तो मेरी कविताएँ विरले ही पसन्द करते हैं जाने क्यों तुम्हें इतनी अच्छी लगीं। अच्छा, देर न हो तो आओ यहीं रेस्ट्राँ में एक-आध कप चाय पियें। तुमने तो मेरी कविताओं की आवश्यकता से अधिक प्रशंसा की है हाँ, यह अलबत्ता है कि मुझे तुम लोगों का व्यवहार बहुत अच्छा लगा। विकल ने कहा।

सुषमा के हृदय में भी विकल के लिए प्रेम जागृत हो गया था। विकल का यह मिलन, विकल की ही भाँति, सुषमा के हृदय में असीम आनन्द को बिखेर रहा था। वह फिर विकल के साथ चाय पीने के लिए क्यों न तत्पर हो जाती। पिक्चर के प्रारम्भ होने में काफी देर थी, अतः वे गोलचा सिनेमा से 'मोती महल' रेस्ट्राँ की ओर चले आये। और वहाँ आकर बैठ गये। बिकल ने बैरे को चाय तथा केक लाने का आदेश दे दिया था। वह सुषमा को प्रेम से डूबी निगाहों से देखता रहा। सुषमा भी चाहती थी कि विकल को उसके प्रेम का आभास हो जाये। बैरे ने चाय तथा केक लाकर रख दी। विकल ने उसे आमलेट का भी आर्डर दे दिया चाय की चुस्की लेते हुए विकल ने कहा—"सुषमा मैं तुमसे कई दिनों से न मिल सकने के कारण बहुत उदास था।"

"ठीक तुम्हारी ही भाँति मैं भी तुम्हारी कविताओं के जादू से अपनी सुध-बुध खो बैठी हूँ।" सुषमा ने कहा—

विकल सुषमा के भाव को परखते हुए बोला—"सुषमा अगर मैं तुमसे एक बात कहूँ तो बुरा तो नहीं मानोगी।"

"बुरा और तुम्हारी बात का!"

सुषमा के ये शब्द सुनते ही विकल समझ गया कि सुषमा के हृदय में उसके लिए काफी प्रेम है। अब वह चाहता था कि अपने प्रेम को मौन न रख कर उससे प्रकट कर दे। प्रेम के मौन रूप से वह काफी व्यथित हो गया था। किन्तु फिर भी यह कहते हुए—मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, कुछ अशिष्ट सा लग रहा था, अतः उसने इसी बात को घुमा फिराकर पूछा—

"सुषमा, अगर तुमसे कोई प्रेम करे तो क्या तुम उसके प्रेम को स्वीकार कर लोगी ?" सुषमा उसका मतलब तो समझ गयी थी, किन्तु विकल ने उससे अस्पष्ट रूप से पूछा था, अतः वह उत्तर भी उसी ढंग से देना चाहती थी और यही सोचकर वह बोली—"कोई! ऐसा तो मैं कभी भी स्वीकार नहीं कर सकती। मैंने तो किसी एक पर अपने प्रेम को न्योछावर कर दिया है।"

यह सुनते ही विकल का मन अधीर हो उठा। उसके व्यवहार से अबतक तो वह समझता था कि शायद उसके हृदय में उसी के लिए प्रेम है, किन्तु उसकी इस बात से उसे ऐसा लगा जैसे उसका प्रेम किसी अन्य से है। उसका मन वेदना से भर आया और उसे ऐसा लगा जैसे कि उसका कोई सुहाना सपना टूट रहा हो। वह सोचता था कि सुषमा का प्रेम रमेश से है। उसे अपने पर बड़ा पछतावा हो रहा था। वह सोच रहा था—अपने मन की चाह से वह स्वयं ही छला गया। वह कभी नहीं चाहता था कि रमेश के प्रेम के मार्ग का वह रोड़ा बने। दूसरे वह यह भी नहीं चाहता था कि किसी के प्यार को तोड़वा कर वह उससे प्रेम करे। उसे अपनी ही भाँति दूसरे का दर्द भी लगता था। वह अपने मन को मसोस कर रह गया और आगे कुछ भी न बोल सका। काफी देर तक वे लोग बिना बातचीत के ही चाय पीते रहे। फिर भी विकल अपनी व्यथा को रोकना तथा उसे सुषमा को आभाष न होने दिया, यद्यपि सुषमा उसके हृदय को पहचान चुकी थी। उसे यह भी पता लग चुका था कि विकल अभी कुमार है; क्योंकि उसके पिता ने ही एक बार विकल के बारे में रमेश से पूछा था। यही सब सोचकर तो सुषमा ने भी उसे अपने हृदय का मीत मान लिया था। किन्तु उसे वह उपयुक्त अवसर पर ही प्रकट करना चाहती थी।

"अच्छा तो अब चलें।" कहकर विकल उठ पड़ा। सुषमा भी उसके कहने से उठकर चल पड़ी। विकल ने बिल का भुगतान किया और सुषमा के साथ रेस्ट्राँ के बाहर आया। उसने सिनेमा के दो टिकट ले लिये थे

फिर भी उस बातचीत से कुछ निराश सा हो गया था और इसी कारण वह उससे पिक्चर देखने के लिए न कह सका।

"अच्छा, तो अब आप कब मेरे यहाँ आयेंगे ?" सुषमा ने विकल से पूछा।

"मैं यह निश्चित नहीं बता सकूँगा, मेरे यहाँ आजकल काम काफी बढ़ गया है।" सुषमा को विकल के इस उत्तर से थोड़ा दुख तो हुआ किन्तु वह इससे अधिक कर भी क्या सकती थी। मनुष्य का किसी से निवेदन करने का ही अधिकार है। विकल के लिए वास्तव में काम की अधिकता की कोई बात न थी, किन्तु वह नहीं चाहता था कि बार-बार अपने दर्द को बढ़ाता रहे। उसे अब पूर्ण विश्वास हो गया था कि सुषमा का रमेश से प्यार है।

"अच्छा तो जब कभी भी आपको अवकाश मिले, आप अवश्य मेरे यहाँ आयें। अच्छा नमस्ते।" कहकर सुषमा चल पड़ी।

"नमस्ते।"

विकल गोलचा के सामने आ गया। पिक्चर के प्रारम्भ होने में लगभग बीस मिनट और थे। अतः वह अन्दर न बैठकर बाहर ही खड़ा रहा। यकायक रमेश दिखाई पड़ा—"रमेश ?" कहकर विकल ने उसे पुकारा। "आओ आज सिनेमा देखें मेरे पास दो टिकट हैं। अगर आप नहीं देखेंगे तो एक बेकार हो जायेगा।" "बेकार क्यों हो जायेगा ? किसी गरीब आदमी को दिखा दो।" रमेश ने उत्तर दिया।

"लेकिन जब आप ही मिल गये तो किसी की क्या आवश्यकता ?" विकल बोला।

"नहीं, आज तो मैं एक काम के चक्कर में हूँ।"

"अरे भाई, चक्कर तो जीवन भर चलते रहेंगे। आज तुम्हे मेरे साथ पिक्चर अवश्य देखना पड़ेगा।" यह कहकर विकल ने रमेश को पकड़ लिया और वे दोनों पिक्चर हाल में चले गये। रमेश को उस समय एक आदमी से काम के बाबत मिलना था, किन्तु विकल के जिद करने पर उसे

विवश होकर पिक्चर देखना ही पड़ा।

पिक्चर समाप्त होने पर विकल और रमेश गोल्चा से बाहर निकले। उन्होंने जो पिक्चर देखी वह थी आर-के० फिल्मज कम्पनी की 'बरसात' विकल को यह पिक्चर बहुत अच्छी लगी। रमेश को भी अच्छी लगी। किन्तु जिसके सामने जीवन की आर्थिक समस्या हिमालय की खड़ी चोटियों की भाँति खड़ी होकर पग-पग चलना दुरूह कर देती हैं, उसे जीवन की इन बातों से प्रेम होते हुए भी प्रेम नहीं हो पाता।

"कहो, रमेश पिक्चर कैसी लगी।"

"अच्छी थी।"

"बस, मुझे तो बहुत अच्छी लगी। मन चाहता है कि बार-बार देखूं। क्या बात है रमेश, तुम प्रेम की उपेक्षा सी करते रहते हो।"

"नहीं विकल ऐसी बात नहीं, जिसे जीने का भी अधिकार न हो वह प्रेम की कल्पनायें कैसे सँजोये।"

"रमेश, जो मेरे जीवन की एक कल्पना रही है, वह तुम्हारे पास बिखरा हुआ है और फिर भी तुम इतने शुष्क होते जा रहे हो।"

"यह भी तुम्हारी एक कल्पना ही है।"

"कल्पना नहीं यथार्थ।"

रात को दस बजे का समय था। अतः देर होते देखकर रमेश ने घर जाने की जल्दी की क्योंकि वह जानता था इसमें अधिक देर होने पर उसके घर में किवाड़ खुलना कठिन हो जायगा। विकल भी नमस्ते करके फैज बाजार के चौराहे पर ही रमेश को छोड़कर चल दिया। बात अधूरी ही रह गयी। सुषमा के वे शब्द—"कोई! ऐसा तो मैं कभी भी स्वीकार नहीं कर सकती, मैंने तो अपना प्रेम किसी एक पर न्योछावर कर दिया" तथा रमेश के शब्द—"यह भी तुम्हारी एक कल्पना ही है" उसके मस्तिष्क में गूँजते रहे। वह सोचकर भी नहीं सोच पा रहा था कि रमेश या तो सुषमा से प्रेम नहीं करना चाहता या करता ही नहीं या सुषमा का किसी अन्य से प्रेम है; वह अपनी व्यवहार कुशलता के कारण रमेश को इतना

अधिक प्रेम प्रदर्शित करती है। लड़की के हृदय का क्या पता ?

सुषमा से मिले हुए विकल को लगभग एक मास हो गया था। वह भूलकर भी उसे भुला न सका था। उसके मस्तिष्क का अंतर्द्वन्द्व कभी भी उसे शांति न मिलने देता था। वह आफिस में जाता, काम करता, किन्तु सुषमा की याद उसे बेचैन ही बनाये रखती। आज जब वह लंच के समय में कुछ उदास सा बैठा था कि यकायक उसे पत्र मिला। लिफाफा खोला—

"मैं जानती हूँ कि तुम मेरे यहाँ कार्य भार के कारण नहीं आ सकते हो फिर भी मेरा मन तुमसे मिलने को उत्सुक रहता है। मन चाहता है कि तुमसे जी भरकर कवितायें सुनूँ। हाँ, एक बात और है—अगर कोई किसी से प्रेम करके भी उससे कहने में हिचकता हो तो उसे क्या करना चाहिए?" विकल इसे पढ़कर सोचने लगा शायद सुषमा का उसी से प्यार है, लेकिन कहने में वह हिचकती है। किन्तु आगे की पंक्तियाँ—"एक लड़की है वह किसी से प्यार करती है, लेकिन अपनी बात कह नहीं पाती। शायद आप कोई उचित बात बता सकें।" पढ़कर पुनः उसकी वेदना जाग उठी। उसका मन हुआ कि वह पत्र को नोचकर फेंक दे, किन्तु आगे का वाक्य पढ़कर वह फिर ठगा-ठगा सा रह गया—

"क्या आप अब कभी भी मेरे यहाँ नहीं आयेंगे ? ऐसी कौन सी नाराजगी। छुट्टी के दिनों में तो समय मिलता ही होगा।"

उसके मन में आया कि वह आने वाले इतवार के दिन सुषमा के यहाँ अवश्य जायेगा।

विकल इतवार के दिन सुषमा के यहाँ गया। सुषमा घर पर नहीं थी। उस समय विकल की माँ और नीलू ही घर पर थे।

"नमस्ते माता जी।'

"नमस्ते, कहो कैसे हाल हैं। इधर कैसे आज भूल पड़े। आप तो एक बार आने के बाद फिर कभी आये ही नहीं। हम लोग तो आपको याद करते रह गये। सुषमा भी काफी याद करती थी। इधर मास्टर जी भी नहीं आये। मैं सोचा करती थी कि आखिरकार बात क्या है।"

"बात कुछ नहीं माता जी काम दफ्तर में अधिक बढ़ गया था।"

'फिर भी कभी छुट्टी तो मिलती ही होगी।"

"हाँ, छुट्टी तो दो-एक बार अवश्य मिली, किन्तु और कई जगहों पर जाना था। अच्छा और लोग कहाँ गये हैं ?" विकल ने पूछा।

"सुषमा के पिता तो अभी-अभी कहीं गये हैं। सुषमा आने वाली है। पता नही क्यों अभी तक नही आई।"

विकल काफ़ी देर तक बैठा रहा और सुषमा की प्रतीक्षा करता रहा। और उसकी माता से बातचीत होती रही।

"आप तो कवितायें बड़ी अच्छी लिखते हैं। अभी आपकी एक कविता सचित्र रूप में एक अखबार में छपी थी। कविता बड़ी अच्छी थी और आपका चित्र भी बड़ा अच्छा था। सुषमा कहीं से ले आई थी। दिखाना तो नीलू।" सुषमा की माता ने कहा।

नीलू वह अखबार ले आया और दिखाने लगा। सुषमा की माता ने चुपके से नीलू से पड़ोस के रेस्ट्राँ से विकल के लिए चाय तथा बिस्कुट मँगा लिये।

"माताजी, यह तकल्लुफ करने की कौनसी बात। घर में चाय बनी होती तो कोई बात न थी। इसीलिए तो मुझे यहाँ आते हुए कुछ हिचक सी लगती है।" विकल ने कहा।

"नहीं विकल, इसमें कौनसी बात है। फिर आप तो मेरे बेटे जैसे है। जैसे सुषमा वैसे आप। इसे पीजिये।"

विकल ने चाय पी और थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के उपरान्त चल पड़ा।

"तो क्या और रुकेंगे नहीं ?" सुषमा की माँ ने पूछा।

"नहीं, माता जी मुझे एक जगह और जाना है।" का बहाना करके विकल चल दिया। उसका मन नही लग रहा था, क्योंकि सुषमा तो थी ही नहीं : "अच्छा नमस्ते माता जी।"

"नमस्ते, खुश रहो।" सुषमा की माँ ने कहा नीलू ने भी नमस्ते किया।

विकल सुषमा के यहाँ से डिलाइट सिनेमा तक आया ही था कि डिलाइट के पास ही सुषमा मिल गयी।

"नमस्ते विकल जी।"

"नमस्ते ! मैं तो आपके घर से ही आ रहा हूँ। आपका कोई पता ही नहीं था कहाँ गईं। म बड़ी देर तक प्रतीक्षा करता रहा। अच्छा रहा, आप मिल गयीं।" विकल ने कहा।

"अच्छा, तो अब आप लौट चलें, थोड़ी देर बैठना फिर चले आना।" सुषमा ने कहा।

"अब घर न ले चलो। मेरे साथ आओ। मुझे आपसे कुछ बातें करनी हैं।" विकल ने कहा। सुषमा विकल के साथ-साथ दिल्ली गेट की ओर चल दी। चलते-चलते ही विकल से सुषमा ने पूछा—"कहो इतने दिन क्यों नहीं आये ?" विकल मौन रहा, क्योंकि वह सुषमा को झूठ उत्तर भी नहीं देना चाहता था। माँ से तो उसने बहाना कर दिया था। और सुषमा से भी पहले निराशा में होने के कारण ऐसा ही कह दिया था लेकिन वह सोचता था कि सुषमा जब इतने स्नेह से उसे बुलाती है तो क्यों ? यह भी सोचता कि शायद अपनी शिष्टता के कारण। वह आज चाहता था कि सुषमा से यह बिलकुल ठीक-ठीक पूछ ले कि वह आखिर किससे प्रेम करती है ताकि वह अपने मन के मैल को निकाल दे।

"अच्छा मैं आगे आपके साथ तब चलूंगी जब आप यह वचन दे देंगे कि आप मुझे एक कविता अवश्य ही आज लिखा देंगे ?" सुषमा ने कहा। विकल ने भी हाँ कर ली।

"सुषमा तुम मेरी कविताओं से इतना क्यों प्रेम करती हो ?" विकल ने पूछा।

"यह भी कोई पूछने की बात है। वे तो ऐसी हैं ही कि कोई भी प्रेम करने लगे।" सुषमा ने उत्तर दिया।

"सुषमा, मैं तुम्हारे स्वभाव से बहुत प्रभावित हूँ। और एक बात कहूँ आप मुझे बहुत अच्छी लगती हैं।"

"मैं तो अपने विषय में कभी भी ऐसा नहीं सोचती। खैर, आपको अच्छी लगती हूँ, यह मेरी खुशकिस्मती है।"

"यही नहीं मेरा मन चाहता है कि अधिक-से-अधिक समय तक आपके पास रहूँ।"

"हाँ, तभी तो महीनों नहीं आते। कहीं ज्यादा न अच्छी लगने लगूँ कि बरसों आप न आयें। इतने दिनों में मैंने जाने कितनी बार आपको याद किया, लेकिन कर भी क्या सकती थी। आप न आये। न आयें, यह आपकी ही मरजी है। मैं तो चाहती हूँ कि आप नित्य मेरे यहाँ आयें।" सुषमा बोली।

"नित्य आने लगूँ तो फिर आप सोचने लगेंगी कि देखो कैसा आदमी है, जब देखो तब खड़ा रहता है।

"जी, मैं उन सोचने वालियों में से नहीं। मैं किसी से ऐसा स्नेह नहीं करती जो एक दिन ताजा दूसरे दिन बासी हो जाये।"

"अच्छा, सुषमा एक बात बताओ।" विकल कहने भी न पाया कि सुषमा ने काटते हुए कहा—"एक-एक करके तो आपने कितनी बातें पूछी हैं। मैं भी एक-एक करके तमाम बातें पूछ लिया करूँगी और एक ही गिनूँगी।"

"क्या आप रमेश से प्रेम करती हैं?"

"हाँ, हाँ वह हमारे मास्टर जी रहे हैं।"

"तो क्या आपका और उनका प्रेम ऐसा ही है?"

"और कैसा होना चाहिए?"

"यह तो आप सोच सकती हैं।"

मैं सोच समझ कर ही करती हूँ और उनसे तो मेरे सारे घर के लोग प्रेम करते हैं। सबके दिलों में मास्टर जी के प्रति श्रद्धा है। उनके विचार-व्यवहार और चरित्र ने सब पर अपनी छाप लगा दी है।" बात चल ही रही थी कि एकाएक रमेश मिल गया।

"मास्टर जी नमस्ते।"

"नमस्ते ।" रमेश ने भी नमस्ते किया और विकल ने भी "कहो कैसे हाल चाल हैं ?" रमेश ने सुषमा से पूछा ।" ठीक हैं, आप तो कभी आते ही नहीं ?" सुषमा ने कहा ।

"आऊँ क्या समय कम मिल पाता है।" रमेश ने कहा, "यही तो आप लोगों का उत्तर होता है । विकल जी भी यही कह रहे हैं । उस दिन के बाद से यह आज दिखाई पड़े हैं ।" रमेश से सुषमा ने कहा ।

"अच्छा विकल मैं चलता हूँ" कहकर रमेश दिल्ली गेट से फैज बाजार की ओर चल दिया । विकल भी सुषमा से नमस्ते करके रमेश के साथ चल दिया बात अधूरी ही रह गयी । सुषमा उनको नमस्ते करके अपने घर की ओर चली गयी । विकल रमेश के साथ चला आया ।

"रमेश, कहीं काम-धाम मिला कि नहीं ?" विकल ने पूछा ।

"अभी तो कहीं नहीं मिला है, प्रयत्न कर रहा हूँ ।"

"क्या बताऊँ मेरे आफिस में भी कोई जगह नहीं है ।"

"कोई चिन्ता की बात नहीं, बिना समय के कुछ नहीं होगा ।" पुलिस चौकी के पास आकर रमेश ने विकल से कहा—"मैं पास में ही एक सज्जन के यहाँ जा रहा हूँ, शायद कोई काम बन जाये । उन्होंने मुझे बुलाया था ।"

"अच्छा तो फिर कब मिलोगे ?" विकल ने पूछा --

"देखो," कहकर रमेश ने नमस्ते किया और चल दिया । विकल भी घर चला गया ।

सुषमा आज कई दिनों उपरान्त विकल से मिली थी वह आज जी भर कर उससे बातें करना चाहती थी कि रमेश के आ जाने से उसका क्रम टूट गया । विकल की बातचीत से सुषमा को पता हो गया था कि विकल के हृदय में अभी तक शायद यह शंका बनी रही है कि मेरा मास्टर जी से प्रेम है, किन्तु वह चाहती थी अब उसकी शंका का समाधान कर दे ।

विकल वहाँ से सब्जी मंडी की ओर चला गया । जामा मस्जिद पर आकर

वह ट्राम में बैठ गया और रास्ते भर सोचता रहा कि सुषमा का प्रेम रमेश से नहीं है। लेकिन किससे है, यह उसकी समझ के बाहर की बात थी। वह अपने मन में बहुत कुछ सोचता रहा उसका मन भी चाहता था कि वह सुषमा से साफ तौर पर जान ले, लेकिन रमेश की उपस्थिति से वह तारतम्य टूट गया।

दूसरे दिन विकल दफ्तर गया। शाम तक कार्य में उलझा रहा। छुट्टी का समय होने वाला ही था कि सुषमा आ गई।

"विकल जी नमस्ते।"

"नमस्ते, बैठिये।" विकल ने कहा। और फायलें बन्द करके अपने यहाँ के सुपरिटेन्डेंट से पन्द्रह मिनट पहले ही छुट्टी माँगकर वह सुषमा के साथ दफ्तर से बाहर चला आया।

"कहो सुषमा, खैरियत तो है।"

सब प्रसन्न हैं, कोई चिन्ता की बात नहीं। मैं इसलिए चली आई कि आपने एक गीत लिखवाने को कहा था।

"हाँ, सो तो लिखवाऊँगा ही। क्या इसीलिए आपने इतना कष्ट किया।"

मुझे इसमें कोई कष्ट नहीं होता। हाँ, आपको भले ही हो जाये।

"मुझे और आपके लिए।"

विकल वहाँ से सुषमा के साथ ऐडवर्ड पार्क की ओर मोटर रिक्शे में चला आया। और यहाँ आकर बैठ गया। यह पार्क काफी खुला तथा एकान्त में बैठकर बातचीत करने के लिए अच्छा स्थान है। यहाँ की छाया, फूलों का सौंदर्य और हरी-हरी घास तथा कहीं २ पड़ी हुई बेंचें सभी प्रकार के आकर्षण हैं जो लोगों को शाम के समय इस पार्क में बैठने के लिए खींच लाते हैं। जामा मस्जिद तथा जगत सिनेमा के निकट होने के कारण आठ बजे रात्रि के बाद यह पार्क गुंडों का देवधाम भी बन जाता है। वैसे तो यह दस बजे तक खुला रहता है।

विकल और सुषमा यहाँ आकर एकान्त में बैठे गये। झिझकते हुए

विकल ने पूछा—"सुषमा आप मेरी कविताओं से तो इतना प्रेम करतीं हैं, क्या मुझसे भी ?"

"मैं मनुष्य से अधिक मनुष्य के विचारों से प्रेम करती हूँ, उसके हृदय की सच्चाई से।"

सुषमा की इस बात से विकल फिर अंतर्द्वन्द्व की स्थिति में आ गया। वह सोचता रहा सुषमा ने रमेश के विचारों की अधिक प्रशंसा की है लेकिन वह समझ नहीं पा रहा था कि आखिरकार वह प्रेम किससे करती है। अपने विषय में वह कभी इसलिए नहीं सोच पाता था कि कभी उसके विचारों की प्रशंसा नहीं की थी। हाँ कविताओं की खुले हृदय से की थी। उसके मुख से निकल ही गया—"तो आप रमेश से शादी क्यों नहीं कर लेतीं।" सुषमा को यह बात लगी तो बड़ी तीखी, लेकिन वह अपने को सँभालकर बोली—"उन्होंने कभी ऐसा मुझसे कहा ही नहीं। उन्होंने यह शिक्षा दी थी कि अध्यापक और शिष्या का सम्बन्ध पिता और पुत्री के समान होता है।" सुषमा के ये शब्द सुनकर विकल को अपनी बात पर बड़ा पाश्चात्ताप हुआ। वह सोचने लगा कि उसने यह शब्द कहकर सुषमा को ही नहीं दुःखी नहीं किया बल्कि अपने आपको उससे भी अधिक। उसने सुषमा से क्षमा माँगते हुए कहा—"सुषमा क्षमा करना; मैं बहुत गलत समझ गया। अपने इन शब्दों के लिए मैं स्वयं दुःखी हूँ। आजकल ऐसा भी होता है।"

"खैर, कोई बात नहीं। लेकिन सारे संसार को आप एक ही चश्मे से क्यों देखते हैं। मैं चाहती हूँ कि आप अपनी इस धारणा को मिटा दें। मैंने जिससे प्रेम किया है, उसीसे शादी करने की अभिलाषा करती हूँ।"

"क्या मैं यह जान सकता हूँ कि आपका किससे प्रेम है ? शायद मैं तुम्हारी इस सम्बन्ध में मदद कर सकूँ।"

"मैं इसके लिए किसी की मदद नहीं चाहती। मैं स्वयं अपनी मदद करना चाहती हूँ।"

"क्या मैं यह जान सकती हूँ कि आप यह सब क्यों पूछते हैं ?"

"क्यों ?......मैं यह स्वयं सोच नहीं पाता हूँ।"

"फिर व्यर्थ में पूछने से तो कोई लाभ नहीं। मैं आपसे पूछती हूँ यदि आपसे कोई लड़की प्रेम करे तो जाति-धर्म के बन्धन को तोड़ कर उससे शादी कर लेंगे ?"

"हाँ, लेकिन मैं भी यदि उससे प्रेम करता हूँ तो।"

"एक लड़की है जो तुम्हारे विरह में पागल हो रही है। वह तुम्हारी छपी हुई कविता के साथ तुम्हारे चित्र को लेकर ही जी रही है।" वह चित्र तथा उसकी कविता को निकाल कर उसे दिखाती है।

"लेकिन मैंने तो उसे कभी देखा भी नहीं।"

आपने उसे कई बार शायद देखा है। और शायद तुमने उसके रूप सौन्दर्य तथा व्यवहार की भी प्रशंसा की है। यह भी कहा है कि मेरा मन चाहता है "मैं तुम्हारे साथ हर घड़ी रहूँ।"

विकल सुषमा की इस बात से सोचने लगा कि शायद सुषमा के अतिरिक्त और कोई नहीं है जिससे उसने ऐसा कहा है। उसका प्रेम छलक उठा। लेकिन उसे कहने का साहस नहीं हो रहा था। "सुषमा मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, कह नहीं पाता, कहीं ऐसा न हो जाये कि पहले वाली बात की ही भाँति मैं कुछ गलत कह जाऊँ और फिर तुम्हें बुरा लग जाये। या आप कहीं गलत समझ जायें। मैंने जिस लड़की से प्रेम किया है उसके अतिरिक्त मैं किसी को नहीं चाहता। मेरा मन है कि मैं उसीसे शादी करूँ।"

"लेकिन वह कौन लड़की है क्या मैं जान सकती हूँ ?"

"मैं चाहता हूँ कि आपको बता दूँ लेकिन कहने का साहस नहीं हो पाता।"

"बेफिकर होकर कहिये, डरने की कोई बात नहीं।"

"मैं तुमसे......।"

"क्या जो कुछ आप कह रहे हैं क्या इसमें सच्चाई है ?"

"इसका प्रमाण तो ईश्वर के पास ही है।"

"सचमुच, आप मुझसे प्रेम करते हैं ?"

"सचमुच, अपने प्रेम की सौगन्ध।"

रात के साढ़े छै बजे का समय था। कुछ-कुछ अँधेरा हो गया था। दूर से लागों के शरीर एक दूसरे को नहीं दिखाई पड़ते थे। विकल ने सुषमा का हाथ अपने हाथ में लेकर इस प्रकार से पकड़ा कि उसका प्रेम छलक उठा। वह भी प्रेम में उन्मत्त हो गयी। विकल के वचन पाकर उसे ऐसा लगा जैसे उसके जीवन की एक महान कल्पना साकार हो उठी हो। उसने सुषमा के अधर का एक चुम्बन लिया और हाथ में हाथ पकड़ कर चल दिये। रात हो रही थी। ऐसी अवस्था में खुले मैदानों तथा घर के बाहर चुम्बन आदि लेने की भारतीय परिपाटी न होने के कारण सज्जन व्यक्ति तथा शरीफ आदमी प्राय: गुण्डों के दुर्व्यवहार के शिकार बन जाते हैं। यद्यपि कोई किसी के सच्चे प्रेम को नहीं तोड़ सकता है तथापि यदि उसके पास शक्ति अधिक हो, तो वह कभी समय कुसमय अपनी काम-तृप्ति के लिए ऐसा भी करने को उद्यत हो जाता है।

रास्ते में विकल ने सुषमा से पूछा—"क्या तुम्हारी माता जी इसके लिए अनुमति दे देंगी ?"

"मेरा तो ऐसा ही विश्वास है। और यदि वे लोग नहीं मानेंगे तो मास्टर जी के द्वारा उन्हें मनवा लूँगी।" मैं अब इस जीवन में तुम्हारे अलावा किसी से प्रेम नहीं कर सकती। मेरा प्रेम सच्चा है। इसके बीच में आने वाली प्रत्येक बाधा का मैं सामना करूँगी। तुम चिन्ता न करो। लेकिन एक बार फिर वचन दो कि तुम ......।"

"सुषमा तुम्हारे विरह में मेरी क्या हालत थी कह नहीं सकता। न रात को नींद और न दिन को चैन। मैं जाने क्या-क्या सोचा करता था। जाने क्यों प्रथम मिलन से ही मैं तुम्हारे सौन्दर्य में डूब गया था वैसे तो जाने कितने ही सुन्दर मुखों को देखा होगा किन्तु तुम जैसा......। "मैं वचन देता हूँ कि तुमको पाने के लिए हर समय प्रयत्न करूँगा। मेरे जीवन की कविता, मेरा हास्य और रुदन सब कुछ तुम्हीं हो। चाहे तुम

हँसाओ, चाहे रुलाओ।"

रात के साढ़े सात बज गये थे। सुषमा को विकल के साथ काफी देर हो गयी थी। जब कि वह केवल घंटे भर का समय निकाल कर ही आई थी।

"मेरा मन चाहता है कि तुमसे अब एक पल भी न अलग हूं, लेकिन ......।" सुषमा ने कहा।

"मैं भी यही सोचता हूँ शायद अब रात को कभी भी तुम्हारे बिना नींद न आयेगी।"

"अच्छा नमस्ते।" कहकर सुषमा अपने घर की ओर चल पड़ी। विकल थोड़ी देर तक खड़ा उसे देखता रहा। और फिर दृष्टि से ओझल होने के उपरान्त प्रेम के सपने सँजोता जीवन की मधुर कल्पनाओं में डूबा घर चला गया।

३

एक दिन अवसर पाकर सुषमा ने अपनी माता से अपने दिल की बात कह दी। माता को उसकी बात तो बुरी नहीं लगी, किंतु वह यह चाहती थी कि विकल क्रिश्चियन हो जाये। सुषमा इस बात से सहमत न हो सकी। वह धर्म के आडम्बर से विरोध करती थी लेकिन उसकी माँ को अपने समाज का ध्यान था, यद्यपि वे भी हिन्दू से बदलकर क्रिश्चियन हुये थे, किंतु अब उनका समाज हिन्दुओं का नहीं क्रिश्चियन लोगों का ही था।

" तो क्या आप मुझे जिन्दा चाहती हैं या मेरी लाश " सुषमा के ये शब्द सुनते ही सुषमा की माँ की आँखों में आँसू आ गये—बेटी तुझे मैंने लाश देखने के लिए पाला था ?'' वह भी माँ के आँसुओं से करुणार्द्र हो उठी। " लेकिन माँ फिर क्यों ऐसी बात कहती हैं ? उन्होंने तो कभी भी मुझसे हिन्दू होने की बात नहीं कही। उनके दिल में धर्म की बात ही नहीं है। उन्होंने तो इन्सानियत और प्रेम को ही सबसे बड़ा स्थान दिया है। फिर आप ऐसा कहकर मेरा मन दुखी क्यों कर रही हैं ?"

किसी प्रकार उसने अपनी माँ को मना लिया पिता जी की भी अनुमति मिल गयी और विकल तथा सुषमा की शादी हो गयी। शादी सिविल मैरिज के ढंग से हुई।

सुषमा और विकल की सुहाग रात सुषमा के घर पर ही मनाई गई।

सुहाग रात की मधुमयी बेला में जब एक-एक चुम्बन एक-एक प्रश्न को लेकर खड़ा हो जाता था। सुषमा ने विकल से पूछा—"अच्छा तो अब तुम कैसे गीत लिखा करोगे ?"

"तुम्हारे मधुर मिलन के, तुम्हारे स्वप्निल संसार के।"

"लेकिन मैं यह नहीं चाहती, मैं यह चाहती हूँ तुम अपनी वेदना तक

ही सीमित न रहो। तुम अपनी वेदना में समस्त संसार के सुख-दुख का अनुभव करो। मधुर मिलन और स्वप्निल संसार के गीत न गाकर दुखियों, भिखारियों, भूखे और नंगों इन्सानों की वेदना के गीत गाओ। तुम्हारे पास काव्य-प्रतिभा है, तुम अपनी लेखनी से पीड़ित और दुखी मानव में चेतना की चिनगारी फूंक दो। वादा करो कि अब ऐसा करोगे ?"

तुम्हारी प्रत्येक बात के लिए मैं अपना जीवन न्योछावर कर दूंगा।"

"तो क्या मैं अनुचित और अन्याय की बात कहूँ तो तुम उसे भी लोगे ?" सुषमा ने पूछा।

सुषमा के इस प्रश्न से विकल की मदहोशी टूट गयी उसे ध्यान आया कि न्याय के लिए तो उसने जन्म ही लिया है। प्रेम की प्यास ने उसे पागल बना दिया था किन्तु यह प्रश्न है जो प्रेम और कर्तव्य का यथोचित मूल्य माँग रहा। वह ठगा सा रह गया। उत्तर दे भी तो क्या दे ? प्रश्न बहुत गम्भीर था। सुचरित्र व्यक्ति के लिए प्रेम और न्याय दोनों ही महान् हैं। कभी-कभी न्याय तथा कर्तव्य के लिए प्रेम का बलिदान करना पड़ता है। जीवन में ऐसे अवसर भी आते हैं जब प्रेम और कर्तव्य दोनों एक दूसरे को चुनौती देने लगते हैं। वह सोचता था—न तो वह न्याय अथवा कर्तव्य की ही उपेक्षा कर सकता है और न प्रेम की ही, किन्तु प्रेम की आतुरता में वह कोई ऐसी बात कह गया है जो उसके समक्ष निरुत्तर सी खड़ी है।

"मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता, मैं असमर्थ हूँ।"

"तुमको देना ही पड़ेगा।"

सुषमा अपनी बात पर अड़ी थी। वह विकल के गाम्भीर्य को अपने प्रेम की ही भाँति जानना चाहती थी। वह चाहती थी कि वह प्रेम की मदहोशी छोड़कर अपने जीवन के गाम्भीर्य को सम्हाले तथा अपने उच्च-तम ध्येय के लिए प्रेरित हो।

मैं प्रेम के बिना पागल हो जाऊँगा, जी नहीं सकूंगा और न्याय को कुचलकर इन्सान नहीं हैवान बन जाऊँगा।"

"लेकिन मैं नहीं चाहती कि तुम इन्सान से हैवान बनो न यही कि तुम अपने प्रेम को तिलांजलि दो, किंतु मैं अपनी बात का उत्तर चाहती हूँ।"

सुषमा ने विकल को बड़ी उलझनपूर्ण अवस्था में देखकर अपनी अन्य प्रेम की बातों की ओर लगा लिया। वह यह भी नहीं चाहती थी कि इस स्वर्णिम वेला का आनन्द खोये, किन्तु उसे उसके कर्तव्य की ओर अवश्य आमुख करना चाहती थी। सुषमा सेज के बिछें हुए फूलों की भाँति उसके वक्ष से लिपटकर सारी रात प्यार की कल्पनाओं को संजोती रही। विकल भी जागता रहा। सारी रात प्यार भरी बातें होती रहीं किन्तु विकल के जीवन की यह रात उसके असीम प्रेम के आनन्द से अधिक उसके जीवन-जागरण की रात थी। सुषमा के प्रश्न से उसके मस्तिष्क पर पड़ा हुआ कर्त्तव्यहीनता का आवरण हट गया था। प्रेम की प्यास कितनी ही प्रबल हो, किन्तु प्रेम की महानता तभी है जब वह कर्त्तव्य तथा न्याय के लिए अपना सिर झुका दे।

सुषमा सौन्दर्य की ही सुषमा नहीं, उसके जीवन और कर्त्तव्य की भी सुषमा बन गयी थी।

सुहागरात के उपरान्त विकल सुषमा के साथ सब्जी मंडी में आकर रहने लगा। यहाँ पर उसने शादी की खुशी में अपने इष्ट-मित्रों को अच्छी चाय-पार्टी दी। रमेश भी इसमें शामिल हुआ। उसे यह जानकर बड़ी खुशी हुई यद्यपि उसने कविता लिखना छोड़ दिया था तथापि इस खुशी के उपलक्ष्य में उसने कविता की दो पंक्तियाँ ही लिखकर भेंट करना उचित समझा।

"तब तक प्रेम न टूटे, जब तक जग में चाँद सितारे।
महा नाश दुख की झंझा में विहँसे स्वप्न तुम्हारे।"

विकल ने इसे चाँदी के पत्र पर खुदवा कर टाँग लिया था। विकल इतने दिनों की मित्रता के उपरान्त भी, रमेश को न समझा सका था। लेकिन अब उसके हृदय में रमेश के लिए काफी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी यद्यपि विकल उससे उम्र में बड़ा था तथापि वह उसका पहले की

अपेक्षा कई गुना अधिक आदर करने लगा था। अब उसे रमेश के सम्बन्ध में अधिक जानकारी हो गयी थी। वह सोचता था कि रमेश इन्सान से भी बढ़कर कुछ और है।

विकल ने सुहागरात से ही निश्चय कर लिया था कि वह प्रेम के साथ-साथ न्याय और कर्त्तव्य को भी जीवन में यथोचित महत्व देगा। सुषमा का प्रेम उसके जीवन में महान परिवर्त्तन ले आया।

पूरे छै वर्ष हो गये थे। वह घर नहीं गया था उसे एक-एक करके घर के सभी व्यक्ति स्मरण आने लगे। कभी उसे अपनी माँ की स्नेह और करुणा से सराबोर आँखें और उनके वे शब्द स्मरण आ जाते, जिन्हें वह कभी-कभी विकल से पूछा करती थी—"विकल, तुम कब शादी करोगे? देखो, कितने लोग तुम्हारी शादी के लिए आये और लौट गये।" विकल की शादी उसकी बूढ़ी माँ और बाप के जीवन की एक सुनहली कल्पना थी। किन्तु वह बदलते हुए समय की गति को देखकर भी पूर्ण रूप से विश्वास न कर पाते थे। वे तो चाहते थे, कि उसकी शादी उन्हीं के समान कुलीन ब्राह्मण परिवार से हो और इतनी धूम धाम से हो जैसी तब तक पास-पड़ोस में कहीं न हुई हो। किन्तु विकल के हृदय में प्रेम की असीम प्यास थी। वह प्रेमोन्माद में किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा हो गया था। उसका भी उनके प्रति स्नेह था, किन्तु जवानी के प्रेम के जोश और अल्हड़ उमंगों के सामने किसी की भी नहीं चलती। बड़ों-बड़ों की आँखें बन्द हो जाती है। माँ-बाप के सच्चे स्नेह की कल्पना तो बाप बनने के उपरान्त ही हो पाती हैं। उसे अपनी छोटी बहन की ममता भरी आँखें भी याद आती थीं, जिनमें उस जैसे भाई ले लिए कितनी ही ममता छिपी हुई थी। और बहुत कुछ याद आता था किन्तु...जब वह उन्हें पुनः मिलने की सोचता तो उसका मन कराह उठता था। वह जानता था अपने मन से की हुई शादी तथा क्रिश्चियन लड़की से की हुई शादी को न तो वे और न उसके समाज वाले पसन्द करेंगे। उसके माँ-बाप यह जानकर रह-रह क्रोधाग्नि में जलेंगे। कभी उनका मन होगा कि ऐसे

बेटे से तो बिना औलाद ही अच्छा। कभी वे आत्म-हत्या करने को उद्यत हो जायेंगे। कभी मन होगा कि ऐसी औलाद को मौत के घाट उतार देना ही अच्छा है। विकल क्या उनके मस्तिष्क में कोई परिवर्त्तन ला सकेगा, यह उसकी युक्ति और समय से परे था। कहीं इस क्रोध का शिकार यदि सुषमा को बनना पड़ा तब वह क्या करेगा। वह अपने लिए तो सब कुछ सह लेगा, लेकिन उसे कोई कुछ कहेगा तो वह सहन न कर सकेगा क्योंकि वह तो निरपराध है। यही सब सोच-सोच कर उसका मन कभी-कभी अत्यन्त दुखी हो जाता। और कभी-कभी अकेले क्षणों में बैठकर रो भी लेता। सुषमा को पाकर भी अब वह नवीन प्रकार की उदासी से घिर गया था, जो कभी-कभी बड़े विकराल रूप में उसके सामने उभर आती थी।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, उसके हृदय की यह व्यथा बढ़ती गयी। सुषमा अब उसे पहले की भाँति प्रसन्न न देख पाती थी। वह सोचकर भी नहीं सोच पाती कि आखिर इस उदासी का कारण क्या है। विकल ने अगर कुछ सुषमा से गोपनीय बना रखा था तो केवल इतना ही। सुषमा के मन में यह कभी विचार भी न आया था कि उसके घरवाले इस प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। उसने तो अपनी माता को मना ही लिया था। वह सोचती थी शायद उसके घरवाले इस बात से बहुत प्रसन्न होंगे। वह उनकी माता आदि सबको देखना भी चाहती थी, किंतु विकल कोई न कोई बहाना करके उसकी इच्छाओं को टाल देता था।

एक रात जब सुषमा और विकल दोनों ही सो रहे थे, सुषमा जगी तो उसने देखा कि विकल जग रहा है और उसकी आँखों में आँसू हैं जिन्हें वह कभी-कभी कपड़े से पोंछ भी देता है। वह विकल को इस प्रकार से दुखी देखकर अत्यन्त दुखी हो गयी। अपने प्यार भरे करुण स्वर से उसने विकल के आँसू पोंछते हुए पूछा—"मेरे प्रियतम तुम क्यों दुखी हो रहे हो, क्या तुम्हें किसी अन्य से प्रेम है? मैं तुम्हारे सहारे ही तो जी रही हूँ। आज तक मैं न समझ सकी तुम्हारे इस दुख का क्या कारण है।

कोई मुझसे भूल हुई है या मेरे प्रेम पर सन्देह है, कुछ तो कहो।"

विकल मौन रहा। किन्तु उसके रोने तथा अधिक अधीर होकर यह कहने से—"अगर तुम आज इसका कारण न बताओगे तो मैं प्राण दे दूँगी—" कहते ही विकल फूट-फूटकर रो उठा और उसका हाथ कसकर पकड़ लिया। मानो उसके हृदय की सारी व्यथा एक वेग से उभर उठी हो।

सुषमा, मैं तुम्हारे अतिरिक्त किस को भी इस प्रकार प्रेम नहीं कर सकता, ऐसा तुम कभी न सोचो। तुम्हीं तो मेरे जीवन का एक दीप हो जिसके सहारे मैं जी रहा हूँ।" तुमने ही मुझे कर्तव्य का बोध कराया। तुम्हारे सुहागरात के प्रश्न ने मेरी आँखें खोल दीं। आज मैं ऐसा अनुभव करता हूँ जैसे मुझे नयी ज्ञान की किरण मिल गयी हो।

"तो क्या तुम उसी के कारण दुखी हो, मुझे माफ कर दो" कहकर सुषमा फूट-फूटकर रो उठी। "मैंने उसे यों ही पूछा था।" सुषमा को रोते देखकर विकल अपनी व्यथा को भूल गया और उसका सिर अपनी गोद में रखकर उसके आँसू पोंछता रहा। "सुषमा, जिस दिन से तुमने यह प्रश्न पूछा है, मेरे मन में उदासी की घटा घिर आई है। मैं जानता हूँ कि तुम यह सब जानकर अपने मनमें अत्यन्त दुखी हो जाओगी। मेरा जीवन एक उपन्यास जैसा बन गया है जिसका आगे आने वाला हर पृष्ठ आँसुओं की लेखनी से लिखा गया है।"

"मेरे प्रियतम, तुम भूल जाओ। मैं तुम्हारे आने वाले हर दुख का साहस से सामना करूँगी। तुम्हारी हर खुशी के लिए अपने को न्योछावर कर दूँगी। लेकिन मैं तुम्हें इस प्रकार दुखी नहीं देख सकती। मेरी शपथ, जो भी बात है मुझे आज बता दो।"

सुषमा, आज तक मैंने अगर कुछ छिपाया है, तो केवल इतना ही। इसे न पूछो, नहीं तो तुम और भी दुखी हो जाओगी।"

"नहीं, तुम मुझे अवश्य बता दो। नहीं तो···" कहकर सुषमा पुनः सिसक उठी।

"प्रिये, उदास न हो मैं तुम्हें बताता हूँ। पूरे छै वर्ष बीत चुके हैं। तबसे मैं घर नहीं गया हूँ। अभी तक मैं केवल प्रेम की लहरों में ही डूबा हुआ था। प्रतिक्षण जीवन के एक सच्चे मीत की कल्पना में डूबा रहता था। सौन्दर्य तथा एक सच्चे मीत की चाह मुझे झाँसी से दिल्ली लायी थी। मुझे एक जीवन साथी के अतिरिक्त किसी की याद नहीं आती थी। लेकिन तुमको पाकर आज मैं अपने घरवालों के स्नेह की कल्पना करता हूँ तो मेरा मन रो उठता है। मुझे याद आती है उस माँ की जिसकी आँखें मेरी याद आते ही करुणा से सराबोर हो जाती होंगी। मुझे याद आती है उस पिता की जिसका मन मेरी याद में प्रतिक्षण कराह उठता होगा। मैं भी अपने घर वालों की आशा की माँग का सिन्दूर था। वह छोटी बहन जो हर आने वाले रक्षाबन्धन और भइया दूज पर मेरी याद करके सिसक उठती होगी। सब लोग सोचते होंगे कि उन्होंने कितने नालायक बेटे को जन्म दिया। वह छोटा भइया जो तुतले-तुतले शब्दों में मुझे दादा-दादा कहकर पुकारा करता था। घर के बाहर से जब मैं लौटकर आता था और कोई लेमनजूस या खिलौना लाकर उसके हाथ पर रख देता था तो वह फूले न समता था। वे सब लोग मेरी याद में कभी-कभी बेचैन हो उठते होंगे।"

"वहां से आने के उपरान्त मैं उन्हें एक पत्र भी न दे सका। अगर मैं अब जाने की सोचता हूँ तो मेरा मन······।" विकल की आँखों में पुनः आँसू छलछला आये। किन्तु उसने अपने को सम्हालते हुए कहा—"वे तुमको फूटी आँखों से भी न देख सकेंगे। वे क्रिश्चियन लड़की तथा अपने मन से की हुई शादी की प्रसन्नता से कभी सहमति न दे सकेंगे। और मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं जीवित रह सकता।" कहते-कहते विकल मौन हो गया। उसकी आँखें आँसुओं से भर आयीं। सुषमा ने उसकी गोदी से अपना सिर उठाते हुए उसके आँसू पोंछे और अपनी व्यथा को सम्हाल कर बोली—

"तुम इसी के लिए इतने परेशान थे। चिन्ता न करो मैं इसके लिए

कोई न कोई उपाय करूँगी लेकिन तुम दुखी न हो। अगर तुम्हारा मन तनिक भी मैं उदास देखती हूँ तो मेरी व्यथा का पारावार नहीं रहता। अगर तुम्हारा एक भी आँसू गिरता हुआ देखती हूँ तो मेरा रोम-रोम रो उठता है।"

सुषमा के इन शब्दों से विकल को ऐसा लगा कि जैसे सुषमा उसके जीवन की सच्ची अर्धांगिनी हो। उसके प्रेम और सहानुभूति के स्वर ने उसके दर्द को मिटा दिया। वह उसकी गोदी से लिपट गयी और विकल उसे जी भरकर चूमता तथा उसके रूप को निहारता रहा।

"सुषमा तुम कितनी सुन्दर हो, कितनी भोली और कितनी मादक, मैं नहीं जानता। तुम्हारे बिना मैं एक क्षण भी न जी पाऊँगा।" कहकर वह उसको वक्ष से लिपटाकर सो गया।

रमेश का जीवन दिन पर दिन संघर्षमयी होता गया। उसकी परिस्थितियाँ उसके नियंत्रण के बाहर हो गयी थीं। थोड़ी-सी बातचीत करने पर ही दुकानदार ने उसे अपने यहाँ की नौकरी से हटा दिया था। वह जहाँ भी जाता और जिससे भी नौकरी की बात करता। 'नहीं' का ही उत्तर मिलता। विकल भी इस सम्बन्ध में उसकी कोई मदद नहीं कर सका था। वह एक महान आशावादी था और इसी कारण वह जी रहा था अन्यथा उनकी स्थिति में आकर कोई भी जीवन का साहस छोड़ सकता है। रात की कुलीगीरी ही उसके हाथ लग सकी थी। कभी एक रुपया तो कभी दो कभी बिल्कुल ही नहीं। गनीमत यह थी कि यह बात गोपनीय थी। अन्यथा उसका जीवन और भी दुरूह हो जाता। घर पर मकान की मोटी बहन जी से वह काफी तंग आ गया था। उसका रात में घर पर न रहना सब लोगों के लिए एक रहस्य बना हुआ था। सब लोग यह जानने के लिए उत्सुक रहते थे कि आखिर वह करता क्या है। और कभी-कभी इस कारण वह इस काम के लिए जाता ही नहीं था। वह चाहता था कि वहाँ से चला जाये लेकिन कहाँ जाये यह उसके सामने भयंकर प्रश्न था। मकान खोजते-खोजते उसके जूतों की ऐड़ी तलों के बराबर हो गयी थी।

गली-गली मुहल्ले-मुहल्ले भटका, किन्तु उसे सफलता न मिली। उसने ऐसे मकान भी देखे जिनमें जानवर भी रहना न पसन्द करें लेकिन किराया सुनते ही उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। मकान की तलाश में लोगों से उसने विचित्र-विचित्र अनुभव लिये।

"सेठ जी आपकी जान में कोई इस मुहल्ले में एक आध कमरा तो खाली नहीं होगा ?" एक वृद्ध सज्जन से उसने पूछा। वह तेल लगी हुई मैली टोपी लगाये हुए अपनी मिठाई की दूकान पर बैठे थे। कुरता तो उनका चार महीने से शायद न धुला होगा और धोती तो सफेद सूत की होकर भी तारकोल की तरह हो गई थी। एक अजनबी आदमी को देख कर बोले—"मालूम होता है आप कहीं बाहर से आये हैं। वह सोच रहा था कि शायद कोई अच्छी मुर्गी फँसे। मुर्गी फँसाने में यहाँ के लोग काफी दक्ष हैं।

"जी नहीं, मैं तो यहीं रहता हूं।"

"लेकिन शायद यहाँ के रहने वाले नहीं हैं।"

"जी नहीं।"

"यू० पी० के मालूम पड़ते हैं।"

"जी-हाँ।"

"जब आप यहीं काफी दिनों से रहते हैं तो मकान की क्या जरूरत पड़ गयी।" उसने भी सोचा शायद यह मुर्गी अधिक लाभदायक नहीं है।

"बात यह है कि जिस मकान में मैं रहता हूँ उसमें बरसात में रहना कठिन है।"

"तो फिर अब तक कैसे रहते रहे ?"

"यों ही, लेकिन अब उसमें पानी ज्यादा आने लगा है।"

"अच्छा आप मय बीबी के हैं या अकेले।"

"अकेले।"

"तो अकेले वालों को कहीं मकान मिलता है।" वह प्रश्नों की झड़ी पर झड़ी लगाये हुए थे मानो उनके पास कोई सचमुच ही मकान खाली

रखा है। वह यहाँ रहकर इतना तो जान गया ही था कि ये दिल्ली वाले हैं। बिना झूठ बोले काम नहीं बनने का। यही सोचकर उसने पूछा—"अच्छा यदि बीबी आ जाये तो आप बता सकेंगे।"

"पहले आप उसे लायें तो।"

उनके इतने प्रश्नों का यही उत्तर निकल सका।

इसी बीच में वह एक ऐसे सज्जन से मिला जो उम्र से लगभग ७० वर्ष के रहे होंगे, किन्तु बालों पर खिजाब और मुंह पर पाउडर तथा आँखों में मारू सुरमा लगाकर वह भी जवान होने की सोच रहे थे। उनसे उसने पूछा—सेठ जी आपकी समझ में तो कोई कमरा तो इधर नहीं खाली होगा।"

"कमरा एक नहीं सैकड़ों।"

उसे ऐसा लगा जैसे कि उसका परिश्रम सफल हो गया हो।

"लेकिन आप कितने किराये तक चाहते है।"

"मैं थोड़ा सस्ता ही चाहता हूँ।"

कितना सस्ता चाहते हैं। मालूम तो हो, मेरे पास तो ३०) तक के कमरे हैं, आइए आप उन्हें देख लीजिए। यदि पसन्द आ जायें तो दो महीने का एडवान्स बाकी फिर महीने-महीने देते रहना।" कहकर वह सज्जन चल दिये। यह कूचा मालियान कहलाता है। वह एक बहुत तंग गली में से होकर निकले कि मारे बदबू के रमेश की नाक फटी जा रही थी किन्तु उसे मकान तो देखना ही था। वह मकान बाबा आदम के जमाने का बना हुआ मालूम होता था। दरवाजे के अन्दर घुसते ही अँधेरे में उसका सिर एक दरवाजे से टकरा गया। मालूम होता है शायद यह मकान नहीं खोहें बनाई गई होंगी। फिर भी वह अपनी व्यथा को सँभाल कर कमरे देखने को गया ही। उसमें उन्होंने दो-तीन निचली कोठरियाँ दिखाईं जिनकी सीलन के कारण दीवारें फूल गयीं थीं। और अँधेरा तो उस घर में सदा से ही मेहमान था। ऐसे घर में सूरज की किरणें भी मानों जाने से डरती थीं। और इसका किराया भी ३० रु० पब्लिक की

टट्टियों से ही उस कमरे को किरायेदारों को काम लेने के लिए पहले ही सेठ जी ने बता दिया था और पानी के लिए घर के अन्दर जाने के पहले ही कमेटी का नल दिखा दिया था। रमेश का मकान यद्यपि जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था तथापि वह बहुत बुरा न था। रोशनी और हवा उसमें प्राकृतिक रूप से काफी मिल जाती थी। उस घर में रहने की विशेष कठिनाई मोटी बहन जी ही थीं।

रमेश का ऐसे वातावरण में दम घुट रहा था "अच्छा लाला जी फिर बात करेंगे" कहकर रमेश चल पड़ा। यही है आपकी ऐतिहासिक नगरी दिल्ली और ये मकान भी ऐतिहासिक नहीं तो हो जायेंग।

वह एक ऐसे सज्जन से मिला जो बड़े अप टू डेट थे। उनसे भी इस सम्बन्ध में सहयोग देने का निवेदन किया किन्तु उनके ये शब्द—"दिल्ली में आप मकान खोजते हैं के शब्दों ने मानों उसके जले घाव पर नमक का काम कर दिया। फिर भी वह निराश न हुआ। ऐडवर्ड पार्क के किनारे आते-आते उसका एक महोदय से परिचय हुआ जो म्युनिस्पल बोर्ड में एक क्लर्क थे। रमेश के मकान पूछने पर तो वह कुछ भी न कह सके। हाँ इतना अवश्य कहा—दरियागंज में एक पिल्लोमल जी हैं, आप उनसे मिलिये। आपका काम वहाँ कुछ-न-कुछ अवश्य हो जायेगा। वह इस समय भी होजरी में मिल सकते हैं।

रमेश उन्हीं पावों पिल्लोमल जी के पास चला गया और उनसे मिला। "सेठ जी, एक सज्जन ने कहा था कि आपके पास कुछ खाली कमरे हैं।"

"कमरे तो नहीं डेढ़-डेढ़ सौ के फ्लैट हैं।" सेठ जी ने तोंद पर हाथ फेरते हुए कहा। "चपरासी चाभी ले आना।" कहकर उन्होंने उसे मकान दिखाने को कहा।

"सेठ जी मैं एक कमरा चाहता हूँ या कोई कोठरी सी हो तो दे दो। लेकिन किराया कम होना चाहिए। जितना आप किराया बता रहे हैं इतनी तो मेरी आमदनी एक महीना कौन कहे दो महीने में भी नहीं हो

सकती। मैं आपके बच्चों को थोड़ा-बहुत पढ़ा भी दिया करूँगा।"

"जी, ऐसे तो कोई नहीं हैं। और मेरे बच्चे तो सब इंगलिश स्कूल में पढ़ते हैं। कोई ऐसी जरूरत नहीं।" बड़ी बेरुखी से सेठ जी ने कहा।

वैसे तो इनके पास पूरी कालोनी-की-कालोनी है और पाँच रुपये से हजार रुपये तक के मकान हैं। लेकिन सस्ते किराये के कमरे किसी शरीफ या मुसीबत जुदा आदमी के लिए नहीं। वह तो इन्होंने गुण्डों के लिए बनवा रखे हैं जिनमें उन्होंने कुछ बसा भी रखे हैं। किसी को तंग करवाने का किसी किरायेदार को निकलवाने में इनकी मदद मिलती है। इनको दुनिया के दुख-सुख का ही अगर ध्यान होता तो क्यों इनके साँवले रंग के होते हुए गाल क्यों टमाटर होते। कैसे पच्चीस हजार की कार पर घूमते। इनके यहाँ का शायद ही कोई नौकर ऐसा हो जिसे इन्होंने तीस-चालीस रुपये से अधिक दिया हो। और शायद ही कोई ऐसा हो जिसे इन्होंने दो-चार साल से अधिक रखा हो। किसी को तो महीने बाद ही कान पकड़कर निकाल दिया किसी को दो महीने बाद। किसी को आधे-पाधे पैसे दे भी दिये किसी को पैसों की जगह दो-चार लातें भी मिल गयीं। आखिरकार गुंडों की सेना से कुछ तो लाभ उठायें। इतिहास में तो सभी ने पढ़ा होगा कि नादिरशाह आदि ने भारत पर आक्रमण किया और देश को खूब लूटा। लेकिन वह तो सुनी हुई बात है। आजकल भी ऐसे नादिरशाहों की कमी कहाँ। हाँ, जो सेर का कहीं सवा सेर निकल आया। वह इनसे वसूल भी करता था। कहावत है—'आँबू नीबू बानिया गला दबाये रस देंय।' सो कहीं-कहीं पर ठीक भी उतरती है।

वैसे तो यह बड़े दानी और उदार हैं। घूस देने में बड़े दानी हैं। पाप करने में बड़े उदार हैं और धार्मिक भी बड़े हैं। लाख रुपये प्रतिवर्ष मन्दिरों को दान भी देते हैं तभी तो इनके भक्त लोग इनकी प्रशंसा के पुल बाँधते हैं। इनकी बातचीत की सराहना करते हैं। हमारे यहाँ कुछ नियम ही ऐसे हैं कि प्रशंसा और सराहना अच्छी भाँति से उसकी होती है जो उच्चकोटि का शोषक हो। वैसे तो उसने बच्चों की कहा-

नियों में ही अन्धेर नगरी का नाम पढ़ने को मिला था लेकिन सौभाग्य से उसे देखने का भी अवसर मिल गया।

रमेश मकान खोजते-खोजते थक गया था। लोगों के विचित्र-विचित्र प्रश्न—कोई कहता आप मय बीबी के हैं या कुंवारे—कोई—दिल्ली में मकान खोजते हैं ? कोई—एक नहीं सैकड़ों—उसके मस्तिष्क में गूँज रहे थे।

घर आया तो मोटी बहन जी उधार खाये ही बैठीं थीं। उन्होंने आज कसम ले रखी थी कि वह रमेश को निकालकर ही दम लेंगी। बात यह थी—

रमेश के घर में ही एक दूसरे किरायेदार भी रहते थे। जिन्हें उन्होंने मकान सबलेट किया था। उनकी औरत अकेली होने के कारण मोटी बहन जी के पास आकर बैठ जाती थी। लेकिन उसकी बीबी को उन्होंने अपनी नौकरानी सा समझ रखा था। उन्हें अपनी शक्ति का सदैव घमंड रहता वह बेचारी उन्हें अपने से बड़ा मानकर आदर करती थी और इस कारण उनका काम भी कर देती थी। इसके होते हुए भी कभी-कभी वह अपना क्रोध उस पर प्रदर्शित कर देती। जाने कितनी फूहड़ फूहड़ गालियाँ देती। कल उन्होंने फिर ऐसा ही किया वह भी सहन न कर सकी। उसने भी जो कुछ ठीक समझा गुस्से में कह डाला। उस पर वह कई बार डंडा लेकर ऊपर उसे मारने दौड़ी। रमेश ने किसी प्रकार ऐसा न होने दिया। शाम को जब उसका पति आया तो उसने सब दशा बताई उसे भी बुरा लगा। कोई कितना भी शक्तिहीन हो लेकिन कोई अन्याय कब तक सहन करेगा। वैसे तो इस प्रकार तू-तू मैं-मैं कितनी बार ई किन्तु वह तरह दे गयी। कल वह भी अपने को न सँभाल सकी और उसने भी उनकी गालियों के उत्तर में खूब खरी-खोटी सुनाई जो उन्हें चून की तरह लगी। शाम को जब मोटी बहन जी के पति देवता तथा प्रेमी महोदय आये तो वे लोग उस आदमी को भी मारने को तैयार हो गये। रमेश यदि वहाँ पर न होता तो शायद उसे वे मारते भी, किन्तु

रमेश के होने कारण वे ऐसा न कर सके । वे इल्जाम लगा कर रमेश को भी पुलिस में देना चाहते थे जब कि उसने बीच बचाव का ही काम किया। इन्हीं सब बातों से रमेश ने निश्चय कर लिया था कि उसका वहाँ रहना किसी भी अवस्था में ठीक नहीं । बदचलन औरत का क्या भरोसा किसी को किसी समय मुसीबत में डाल सकती है । मोटी बहन जी ने रमेश को बदनाम करने की भी सोची थी, किन्तु उन्हें सफलता न मिली ।

मोटी बहन जी के कारनामे महान थे । जरा-जरा सी बात पर वह नाराज हो जातीं तब फिर किसको क्या नहीं कह डालतीं । गर्मियों में वह सबकी टट्टी भी बन्द कर देतीं । टट्टी का किराया देकर भी कोई सुबह के अलावा टट्टी नहीं जा सकता था । गालियाँ देने में कितनी अभ्यस्त थीं, इसका कहना ही क्या । जबान पर तो सरस्वती थी । एक साँस में सौ दो सौ गालियाँ सुना जाना उनके लिए कुछ कठिन न था ।

जितने अधिक भीम काय शरीर की वे थीं उतनी ही अधिक उन्हें ऐन्द्रिय प्यास भी थी । शायद वह तृप्ति उनके पति देवता से नहीं पूर्ण रूप से मिल पाती होगी । एक बेचारे नौजवान की तो उन्होंने मिट्टी पलीद कर रखी थी । उसकी स्त्री उसके प्रेम के लिए कुढ़-कुढ़ जीती रही । वैसे तो उसकी स्त्री स्वाभाविक रूप से मोटी बहन जी से कहीं अधिक सुन्दर थी किन्तु उनकी भाँति सजाव-श्रृंगार नहीं आता था ।

रमेश परिस्थितियों वश इस घर में आया था और मोटी बहन जी के धर्म भाई, उनके प्रेमी महोदय ही उसे लाये थे । उसको उनके सम्बन्ध में किंचित भी पता न था । हां, उसने यह अवश्य लोगों के मुख से सुना था—दिल्ली में सब कुछ होता है । उस सब कुछ में यह भी अनुभव कर लिया।

वेश्याओं और इन किराये की बीबियों में केवल इतना ही अंतर है कि वे स्पष्ट रूप से अपनी गंदगी को लेकर आपके सामने हैं, लेकिन ये आस्तीन का साँप हैं । लेमन के गिलास में रखा हुआ विष हैं ।

मोटी बहन जी के धर्म भाई भी रमेश से अप्रसन्न हो गये थे, और वे

भी उसे अपने यहाँ से निकालना चाहते थे। उसे दुख तो इस बात का ही रहा था कि ये वे ही सज्जन हैं, जिन्होंने एक दिन उसे अपना घनिष्ट मित्र बनाया था और अपने घर लाये थे आज वे ही स्त्री के आकर्षण में अनुचित कार्य करने को उद्यत हैं। क्या मित्रता इसी का नाम है।

रमेश के घर आते ही मोटी बहन जी आग बबूला हो गयीं। रमेश भी अपने को न संभाल सका। इस स्थिति में ऊपर के दूसरे किरायेदार भी आ गये। मामला दब गया, अन्यथा वे उसे मारने की धारणा बनाये हुये थे। वह अब एक क्षण भी यहां रहना ठीक नहीं समझता था।

यकायक उसके मस्तिष्क में आया कि एक स्थान पर उसका कार्य बन सकता है। अधिक थका होने के कारण तथा रात हो जाने के कारण वह छत पर लेट गया।

भोर होते-होते ही वह सामान बाँधकर मकान की तलाश में निकल पड़ा। वह बहुत चिन्तित था किन्तु अपने साहसी पग बढ़ा रहा था और परिस्थिति अब भी हिमालय की चोटी की भाँति अजेय खड़ी थी। वह एक मन्दिर में रहने वाले परिचित महोदय से मिला और उनसे कहा कि थोड़े समय के लिए वे अपने यहाँ कुछ प्रबन्ध कर दें। जाने क्या सोचकर उन्होंने हाँ कर दी। तत्काल ही रमेश घर आया और कुली को लेकर सामान जैसे ही चलने को था कि मोटी बहन जी ने उसे रोक दिया, बोलीं—"तू ने मेहतर का चार महीने से पैसे नहीं दिये, पहले वह देता जा।"

"लेकिन यह तो मैं किराये में ही देता रहा हूँ।"

"बड़ा किराया देने वाला है।"

रमेश ने सोचा चलते-चलते इससे क्यों लड़-झगड़ कर चलें। उसने तत्काल ही चार रुपये निकालकर उन्हें दे दिये।

"अच्छा अब आप खुश हैं, नमस्ते।" कहकर वह चल पड़ा कि मोटी बहिन जी रोकर स्नेह प्रदर्शन करने लगीं—

परमात्मा कसम, मैं यह नहीं चाहती कि तुम यहाँ से चले जाओ कितना सूना-सूना लगेगा। मैंने अबकी बार सोचा था कि तुम्हें भाई बना-

छंगी राखी बाँधूंगी।"

रमेश किसी की आँख के आँसू देखकर दुःखी हो जाता था, किन्तु वह यह जानता था कि यह किस प्रकार के आँसू हैं। बदचलन औरत के चंगुल से निकलना भी कोई आसान काम नहीं है। यही कारण था कि वह सज्जन अब तक उसके प्रेम में नारकीय कीड़े बने हुए थे। फिर भी उसने नम्रता तथा स्नेह से ही उत्तर दिया—आप भाई बनाने की सोच रही हैं, मैं तो पहले से ही आपको बहन की भाँति मानता रहा हूँ और मैं जा थोड़े रहा हूँ कुछ समय के लिए दूसरी जगह प्रबंध कर रहा हूं। "यह कहकर घर से बाहर उसी मंदिर की ओर चला गया।

रमेश मोटी बहन जी के यहाँ से जिन सज्जन के यहाँ आया, वह दिल्ली के एक प्रेस के प्रूफ रीडर थे। वे दिल्ली गेट के पास एक मन्दिर में रहते थे। यह मन्दिर बिहार के पुरोहितों का केन्द्र था। इन लोगों का पेशा था लोगों के यहाँ श्राद्ध खाना, पूजा-पाठ तथा रामायण की कथा बाँचकर पैसे बनाना। आश्विन के महीने में तो इन लोगों की बन आती थी। कहीं से दो पूड़ियों का भी निमंत्रण आया धोती बाँधकर चंदन लगाकर जा खड़े हुए। मन्दिर में आये हुए निमंत्रणों के लिए ये लोग आपस में लड़ते झगड़ते तथा मूर्त्तियों पर चढ़ायें हुए पैसों के लिए बात-बात पर लड़ाई होती थी। अपने ब्राह्मणत्व की डींग मारना तथा दूसरों को मलेच्छ करना आदि बातें ही इनका खाली समय का काम थीं। अपने विचार से वे ही संसार के सबसे सुकर्मी व्यक्ति थे। आरती के नाम पर राजनीति चलती थी। यदि उनकी पार्टी के किसी आदमी ने आरती की तो वे सबके सब भीड़ लगा कर जा खड़े हुए और जै-जैराम करने लगे अन्यथा दूर से खड़े-खड़े तमाशा देखते थे। यह भी उनकी पूजा-भक्ति। यहाँ पर इस धंधे को करने वालों में कुछ बिहारी तथा कुछ उत्तर प्रदेशीय थे। प्रान्तीयता के नाम पर भी कभी-कभी आपस में बहस-मुबाहसा हो जाना साधारण बात थी। नौबत तो जूते-लात तक की आ जाती थी। इस मन्दिर में चाकलेट बाजी, औरत बाजी जुँआ, ताश, छुरे बाजी कोई भी काम न छूटा था। इस मन्दिर का हाल तो

उसने अपनी आँखों से देखा था। अन्य मन्दिरों के विषय में भगवान जाने। लेकिन चूंकि सारी बातें पर्दे की ओट में होती हैं तो कोई बाहर खुलकर कहने का दुस्साहस भी कैसे कर सकता है। ये लोग थे तो सब कट्टर सनातन धर्मी पंडित किसी ने गज भर की दाढ़ी रखा रखी थी तो किसी ने बालिश्त भर टीका चन्दन लेकिन कारनामें सबके महान् थे।

यहाँ पर एक शास्त्री जी भी थे। शास्त्री जी वैसे तो संस्कृत के कुछ श्लोक ही जानते थे किन्तु वे थे शास्त्री। बात यह है कि दिल्ली और पंजाब में शास्त्री को डिग्री लेने की कोई आवश्यकता नहीं और यदि किसी ने ली है तो व्यर्थ। कोई अपने दो-चार चेले आदि बनाले और थोड़ी टूटी-फूटी हिन्दी तथा संस्कृत के एक-आध श्लोक कहना सीख ले। जहाँ उसके एक आध चेले ने ही शास्त्री जी कहना प्रारम्भ किया। बस, वह शास्त्री जी हो गया। एक सफेद चादर डाल ले साफ धोती पहन ले और थोड़ा स्वर से रामायण का पाठ सीख ले, बस रामायणी होने में भी देर नहीं लगती।

शास्त्री जी ने रमेश को अपनी पार्टी मजबूत बनाने के लिए ही बुलाया था। शायद रमेश को यह बात पहले से पता होती तो वह वहाँ कदापि न जाता। एक जगह के कीचड़ से निकल कर दूसरी जगह के कीचड़ में कोई नहीं जाना चाहता यह एक मानव स्वभाव है। और यदि वह जान-बूझ कर जाना चाहता है तो वह उससे निकलने का इच्छुक नहीं है।

समय ने उसके स्वप्न अवश्य ही चूर-चूर कर दिये थे, किन्तु वह अपने सिद्धान्तों को तिलांजलि नहीं दे सका था। रमेश तो वही था जिसने एक कांग्रेसी सज्जन के यह कहने पर कि वह उनको वोट दिलाने के लिए उनके कार्यों की महानता का प्रचार करें, जिनके चरित्र से वह किंचित भी प्रभावित न था, डेढ़ सौ रुपये की नौकरी को स्वीकार नहीं किया था। और अपनी फाके मस्ती में आशा की साँसें लेता रहा। कभी-कभी चार पैसे की मूगफली खाकर दिन काटना पड़ा। फिर वह अपने को इस कीचड़ में थोड़ी सुविधा के लिए क्यों ले आता।

रमेश कुछ दिनों तक वहाँ अपने दिन बिताता रहा। किन्तु इन लोगों की परछाईं से भी बचने के लिए प्रयत्न शील रहा। इन लोगों ने उसे भी अपने रंग में ढालना चाहा, किन्तु उस पर उनका कोई प्रभाव न पड़ सका।

"बड़े दिन की छुट्टी के दिन थे। छुट्टी के दो-तीन दिन व्यतीत हो गये थे। इन दिनों विकल बाहर बहुत कम आया गया। उस रात को विकल को सुषमा ने काफी सान्त्वना दी थी फिर भी उसकी उदासी मिट न सकी थी। किन्तु वह अपनी उदासी सुषमा को प्रकट नहीं होने देता था क्योंकि वह जानता था—सुषमा उसे उदास जानकर अत्यन्त दुखी हो जायेगी। रमेश भी इधर काफी दिनों से उसे न मिल सका था। सुषमा और विकल को रमेश का काफी ध्यान आया करता था। विकल उसके घर पर भी दो एक बार गया, किन्तु वह वहाँ पर उसे न मिल सका। और न कोई ठीक उत्तर भी प्राप्त हो सका। रमेश अपने जीवन की उलझनों में अधिक उलझा होने के कारण स्वयं भी विकल से न मिल सका। विकल के हृदय में घर जाने की अभिलाषा रह-रहकर करवटें बदलने लगती और तब वह किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा हो जाता। घर जाये और किस प्रकार जाये, यह प्रश्न उसके मस्तिष्क में सदैव नाचता रहता। यदि वह सुषमा को छोड़कर घर जाये तो, एक तो सुषमा ही उसे स्वीकार नहीं करेगी दूसरे सुषमा आजकल गर्भवती थी और ऐसी अवस्था में उसे अकेले छोड़ना विकल भी नहीं चाहता था। विकल ने यह भी कहा कि वह कुछ दिनों के लिए अपने घर पर ही रहे, किन्तु वह इस बात के लिए भी तैयार न थी। वह विकल से एक रात को भी अलग होना सहन करने में अपने को असमर्थ सी पाती। दूसरे वह यह भी सोचा करती कि विकल यदि घर गया और उसे वहाँ काफी दिन लग गये तो वह क्या करेगी क्योंकि 'गाँव गये की बात है'। पता नहीं वहाँ जाकर क्या बात बने। विकल को इससे अतिरिक्त कोई अन्य रास्ता नहीं दिखाई पड़ता था कि सुषमा कुछ दिनों के लिए घर पर चली जाये और यही सोचकर उसने पुनः उससे पूछा—

"सुषमा तुम कुछ दिनों के लिए अपने घरपर चली जाओ तो क्या बुरा ? मैं दो-चार दिन में ही लौट आऊँगा।"

"कुछ दिनों के लिए क्यों ? हमेशा के लिए चली जाऊँ तो कैसा रहेगा ?" सुषमा ने कहा।

"ऐसा तो मैं कभी भी नहीं सोच सकता।"

"क्यों ? सोच क्यों नहीं सकते ? आदमी तो पत्थर दिल के होते हैं। बार-बार इस प्रकार से पूछने का मतलब क्या है ? यही ना, कि किसी का दिल जलायें।

"दिल जलाने की इसमें क्या बात है ?"

दिल जलाने की बात नहीं तो और क्या है। आज तक यदि तुमसे मैं एक रात भी अलग रही हूं तो ऐसा सोचते। घर गई तो भी तुम साथ ही रहे।"

बातचीत चल रही थी कि यकायक रमेश आ गया। 'हलो रमेश' कहकर विकल प्रसन्नता से उछल पड़ा। "इतने दिनों कहाँ रहे ? शायद आप बिल्कुल ही भूल गये। मैं कितनी ही बार तुम्हारे घर गया, किन्तु कोई उचित उत्तर न मिल सका, निराश होकर लौट आया। कहो, दिल्ली में ही थे या बाहर।"

"आप ठीक ही सोचते हैं, मैं दिल्ली में रहकर भी दिल्ली का नहीं हो पाया हूँ। आप ही सोचिये यदि कोई दिल्ली में रहकर भी अपने एक घनिष्ट मित्र से महीनों तक न मिल सके, तो उसका वहाँ पर रहना-न रहना दोनों ही बराबर हैं।" रमेश ने कहा।

खैर, ऐसी तो कोई बात नहीं, मैं नहीं जानता हूँ कि आप परिस्थि-तियों के भयानक चंगुल में है। कुछ तो इस बात से है कि मैं भी आपकी कोई सहायता करने में अपने को असमर्थ पाता हूँ। खैर, आप आ गये, मेरी सारी अभ्यर्थनाएँ समाप्त हो गयीं।" विकल ने कहा। सुषमा 'नमस्ते' कहकर अन्दर चली गयी और रमेश के बैठने के लिए बाहर एक कुर्सी ले आई। सुषमा के हृदय में रमेश के लिए पर्याप्त स्नेह होने के कारण वह

उसके मुख को दो क्षण देखती रही, जिन पर उलझन की रेखायें खिंच गई थी और उसके मुख को देखने से ऐसा लग रहा था मानो वह किसी गहरी चिंता में डूबा हुआ हो। उसके पावों में केवल सादे चप्पल थे तथा एक श्वेत कमीज तथा श्वेत पैजामा और नीले रंग का स्वेटर वह अपने शरीर पर धारण किये हुए थे। जाड़े के दिनों में ही, वास्तव में मनुष्य की अमीरी और गरीबी के द्योतक उसके वस्त्र होते हैं। रमेश के पास सूट था, लेकिन वह काफी गंदा हो गया। अपनी असमर्थता के कारण वह धुलवा न सका था। सुषमा रमेश के व्यवहार, विचार तथा चरित्र से पूर्णतयः परिचित थी लेकिन उसके आर्थिक जीवन से भली भाँति न परिचित थी। यही सोचकर उसने पूछा—"मास्टर जी आपको जाड़ा नहीं लगता ?"

"लगे भी तो कैसे, ठण्डी वायु मेरे शरीर को छूते ही गर्म हो जाती है। हाँ, एक बात है, अब तुम मुझे मास्टर जी मत कहा करो।" रमेश ने कहा।

"क्यों ?"

विकल ने बीच में बोलते हुए कहा—"क्योंकि तुम इनकी भाभी हो गयी हो।"

रमेश मुस्करा उठा किंतु सुषमा लजा गई और विकल के जोर से हँसने पर उसे भी हँसी आ गयी।

"सुषमा, तुम इनके लिए कुछ चाय-साय तो बनाओ। कितने दिनों के उपरान्त यह आये हैं।" विकल पूरी बात कह भी न पाया था कि रमेश ने उसकी बात काटते हुए कहा—"खाँम खाँ इन्हें आप क्यों कष्ट दे रहे हैं।"

"अगर इतने ही कष्ट का ध्यान था तो आप आये क्यों? कोई आपको बुलाने थोड़े ही गया था। यह नहीं सोचते कि हम लोगों में, तुम्हें देखकर जान में जान आ गई। इतने दिनों हम सब परेशान थे कि आखिर बात क्या हुई।" विकल ने कहा।

सुषमा चाय बनाने में लग गयी। वह विकल तथा रमेश की बातें सुनने और बातें करने के कारण उनके पास ही बैठकर अंगीठी जलाने

लगी। धुआँ काफी हो गया था यद्यपि वह लकड़ी के कोयले की ही अंगीठी जला रही थी। विकल आँखें मिलमिलाते हुए बोला—"देखो रमेश, इतने दिन हो गये, लेकिन इसे अंगीठी जलाना भी नहीं आया। आप ही देखिये, आप तो इसके मास्टर जी भी रह चुके हैं।"

"मैं तो कुछ और ही देखता हूँ।" रमेश बोला।

"क्या ?" विकल ने आश्चर्य से पूछा।

"यही कि इतने दिनों में भी आप इसके हृदय को पहचान न सके। यह बुद्धि की कमी के कारण अँगीठी निकट रखकर नहीं जला रही बल्कि इसके हृदय का स्नेह इससे ऐसा करने को कह रहा है।" रमेश ने कहा।

सुषमा रमेश की बात सुनकर मन ही मन प्रसन्नता से उमड़ उठी मानों किसी ज्योतिषी ने उसके मन की बात उससे कह दी हो। अँगीठी जलाकर जल्दी से उसने चाय का पानी उबलने रख दिया। अब धुंआ भी मिट गया था।

"तो क्या तुम इन्हें खाली चाय ही पिलाओगी ?" विकल ने कहा

"नहीं, मैं पड़ौस की दूकान से कुछ मँगवाये लेती हूँ" किन्तु रमेश ने उसे ऐसा करने से मना कर दिया। उसने कहा—"जो मजा शुष्क चाय में है तो इसके साथ अन्य वस्तुयें लाकर भी नहीं।"

"आप तो कवियों और दार्शनिकों वाली बातें कर रहे हैं। खाली चाय तो मजा देने की अपेक्षा हानि करती है।" सुषमा ने कहा।

"अच्छा, अगर तुम्हें विश्वास नहीं तो ले आओ, फिर मैं चाय भी नहीं पिऊँगा तो मुझे दोष न देना।" रमेश से इन वाक्यों से सुषमा कुछ सहम गयी। उसे ध्यान था कि मास्टर जी सदैव अपनी जिद के आगे किसी की नहीं चलने देते। किन्तु उसको रुक जाते देखकर विकल ने सुषमा से कहा—"बस यही तुम्हारा स्नेह है। तुम तो तकल्लुफ से पूछ रही हो फिर वह कैसे स्वीकार करें। तुम्हें तो बिना कहे ले आना चाहिए था।" विकल ने कहा।

"अच्छा भाई ऐसा ही सही, अब आप ही ले आइए।" सुषमा ने कहा।

रमेश ने विकल को उठते ही पकड़ लिया। और कहा—"जब तक आप कुछ लायेंगे चाय ठंडी हो जायेगी और ठंडी चाय तथा दुबारा गर्म की हुई चाय मैं पीता नहीं।"

सबने खाली चाय पी किन्तु उस खाली में उन्हें जो आनन्द मिला वह बाजार की अन्य वस्तुएँ लाकर कदापि न होता।

रमेश स्नेह को मानता था किन्तु बनावट या तकल्लुफ को उसके हृदय में कोई भी स्थान न था।

शाम के पाँच बजे तक रमेश वहीं रहा। रमेश का साथ पाकर विकल ने आज पिक्चर देखने का प्रोग्राम बना लिया। रमेश ने पिक्चर देखने में पहले तो आनाकानी की किन्तु विकल के सामने उसकी एक न चली। इतने दिनों वह अपने जीवन के आनन्द में रमेश का अभाव अनुभव करता रहा। आज रमेश के आ जाने के कारण उसका हृदय प्रसन्नता से नाच उठा था। सुषमा ने भी काफी दिनों से कोई चलचित्र न देखा था। गृहस्थ जीवन में उसकी पहले जैसी भावुकता न रह गयी थी। अब तो वह माँ बनने के स्वप्न देखा करती थी। कभी प्रसव-पीड़ा का ध्यान करके उसका मन कराह उठता था और कभी वह बच्चे की खुशी में फूली न समाती थी। सब लोग तैयार होकर चल दिये। विकल ने जल्दी पिक्चर पैलेस पहुँचने की भावना से ताँगा किया और बारा टूटी की ओर आ गये। उन दिनों वहाँ पर *'भक्त श्रवणकुमार'* नामक चलचित्र चल रहा था। विकल वैसे तो प्रेम सम्बन्धी कथानक वाले ही चलचित्र देखना पसंद करता था किन्तु उस दिन न जाने क्या सोचकर इसे भी देखने को तैयार हो गया। टिकट खरीद कर वे लोग हाल में चले गये।

भक्त श्रवण कुमार अपने माता-पिता का अनन्य भक्त था। अपने माता-पिता की सेवा करते हुए ही उसके प्राण चले गये थे। विकल जब छोटा था तब बच्चों की छोटी कथाओं में उसने उनकी कहानी पढ़ी थी किन्तु उसका उसके मस्तिष्क पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सका था। इधर वह घर जाने का भी इच्छुक था। माता-पिता से मिलने तथा उनकी सेवा

करने की इच्छा उसके मन में जाग उठी थी। इस चल चित्र को देखने के उपरान्त उसकी यह इच्छा और अधिक प्रबल हो गयी। चल चित्र देखते समय उसकी आँखों से आँसू की अविरल धार बहती रही। श्रवणकुमार की याद में उनके माता-पिता के प्राण त्यागने के दृश्य को देखकर उसका मन अत्यन्त दुखी हो गया। वह सारी देर यही सोचता रहा। उसने यह संकल्प कर लिया था कि वह अति शीघ्र जायेगा। अगर सुषमा नहीं मानेगी तो उसे भी साथ ले जायेगा रात के सवा नौ बजे पिक्चर समाप्त हो गया। रमेश नमस्ते करके स्टेशन की ओर चला गया यद्यपि त्रिकल और सुषमा ने उस रात अपने ही यहाँ रहने को कहा। उसने अगले इतवार को मिलने का वचन दिया।

रमेश सिनेमा देखकर लौटते समय सोचता रहा कि इस प्रकार से उसका उदर-पोषण कब तक होता रहेगा। समाजमें रहकर मनुष्यको धन और सम्मान दोनों की आवश्यकता होती है। दिल्ली चार सौ बीसियों और शोषक वर्ग का का केन्द्र बनकर भी अच्छे और सहृदय व्यक्तियों से बिल्कुल ही रिक्त नहीं। उसे नावल्टी सिनेमा के पास एक सज्जन मिले जो रमेश से पूर्व परिचित थे। उन्हें रमेश से विशेष सहानुभूति थी। उसके व्यवहार और चरित्र दोनों से ही वे प्रभावित थे। रमेश ने उनसे नमस्ते किया तथा अपने काम के सम्बन्ध में कहा। उन्होंने बताया कि एक दरियागंज के प्राइवेट स्कूल में एक इंगलिश के अध्यापक की आवश्यकता है यदि वह उनके साथ चले तो वह उसे मालिक से इस समय ही मिला दे। क्योंकि उसका मालिक इस समय अवश्य वहीं होगा। उस स्कूल का मालिक उन सज्जन से विशेष परिचित था। रमेश उनके साथ दरियागंज चला आया। बहुत दिनों पहले रमेश ने वहाँ पर एक बार पढ़ाने के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की थी किन्तु उसे 'नहीं' का ही उत्तर मिल सका था। वह सोच रहा था शायद उनके साथ जाने से उसका काम बन जाये। और इसी विचार से वह उनके साथ चला आया।

खट्खट् की ध्वनि करके उन सज्जन ने स्कूल के किवाड़ खुलवाये।

उसके प्रिंसपल ही उसके मालिक थे। यह स्कूल दिन में लड़कों तथा लड़कियों की शिक्षा का केन्द्र बनता और रात्रि में मालिक महोदय का घर भी। स्कूल के प्रिंसपल अथवा मालिक महोदय बैठे-बैठे अपना हिसाब-किताब जोड़ रहे थे।

"नमस्ते गुप्ता जी।"

"नमस्ते शर्मा जी, कहो कैसे इस समय कष्ट किया। आप तो भूले-भटके भी इधर नहीं आते। आपकी दुआ से अब तो स्कूल अच्छा चल रहा है। काफी लड़के और लड़कियाँ आ गये हैं।" वे बोले।

"मुझे तो कोई विशेष कष्ट नहीं, हाँ, आपको मैंने अलबत्ता कष्ट दे दिया। मैं तो सोच रहा था—शायद आप सो गये होंगे"—शर्मा जी ने कहा।

"नहीं, नहीं ऐसी तो कोई बात नहीं। आजकल बारह बजे तक तो सोना हो नहीं पाता फिर इंगलिश के अध्यापक के चले जाने के कारण और भी परेशानी हो गयी है।"—गुप्ता जी बोले।

"परेशानी की कोई बात नहीं, आपके लिए मैंने एक सुयोग्य अध्यापक तलाश लिये हैं। ये मेरे मित्र हैं और कई स्कूलों तथा कितने ही ट्यूशन पढ़ाने का अनुभव रखते हैं।" उसके बाद कुछ रुककर उन्होंने कहा—

"बी० ए० है, और बड़ा अच्छा अनुभव है।" शर्मा जी ने कहा—रमेश पहले अपनी योग्यता एफ० ए० कहने जा रहा था किन्तु रमेश के कहने के पूर्व ही उन्होंने उसे बी० ए० की डिग्री दे दी क्योंकि शर्मा जी को इन स्कूलों के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी थी। इन स्कूलों में ९९% मास्टर मैट्रिक या उससे भी कम होते हैं लेकिन कोई भी बी० ए० और एम० ए० से कम नहीं। और वह भी सब प्रौफेसर होते हैं।

"अच्छा तो आप कल से आ जाइए, लेकिन क्या लेंगे?"—गुप्ता जी ने पूछा, क्योंकि असली सवाल तो इसी का है। आखिर वह दिन भर बैठे-बैठे अपना हिसाब-किताब लगाते रहते कि कम से कम कितने में मास्टर मिल जायेगा। और वह भी बी० ए० तथा एम० ए० से कम न हो। लेकिन फीस....।

"मैं तो पन्द्रह रुपये घंटे देता हूँ।"

"अच्छा कोई बात नहीं जो आप देते हैं, वही दीजिये।" शर्मा जी ने कहा। क्योंकि वे जानते थे कि फिलहाल उसे किसी भी अवस्था में कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए।

ऊँची कक्षाओं को पढ़ाने का तात्पर्य है कि कोई घंटे भर पढ़ाने के लिए दो घंटे अपने घर में तैयारी करे और तब एक घंटा स्कूल में पढ़ाये। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पन्द्रह रुपये घंटे बराबर है पाँच रुपये घंटे के। स्कूल की आमदनी को ध्यान रखते हुए तीस-चालीस रुपये प्रति घंटा के हिसाब से किसी भी अध्यापक को आसानी से दिया जा सकता है लेकिन फिर इन मोटे पेट वालों का खून कैसे बढ़ेगा, अगर यह अध्यापकों का शोषण न करेंगे। विद्यार्थियों से तो निश्चित ही पैसे मिलने को, अन्य खर्चे घटा कर ही वह अधिकाधिक आमदनी कर सकते हैं।

गुप्ता जी के पहले तो किराने की दुकान थी, लेकिन अब उन्होंने व्यापार और सम्मान दोनों ही बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने तो शायद अपनी जिन्दगी में कभी स्कूल का दरवाजा देखा न था लेकिन वह 'बेस्ट स्कूल और कालेज' के प्रिंसपल थे। 'आई डोन्ट नो' और 'यस' के दो रटे-रटाये शब्दों के साथ-साथ उन्होंने स्कूल में प्रिंसीपिल बनकर 'गेट आउट' 'बी सीरियस', 'आई हैव नो टाइम' और 'वेरीगुड' भी सीख लिया था। क्योंकि रोब जमाने के लिए वह इतना तो इंगलिश में ही बोलते थे, अन्य बातें तो हिन्दी में ही कह लेते थे। उनके कमरे के आगे दो वर्ष से हिन्दी में एक बोर्ड लगा हुआ जिस पर लिखा था 'प्रिंसीपल'। किसी ने अगर बोर्ड सुधरवाने की बात कही तो उल्टा वह उस पर ही बरस पड़े, क्योंकि वह सोचते थे अगर उन्होंने ऐसा किया तो लोग उनकी योग्यता पर सन्देह करेंगे और न करने से उनकी विशेषता तथा विचित्रपन की झलक लोगों को मिलेगी। चपरासी भी इतना बढ़िया था कि जब वह अन्दर होते 'आउट' की प्लेट लगा देता था जब बाहर होते तो 'इन' की, शायद इसमें भी कुछ विशेषता हो। उस स्कूल के अध्यापक इतने योग्य

थे कि कोई भी सातवीं और आठवीं कक्षा से अधिक पढ़ा न था। कोई कहीं पर चपरासी था तो कोई कहीं पर एजेन्ट का काम करता था। वे सब प्रोफेसर कहलाते थे।

रमेश अपने मन में घबरा रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि उसकी पढ़ाई न जम पाये। घर आते ही उसने अपने विषय में काफी तैयारी कर ली। शर्माजी ने उसे समझा दिया था कि तुम घबराना नहीं,यहाँ पर तुम्हारी योग्यता से अधिक योग्य कोई व्यक्ति नहीं है। उसके इस प्रकार ढाढ़स बँधाने से वह उत्साहित हो गया था। गुप्ता जी उसका सम्मान भी यथोचित करने लगे थे, किन्तु पैसे देने में नाक-भौं सिकोड़ते थे।

दूसरे दिन गुप्ता जी ने मैट्रिक में विद्यार्थियों के सामने रमेश को ले जाकर उसका परिचय दिया—"विद्यार्थियो हमने तुम लोगों के लिए बहुत अच्छे प्रोफेसर साहब तलाश लिये हैं। यह अभी-अभी लन्दन से आये हैं,बड़े विद्वान हैं।"

गुप्ता जी अगर ऐसा न कहते तो शायद विद्यार्थियों पर अधिक रौब न पड़ता। विद्यार्थी रमेश की ओर बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे। कोई लन्दन की बातें पूछना चाहता था तो कोई वहाँ के लोगों के रहन-सहन आदि के बारे में लेकिन रमेश ने सबको मनाकर दिया, उसने अपने विषय को ही पढ़ाया। रमेश के आने से पहले कुछ लड़के उस स्कूल से नाम कटवा कर चले जाना चाहते थे किन्तु रमेश की पढ़ाई से वे लोग काफी संतुष्ट हो गये थे। उसके पहले उस कक्षा को एक प्रोफेसर साहब पढ़ा रहे थे, जो आठवीं कक्षा पास थे। स्कूल को उनकी योग्यता से क्या मतलब। लड़के बके रहें, यही क्या कम, और फिर योग्य अध्यापक अच्छे पैसे भी तो लेगा तो वह उस बिजनेस से अच्छी खासी रकम कैसे बना सकेंगे। लेकिन लड़के जब संतुष्ट न दिखाई देते थे, तो गुप्ता जी को कुछ सदमा हो गया था। कुछ चलेभी गये और वे सोचा करते थे—अच्छा मास्टर तो अच्छे पैसे लेगा और फिर उनको क्या मिलेगा। उन्होंने सुन रखा था कि अब अच्छे मास्टर भी थोड़े पैसों में मिलने लगे हैं अतः वे बी० ए० और एम० ए० वालों को पन्द्रह रुपये

घंटे पर रख सकेंगे । यही सोचकर तो उन्होंने रमेश से योग्यता के विषय में पूछा था । रमेश की योग्यता को आवश्यकता से अधिक बताया गया था । उसे एक आडम्बर के वातावरण में रखा गया था जो उसे कदापि नहीं पसन्द था, किन्तु परिस्थितियों में इन्सान को इनकी सीमाओं में भी बँधना पड़ता है। वह मैट्रिक तक के विद्यार्थियों को पढ़ा देने की अच्छी योग्यता रखता था। पढ़ाने को तो वह एफ० ए० के विद्यार्थियों को भी अच्छी तरह से पढ़ा सकता था और पढ़ाया भी था फिर भी वह डिग्री तथा सार्टिफिकेट के दृष्टि-कोण से तो एफ० ए० ही था ।

किन्तु आजकल के जमाने की माँग यही है कि हम वास्तविक योग्यता की भी तभी कद्र करते हैं जब वह बढ़िया झूठ के वस्त्रों में सुसज्जित होकर आती है ।

स्कूल के विद्यार्थियों ने भी उसकी पढ़ाई की काफी प्रशंसा की थी और अब गुप्ता जी के मस्तिष्क में एक बात हर समय चक्कर काटने लगी कि कहीं ऐसा न हो कि वह अपना स्कूल स्वयं खोल दे और तब से गुप्ता जी की यह शंका तथा मास्टरों की उससे ईर्ष्या पग-पग पर उसके मार्ग पर रोड़े अटकाने लगी । उसे भी कई बार लोगों ने स्कूल खोलने की राय दी थी किन्तु पूंजी की कमी के कारण तथा अपने कुछ अन्य सिद्धान्तों के कारण उसने ऐसा न किया था ।

इस मास्टरी के कारण रमेश को स्टेशन पर बोझा ढोने का काम भी छोड़ना पड़ा था ।

रमेश एक दिन शाम को जब अपने घर पर बैठा हुआ था । उसके स्कूल का एक विद्यार्थी, कपिल आकर उससे बोला—"प्रोफेसर साहब अगर आपके पास कुछ समय हो तो आप मुझे घर पर पढ़ा दिया करें।" रमेश तैयार हो गया । वह शाम को कपिल के घर गया । कपिल के पिता लखपती आदमी थे । वह सोच रहा था कि इनके यहाँ के ट्यूशन से, उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो जायगी । कम-से-कम वह पचास रुपया प्रति घंटा तो देंगे ही फिर वह उनका काम पचास के स्थान पर साठ का करके

यिदा करेगा। लेकिन जमाने का दस्तूर कुछ और ही है जो जितना ही अधिक धनवान है वह उतना ही अधिक कंजूस। उसके पिता के विचार तथा फीस की बात सुनकर उसे अत्यन्त दुख हुआ। कपिल के पिता ने रमेश से पूछा—

"मास्टर जी आप क्या फीस लेंगे ?"

"आप जो ठीक समझियेगा दे दीजियेगा।" रमेश जानता था कि वह इतने बड़े धनवान आदमी हैं अच्छी ही फीस देंगे। उनसे तय करना व्यर्थ है। लेकिन वह रमेश के पीछे पड़ गये। मास्टरों की भी तो आजकल कमी नहीं है। कम से कम महीने में दो-तीन मास्टर उनकी दुकान पर आकर चक्कर लगा जाते थे फिर वह अधिक से अधिक किसी से लाभ क्यों न उठायें। सेठ जी ने तो कभी स्कूल का दर्शन नहीं किया था। चावड़ी बाजार में उनकी लोहे की दुकान थी। लड़ाई के दिनों में वह मालामाल हो गये थे।

"जी मैं दस रुपये माहवार देता हूँ"—सेठ जी ने कहा। 'दस रुपये माहवार और दसवें क्लाश का ट्यूशन' सुनकर उसके अचरज और क्रोध का ठिकाना न रहा। सेठ जी ने शायद यही सोचकर बताया हो कि वह दसवें क्लास में है, इसलिये प्रति रुपया प्रति क्लास जोड़ने से भी दस रुपये ही बनते हैं। वह बड़ी देर तक सोचता रहा—कोई मास्टर दस रुपये में कैसे पढ़ा सकता है,यदि उसका कोई दूसरा घातक उद्देश्य नहीं है। दिल्ली में ऐसे मास्टरों की भी तो कमी नहीं जो तफरी बाजी और समय बिताने के लिए ट्यूशन करते हैं। उन्हें पाँच रुपये भी कोई मासिक दे तो उनका क्या ? कम-से-कम उन्हें इस बहाने से कोई मास्टर जी ही कह देता है यही उनके लिए क्या कम है। वरना वह दफ्तर या अन्य स्थानों पर अपने आफीसरों की झिड़कियाँ खाते-खाते तंग आ जाते हैं। रमेश आश्चर्य से बोला—
"क्या दस रुपये में भी मास्टर मिल जाते हैं ?"

क्या आपको इसमें कोई शक-सुभा है ? एक नहीं दो-चार बुलावें फर्स्ट क्लास मास्टर जी थे जो अभी तक इसे पढ़ाते रहे, उन्हें तो मैं आठ रुपये

ही देता था। काका ने आपकी बड़ी तारीफ की थी इसलिए मैंने दस रुपये कह दिये।"

इस ट्यूशन की बातचीत से उसके हृदय पर बहुत बड़ा धक्का लगा। उसने सोच लिया कि वह नीच से नीच काम करेगा। गिरे से गिरा कार्य करेगा किन्तु वह मास्टरी न करेगा। उसे अबकी बार जीवन में जितना हताश होना पड़ा शायद वह जीवन के दुखी से दुखी क्षणों में भी न हुआ होगा। वह वहाँ से लौट पड़ा और रास्ते भर सोचता रहा—

श्रमिक अपने सच्चे श्रम के उपरान्त भी पेट भर भोजन के लिए तरसता है और यह धनिक सतरंज तथा ताश के पत्तों में मौज उड़ाते हैं। वास्तव में आज श्रम तथा व्यापार में कोई सच्चाई का मूल्य देने वाला नहीं, लेकिन इसका कारण कौन है ? हम किसी को सच बोलने का सदुपदेश देते हैं, किन्तु उसे झूठ बोलने के लिए बाध्य करते हैं। हम उससे सच्चा कार्य चाहते हैं, लेकिन झूठ तथा बेइमानी के लिए उसे विवश करते हैं, यही है हमारे समाज के आज के आधारभूत सिद्धान्त। इस युग में जिसे झूँठ बोलना और बेइमानी करना नहीं आये तो सिवा इसके वह भूखों मरे, और क्या हो सकता है।

वह सोच रहा था—मनुष्य को कब तक इसी अवस्था में रहना पड़ेगा। उसकी आँखों के सामने उसके एक मित्र शिवचन्द्र की स्मृति सजीव हो उठी—जो दिल्ली में एक शीशी बेचने की दूकान पर नौकर था। मालिक उसके सच्चे तथा कठोर श्रम के उपरान्त भी उसको मुश्किल से ४० रु० माहवार ही देता था। चालीस रुपये माहवार पाकर तथा दिन के दस बजे से लेकर रात के नौ बजे तक कार्य करके कोई दिल्ली जैसे खर्चीले शहर में कैसे रह सकता है। एक माह तक उसे अपनी ईमानदारी के कारण भूखों मरना पड़ा। कितनों का उधार उसके सिर पर हो गया। रास्ते चलते उसे झिड़कियाँ खानी पड़ीं तथा छोटे-छोटे लोगों से अपमानित होना पड़ा, किन्तु एक दिन उसे दिल्ली का गुरुमंत्र मिल गया। प्रत्येक दिन वह ऊपर से दो-तीन रुपये पैदा करने लगा। अगले मास में उसने अपना सारा ऋण उतार

दिया और ठाठ से रहने लगा। अच्छे कपड़े बनवा लिये; अच्छा मकान ले लिया। बीबी भी उससे बड़ी प्रसन्न रहती थी क्योंकि वह नित्य प्रति दो-तीन रुपये उसके हाथ पर लाकर रख देता था। अब उसकी ईमानदारी प्रसिद्ध थी। जब तक वह ईमानदारी करके भूखों मरता रहा, उसे कोई भी ईमानदार कहने को तत्पर न था। कोई दस रुपये का भी उधार सौदा देने के लिए तत्पर न था लेकिन अब तो वह यदि किसी परिचित के यहाँ पाँच सौ रुपये का भी उधार कर आये तो कोई इन्कार करने को तत्पर न था। वास्तव में अब वह असली ईमानदार था।

उसे याद आती रही—उस नृत्यशास्त्री की जिन्होंने नाच मास्टर होने के बाद सीखा था। उनका कुँवर कन्हैया जैसा बाँका शरीर, रेशम का कुरता और रेशम की चादर तथा श्वेत बादलों से होड़ लगाने वाली धोती, स्त्रियों से भी अधिक सुन्दर लम्बे-लम्बे बाल तथा हर समय क्लीन सेव और स्नो-पाउडर से महकने और चमकने वाला मुख, देखते ही कोई उन्हें असली कलाकार सोच सकता था। 'भारत के प्रसिद्ध नर्त्तक और शास्त्री, की उपाधि तो उन्होंने प्रेस से छपवा कर बाँट ही दी थी। दो-चार एजेन्ट चेले भी बना लिये थे। चालीस रुपये से कम का ट्यूशन नहीं करते थे। अब तो उन्होंने अपना स्कूल भी खोल दिया था। दिल्ली में ऐसे मैस्मरेजम करने वालों की कमी नहीं जो लोगों की आँखों के सामने भी उनकी जेबें कतर लेते हैं लेकिन वह ईमानदार है, सचरित्र है, और भले आदमी हैं।

उसे याद आई—उस मास्टर जी की जो पन्द्रह रुपये मासिक प्रति घंटा पर लोगों के घर जाकर ट्यूशन पढ़ाते थे। यह भी थे एक शास्त्री जी। बातें बनानी तो उन्हें इतनी आतीं थीं कि बीरबल का कोई भी लतीफा नहीं छूटा होगा, सभी याद थे। कोई कहे तो उसे घण्टों हँसाते रहे कोई चाहे तो उसे सीरी-फरहाद और लैला-मजनू के किस्से सुनाकर प्रेम की बातों में सराबोर रखें। वह कभी न घर पर पढ़ते ही थे और न विशेष योग्यता ही थी। नाउन की परिभाषा के अलावा वह ग्रामर भी नहीं जानते थे, लेकिन उनकी पढ़ाई प्रसिद्ध थी। उनके गोरे रंग तथा बढ़िया सूट को

देखकर कोई भी उन्हें प्रोफेसर से कम नहीं आँक सकता था। वह क्या पढ़ाते होंगे तथा कैसे पढ़ाते होंगे, ईश्वर जाने। लेकिन वह भी दिल्ली के प्रसिद्ध मास्टर जी थे।

सारे के सारे चित्र उसके सामने आ रहे थे। वह सोच रहा था—क्या वास्तव में हमारे समाज में ऐसी ही स्थिति रहेगी। हम अपने अतीत के गुण गायेंगे और वर्तमान पर कीचड़ डालेंगे। पीछे की आँखों से आगे का रास्ता देखने का प्रयत्न करेंगे किन्तु आगे की आँखों पर पट्टी बाँध लेंगे।

वह दुखी ही नहीं बहुत दुखी था किन्तु करता तो क्या करता। समाज एक आदमी के बदलने से तो नहीं बदल सकता! उसके लिए तो प्रत्येक व्यक्ति का सहयोग वांछनीय है। जीवन की इन निराशावादी घटनाओं के उपरान्त भी वह अपने सिद्धान्तों की तिलांजलि न दे पाता किन्तु इतना उसने अवश्य निश्चय कर लिया था कि वह अब मास्टरी न करेगा। पैसे कम और पोजीशन अच्छी बनाकर कोई मास्टर बिना चार सौ बीस या लोगों की आँखों में धूल झोंके बिना कैसे जीवित रह सकता है। यह उसके सामने एक भयंकर तथा थका देने वाला प्रश्न था। इसी ने उसे इस रास्ते से अलग रहने को बाध्य कर दिया।

वहाँ से लौटकर उसने दूसरे दिन ही जाकर स्कूल में अपना त्याग-पत्र दे दिया। वहाँ के मास्टरों में यह जानकर भीतर ही भीतर अत्यन्त प्रसन्नता हुई किन्तु दिखावे के लिए उन्होंने लेक्चर झाड़े, संवेदनाएँ प्रकट कीं और एक लम्बी-चौड़ी चाय पार्टी देकर उसे विदा दी।

हमारा समाज यही है कि हम कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। 'मुख में राम बगल में ईंटें, अन्तर में कुछ औरइ बीतै,' वाली कहावत ही हमारे समाज का आधारभूत सिद्धान्त है। हम हृदय से कुछ और हैं और वाणी से कुछ और; नमूना कुछ और है और माल कुछ और।

उसकी स्मृति बार-बार उस किसान की याद सजग कर देती थी जिसने खुरपी से कई बार अपने खेत की दूब को काट कर फेंक दिया किन्तु वह हर बार कट जाने के कुछ दिनों उपरान्त उग आई।

उसे पता न था कि वह जड़ को तो हटा ही नहीं पाता फिर दूब जितने ही बार अपने विकास का अवसर पायेगी, हरी हो जायगी। झूठ, बेइमानी, बेइन्साफी, भ्रष्टाचार आदि से किसे अभ्यर्थना नहीं है। बड़े-बड़े आयोग उसके अन्त के लिए बनते रहते हैं। बड़े-बड़े महात्मा अपने सदुपदेश देते रहते हैं किन्तु वे घटने की अपेक्षा बढ़ते ही रहते हैं। बात यह है कि दूब को जड़ से न काट देने की भाँति हम उन्हें भी मिटाने के लिए प्रयत्न शील रहते हैं, फिर उनकी जड़ क्यों न हरी-भरी होती रहे। यदि किसी बीमारी को सदैव के लिए मिटाना है तो डाक्टर का कर्त्तव्य है कि उसके वास्तविक कारण को जानकर उसे जड़ समूल नष्ट करने के लिए प्रयत्न शील हो, अन्यथा बार-बार इलाज करने से भी उसका अंत न होगा।

वह रास्ते की एक सड़क पर इस दृश्य को बड़ी देर तक देखता रहा—एक बाबू जी केले छील-छील कर खा रहे थे और एक भिखारी अपने जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों में, जठराग्नि से व्याकुल कभी ईश्वर को कोसता, कभी बाबू जी के सामने हाथ पसार कर माँगने लगता और कभी चाट आदि के पड़े हुए पत्तों को उठा कर चाटने लगता।

भिखारीपन एक गंदा तथा मानव का नारकीय कार्य है, प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में उसके प्रति घृणा है लेकिन प्रश्न तो यह उठता है कि इसका कारण क्या है और क्या हम कारण को जानकर इसको जड़ समूल मिटाने के लिए प्रयत्नशील है। और हैं, तो क्या वास्तविक रूप से? हम परोपकार करने को भी उद्यत हैं लेकिन हम अपने सुख को बाँटना नहीं चाहते हम भूख मिटाना चाहते हैं लेकिन भूँखे व्यक्ति को रोटी नहीं देना चाहते, चाहे हम कुत्तों को भले ही खिलादे क्योंकि कुत्ते मनुष्य से अधिक हमारे शुभचिन्तक हैं। जब तक प्रत्येक सामर्थ्यवान सुखी तथा धनी-मानी व्यक्ति के हृदय में अपना सुख, दुखी तथा निर्धन व्यक्तियों में भी बाँटने की इच्छा उत्पन्न नहीं होगी, हम इन नारकीय तथा नग्न चित्रों को देखते ही रहेंगे। हम चाहे कितने ही मंदिरों को करोड़ों रुपये दान दें, कितने ही गिर्जाघर बनवायें और चाहे कितनी ही मस्जिदों

में खैरात बाँटें। जब हम किसी निर्धन व्यक्ति के साथ कुछ भी सहानुभुति या अपनी दया प्रदर्शित करते हैं तो किसी न किसी स्वार्थ को सामने रख-कर, अपना कर्तव्य समझ कर नहीं। हम कुधर्म की भूँख उत्पन्न करके संसार को धार्मिक बनाना चाहते हैं। हम किसी को पाप करने के लिए विवश करके उससे पुण्य की आशा रखना चाहते हैं। हमें अपनी विद्वता तथा महानता की डींग मारना भलीभाँति आता है किन्तु हमें अपने मूर्ख-पन का किंचित भी पता नहीं जो कि जीवन का कटु और नग्न सत्य है। जो स्वर्ग की वसुन्धरा को नरक बना रहा है और पग-पग पर अपनी गंद तथा कालिख बिछा रहा है। हम कितनी ही ऊँची-ऊँची अट्टालि-कायें बनाये, कितने ही सुन्दर वस्त्र पहने, कितने ही धार्मिक बने तथा कितने ही परोपकारी और अध्ययनशील, लेकिन सब व्यर्थ है।

रात के आठ बज गये थे और रमेश यही सब सोचते-सोचते दिल्ली गेट के निकट आ गया था। दिल्ली गेट के पास ही हिन्दुओं की एक अपार भीड़ लगी थी। बाबा जी गेरुये वस्त्रों में जनता को धर्म का उपदेश दे रहे थे। माताओं को शाँति तथा मोक्ष पाने का रास्ता बता रहे थे। आज कल के फैसन और आडम्बर को गालियाँ सुना रहे थे लेकिन वह स्वयं सिल्क के बेहतरीन गेरुये रंग में रंगे कपड़े धारण किये हुए थे। मुँह पर लगा पाउडर क्लीन सेव होने के कारण बिजली की रोशनी में उनके सौन्दर्य की छटा बिखरा रहा था। वह ऐसे मालूम पड़ रहे थे जैसे कि कोई राजकुमार सन्यासी हो गया हो। जनता से अपने आश्रम निर्माण के लिए दस हजार रुपया चन्दा के लिए मांग रहे थे। आश्रम वह किस लिए बनवाना चाहते थे, यह एक विचारणीय बात है। उनके गुरुदेव श्री १०००८ शिवतन्या कुमार जी ऋषिकेष में सानन्द सम्पूर्ण भोग-विलास की सामग्री से साथ रहते हैं। वह अपनी कुटिया के राजा हैं। संसार के जाने कितने ही देशी और विदेशी लोग विद्या के लालच में वहाँ ठगे गये और फिर वह उस धन से चाहें तो भारत का आधी भाग तो खरीद ही सकते हैं। वह राज योगी हैं। सरकार उन पर कोई टैक्स आदि भी नहीं

लगा सकती क्योंकि महात्मा जो ठहरे। वह भी चाहते थे उनके गुरुदेव की भाँति ही उनका भी कहीं आश्रम बन जाये और फिर क्या दिन दूनी रात चौगुनी आमदनी हो। भारत में तो अन्धों की कमी नहीं तो फिर वह इस बहती गंगा में क्यों न हाथ धोयें। जब वह थोड़ी भभूत देकर ही संसार के सारे सुख और आनन्द प्राप्त कर सकते हैं तो कोई अन्य कार्य की क्या आवश्यकता।

वह सोच रहा था—क्या ये धार्मिक लोग वास्तव में जनता की भलाई के लिए हैं या अपनी स्वार्थ-साधना में ? जगत्गुरु जी का मामला कोर्ट में था। यह सेवा का अभियोग न था बल्कि उत्तराधिकार का था। क्या ये संन्यासी, पादरी और मुल्ला होने का यही उद्देश्य है कि वह कितनी जल्दी कितनी बड़ी सम्पत्ति का मालिक बन सके या कोई और भी—यह बात उसके मस्तिष्क में गूँज रही थी।

वह सोच रहा था—बूचड़खानों का क्या दोष, कसाई का क्या दोष ? दोष तो वास्तव में उसका है जो इन सबका कारण है। वास्तव में घृणित वस्तुओं से अधिक उनके कारण हैं।

रमेश मानवता की सच्ची सेवा करने के उद्देश्य से कभी-कभी इस ओर भी प्रेरित हुआ कि वह साधू और संन्यासी हो जाये, किन्तु आज उसे यह सब देख कर बड़ी ग्लानि हुई। वह सोचता रहा—साधू और संन्यासी वह नहीं है जो गेरुये वस्त्र पहनकर बिल्ली की खाल में भेड़िया बन कर रहता है। साधू और संन्यासी तो वह है जो प्रत्येक अवस्था में अपने कर्त्तव्य का पालन तथा मानवता की सच्ची सेवा करता रहता है। जो माया के कीचड़ में भी लिपट कर उससे निर्लिप्त रहता है। हम ढोंगियों को, उनसे आकर्षित होकर प्रोत्साहित करते हैं तथा अच्छे साधुओं की कमी पर रोते हैं। उसने सोच लिया था कि वह साधू अथवा संन्यासी होने की कभी भी कल्पना न करेगा।

जाने कितने ही विचार इस प्रकार उसके मन में उधेड़बुन मचा रहे थे। वह घर चला गया तथा सिर दाब कर सो गया।

४

पिक्चर देखने के उपरान्त विकल रमेश को विदा देकर एक ताँगा करके सब्जीमंडी की ओर चल दिया। रास्ते में उसने सुषमा से कहा—"हम लोग परसों झाँसी चलेंगे लेकिन एक बात है जो मैं कहता हूँ वही करना नहीं तो सब बना बनाया मामला बिगड़ जायेगा।"

"हाँ, हाँ मैं वही करूँगी जो तुम कहोगे और इसमें तुम्हें सन्देह भी नहीं, करना चाहिए।"

"सुनो, घर पर चलकर मैं यह नहीं कहूँगा, कि इससे मैंने शादी करली है। नहीं तो वे सुनते ही आत्महत्या कर लेंगे उनसे मैं यह कहूँगा कि यह लड़की यहाँ के विशेष ऐतिहासिक स्थान देखने आई है। और यह भी नहीं कहूँगा कि यह क्रिश्चियन है।"

"लेकिन एक बात है अगर उन्होंने कहीं दूसरी शादी कर दी तो।"

"ऐसा कभी नहीं होगा सुषमा। मैं समय देखकर सब बता दूँगा।"

"तो बस ठीक है। मैं वही करूँगी जो तुम कहोगे मेरे पास धर्म आदि की कोई बात नहीं। मेरे समक्ष तो एक ही धर्म है और वह प्रेम तथा इन्सानियत। मेरे ईसा, राम, कृष्ण सब कुछ तो तुम्हीं हो।"

सुषमा के इन वाक्यों से विकल को बहुत साहस मिल गया था। वह सोचता था—अब वह सुषमा के साथ अवश्य घर जायेगा। वे सब्जीमंडी आ गये थे। विकल ने ताँगे वाले को सवा रुपये के स्थान पर डेढ़ रुपया दिया। वह भी बड़ा प्रसन्न था और सोचता था कि यह लोग कितने अच्छे आदमी हैं। वह आवश्यकता से अधिक नेक, सुशील और सभ्य था। शायद वह दिल्ली का असली ताँगे वाला न था। यहाँ के रिक्शे और ताँगे वालों की, विभाजन के बाद से कुछ और ही रंगत हो गयी है। मोटर रिक्शे वाले तो इतनी आजादी और बेहतिहात से चलते हैं कि नया आदमी अपनी

जान से ही हाथ धो बैठे।

विकल को आज झाँसी जाना था। सुषमा तैयारी में व्यस्त थी। घड़ी ने आठ बजा दिये थे। विकल जल्दी से एक ताँगे वाले को लाकर और सामान रखकर सुषमा के साथ स्टेशन की ओर चल दिया। स्टेशन पर काफी भीड़ थी। झाँसी वाली गाड़ी खचाखच भरी थी क्योंकि छुट्टियों के दिन थे। विकल को बड़ी कठिताई से गाड़ी में जगह मिली। वह जब घर से चला था तो रास्ते में भरे पानी के घड़े मिले थे। वैसे तो वह इन पर विश्वास न करता था फिर भी सन्देहात्मक भावना उसमें जाग गई थी। पानी के भरे घड़े मिलना शुभ शकुन माना जाता जाता है, इसलिए उसका हृदय प्रसन्न था। वह सोच रहा था कि घर में पहुँचते ही सब लोग प्रसन्न हो जायेंगे। लगभग सात वर्ष के बाद वह घर जा रहा था। कभी वह सोचता कि अम्मा कहेंगी—'वाह मेरे बेटे खूब रहे, कभी घर की ओर मुँह भी न किया।' कभी पिता जी यह कहेंगे—'मालूम न था कि तुम्हारा दिल इतना कठोर है।' सारी की सारी बातें चलचित्र के संवाद के रूप में उसके मस्तिष्क में आ रहीं थीं। उसकी इस निष्ठुरता पर जाने कितने कड़ुवे-कड़ुवे लोग व्यंग्य करेंगे लेकिन फिर भी उनमें ममता और स्नेह कुछ-न-कुछ अवश्य होगा। उसने अपने को इतना सहनशील बना लिया था कि कोई डंडा लेकर भी पीटेगा तो वह उफ तक न करेगा। उसने अम्मा के लिए दो-तीन साड़ियाँ, पिताजी के लिए मोटी तथा महीन धोतियाँ, मलमल और रम्मू के लिए नेकर, बनियान, कमीज और जूते; बहन के लिए साड़ी ब्लाउज और चप्पल, यह सुषमा की पसन्द से खरीदे थे। वह सोचता था जब वह यह सब सामान तथा अम्मा की जेब में पाँच सौ रुपये के नोट रख देगा तो उनका गिला-शिकवा समाप्त हो जायेगा। कमाऊ पूत को कौन नहीं प्यार करता।

सुषमा से बातें करते तथा इसी प्रकार सोचते-सोचते वह झाँसी पहुँच गया। स्टेशन से उतरकर वह ताँगा करके गनपत खिड़की की ओर चल दिया। वह ताँगे वाला उसे जानता था—"कहो बाबूजी, आज तो बहुत दिनों के बाद दिखाई पड़े, कहाँ रहे इतने दिन ?"

"भाई, मैं दिल्ली में था।"

ताँगा वाला बड़े स्नेह से विकल से बातें कर रहा था। वह धीरे-धीरे गनपत खिड़की पहुँच गया।

रमेश ने ताँगे से उतरकर उसे एक रुपया दिया और ताँगे वाला नमस्ते करके चला पड़ा। दिल्ली से गनपत खिड़की तक वह जाने क्या-क्या सोचता आया। विकल के बड़े आशावादी विचार थे। भरे घड़ों ने उसे और भी आशावादी बना दिया था किन्तु जब वह घर की सीढ़ियों पर पाँव रखने लगा तो उसे ऐसा लगा जैसे कि कोई उसका पाँव पकड़ रहा हो। घर की दशा खराब हो गयी थी। उसके हृदय में खिन्नता और उदासीनता की लहर दौड़ गयी थी। लगभग एक वर्ष से उसमें कुछ पंजाबी लोग रहते थे। दरवाजा उसने खटखटाया तो एक बुड्ढी औरत बाहर आई। रमेश ने उससे पूछा—

"माता जी इसमें क्या अब शिवचरन शुक्ल नहीं रहते ?"

"केड़ा शिवचरन शुकल ?" उसने प्रश्न करते हुए उत्तर दिया।

"वह मेरे पिताजी थे।" विकल ने कहा।

"असनू की पता ?" बुड्ढी औरत बोली।

विकल उससे कोई ठीक उत्तर न पाकर पड़ोस के घर में गया जिसमें लाला प्रमोदचन्द रहते थे। वह आश्चर्य से उछल उठे—"विकल, तुम ! अरे ! इतने दिनों बाद। कहाँ रहे ?"

"क्या कहूँ दादा जी दिल्ली में था मगर आ नहीं पाया।" विकल ने कहा।

"तुम्हें अपने घर वालों के बारे में भी कुछ पता नहीं ?" प्रमोद जी ने कहा।

"नहीं, क्या बात है ? मैं यही पूछने आपके पास आया हूँ।" विकल ने कहा।

"क्या बताऊँ विकल ?" कहते ही प्रमोदचन्द्र का मन उदास हो गया। "आज से लगभग डेढ़ वर्ष पहले इस मकान में आग लग गयी।

तुम्हारे माता जी और पिता जी ही घर में थे । आग काफी प्रचंड हो गयी थी । बुझने तक वे इस संसार को छोड़कर चल दिये । गनीमत थी कि तुम्हारी बहन की शादी वे कर चुके थे और रम्मू उन दिनों उसी के साथ था।" वह इतना कह भी न पाये थे कि विकल बड़ी बेचैनी से चीख उठा—"माँ ?" और अपनी अस्पष्ट वाणी में ये शब्द—"मैं इतना अभागा निकला कि अन्तिम क्षण भी तुमसे न मिल सका," कहते ही वह अचेत हो गया । उसकी आर्त्त वाणी सुनकर प्रमोदचन्द्र की आँखों में घुच-घुची आ गई । सुषमा भी फूट-फूट कर रो उठी । यह सब सुनकर प्रमोद की पत्नी भी आ गयीं । ऐसी अवस्था में प्रमोद ने अपने को सँभाला तथा विकल को किसी प्रकार होश कराया और बोले —'विकल, इस प्रकार दुखी होने से अब क्या होता है । यह तो संसार का अटल नियम है । मरने और जीने के विधान पर किसी का वश नहीं । फिर जो मनुष्य की क्षमता से परे है उसके लिए परेशान होना व्यर्थ । "यह सब सुनकर विकल ने कुछ अपने को सँभाला । उधर प्रमोद की पत्नी ने सुषमा को भी बड़े प्यार से समझाया । प्रमोद और उसकी पत्नी दोनों ही विकल तथा सुषमा को रोने तथा व्यथित होने से मना रहे थे । प्रमोद ने पुनः विकल को समझाया—"देखो कही हुई बात और बीता हुआ समय वापस नहीं आता है । जो कुछ हो गया, उसके लिए रोना क्या ? थोड़ा धीरज धरो ।"विकल मौन होकर यह सब सुन रहा था फिर भी एक हूक रह-रह कर उसके हृदय में उठ रही थी । वह निस्तब्ध भाव से बैठा रहा जाने कितनी स्मृतियां उसके मस्तिष्क में सजीव हो रहीं थीं । उसके हृदय में रह-रहकर एक हूक-सी उठने लगती । उसे याद आती थी अपनी माँ की जो कभी-कभी यह कहा करती था—"तू ऐसे थोड़े ही शादी करेगा । विलायत से मेम लायेगा । अगर पढ़ी लिखी लड़की से ही शादी करने की तेरी इच्छा है, तो उससे ही कर दूँगी तू हाँ तो कर ।"

उसकी माता और पिता ने जीवन के कितने ही पतझर और बसन्त देखे थे, ढोलक और नगाड़े सुने थे, मगर उनके हाथों से किसी लड़के की

शादी न हुई थी। उसकी शादी की कल्पना में उन्होंने अपने जीवन के दुखी से दुखी दिन काटे थे। उसकी माँ सोचा करती थी—जब विकल की शादी होगी तो वह उसके लिए बढ़िया कमरा बन वायेगी। उसे जेवर से लाद देगी। वह अपनी बहू को बढ़िया से बढ़िया बनारसी साड़ी लाकर दिया करेगी। और जब विकल और वह प्यार से बातें करेंगे तो उन्हें खूब डाँटेगी लेकिन दिल से नहीं।

विकल का अतीत चलचित्र की भाँति उसके मस्तिष्क में घूम रहा था। उसे अपने माता-पिता से सम्बन्धित जीवन की अनेक घटनायें याद आ रही थीं। वह अपने पर पाश्चात्ताप कर रहा था। उसका जीवन एक करुण कहानी बन गया था। वह दो-तीन दिन तक प्रमोदचन्द्र के यहाँ रहा और उसे जब कुछ धैर्य आ गया तो वह उनसे पता पूछकर अपनी बहन तथा बहनोई से मिलने चल दिया।

उसके पिता ने दो वर्ष पहले अपनी लड़की की शादी लखनऊ में एक ब्राह्मण लड़के से कर दी थी जो वहाँ एक कारखाने में क्लर्क था। उसके पिता थे, किन्तु उसकी माता मर गयी थी। वे लोग विकल के पिता के मरने पर समाचार पाते ही झांसी आये और कुछ दिनों तक रहे। उन्हें बड़ा दुख रहा। वे यह भी सोचा करते थे कि विकल कितना नालायक बेटा है जो वर्षों तक अपने माँ-बाप की खबर ही नहीं लेता। वह बहन की शादी तक में नहीं आया। ऐसे लड़कों से तो बे पढ़े लड़के ही अच्छे। वे यह भी नहीं सोच पाते थे कि वह जिन्दा है या मर गया।

विकल को देखते ही उसकी बहन पहचान गई। और नमस्ते करते ही मानों उसकी आँखों से आँसू की धारा बह निकली। उसकी वेदना बरसने वाले मेघ की भाँति मिलन के पर्वत से टकराते ही बड़ी-बड़ी बूंदें बनकर बरस चली। विकल की आँखें भी घुचघुचा आईं, किन्तु उसने किसी भाँति अपने को सम्हाल लिया। विकल ने बहनोई साहब से भी क्षमा माँग ली। सुषमा व्यवहार तथा वेषभूषा से बिल्कुल उनके यहाँ की अन्य औरतों में खप गयी थी। कोई उसे क्रिस्चियन नहीं सोच सकता था। सारे घर

में खुशी छाई हुई थी। कोई नहीं चाहता था कि विकल वहाँ से जाये लेकिन उसकी छुट्टियाँ समाप्त हो गयीं थीं। वह रुक भी कैसे सकता था। जब वह चला तो रम्मू भी साथ चल दिया। वह सुषमा से इस प्रकार मिल गया था, मानों उसका पुराना परिचय हो। बच्चा चाहता भी क्या है, अधिक-से-अधिक स्नेह। विकल की बहन ने रम्मू को लाख रोका, लेकिन वह न रुका। वह विकल के साथ-साथ दिल्ली चला आया। उसकी विदायी के समय सबकी आँखें छुछछुछा गईं।

"भाई साहेब पहले की ही भाँति अबकी बार भी न भूल जाना। अब कोई भी मुझे इस घर में पूछने वाला नहीं है।" उसकी छोटी बहिन के इन वाक्यों से सुषमा का हृदय द्रवित हो गया। विकल ने उसे आश्वासन दिया कि वह प्रति सप्ताह या पन्द्रह दिन में एक पत्र अवश्य दिया करेगा तथा उसे जैसे ही कोई उपयुक्त अवसर मिलेगा वह पुनः आयेगा। वह वहाँ से दिल्ली के लिए चल दिया।

विकल जब लखनऊ के चारबाग स्टेशन की ओर आ रहा था तो लाटूश रोड पर चारबाग के निकट एक सज्जन जिनके साथ दो युवतियाँ थीं, चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे— ईशा की गोद में आओ जी, ईशा की गोद में आओ जी।" उनके हाथ में छपे हुए कागजों के पर्चे थे जिनमें ईशा की महानता और ईसाई धर्म मानने वाले की महानता के पुल बाँधे गये थे। बहुत से लोग उनकी ये बातें—ईशा तुमको खाना देगा, ईशा तुमको कपड़ा देगा—सुनकर खड़े होकर सुनने लगे थे। जाने कितने ही बेकार और भूखे आदमी उनके चारों तरफ खड़े थे शायद वे सोचते होंगे कि यदि ईशा की गोद में जाने से अर्थात् ईशाई बनने से उनकी रोटी की समस्या हल हो जाये तो इससे बढ़कर इस बेकारी और भुखमरी के लिए क्या इलाज होगा। सोचने की बात है कि जब धर्मों के प्रचारक स्वयं ही अपने धर्मावलम्बियों की कृपा पर जीते हैं तो भला इशाई बन जाने पर उन्हें रोटी कहाँ से और कौन देगा? शायद ईशा आसमान से गिरा दिया करेगा जबकि भूखे नंगे तथा निर्धन सभी धर्मावलम्बियों में हैं। सुषमा

और विकल भी थोड़ी देर ताँगे को रोकवा कर यह तमाशा देखते रहे। इसी बीच एक नये विचारों के सज्जन ने आकर पूछा—"क्या ईशाइयों में निर्धन तथा भूखे और नंगे व्यक्ति नहीं हैं?" उनके पास कोई उत्तर न था वह तो केवल यही चिल्ला कर कह रहे थे—"जो ईशा की गोद में नहीं जाये वह गुलाम है।" वह सज्जन अपने को न सँभाल सके, उन्हें थोड़ा समझाने के दृष्टिकोण से उन्होंने कहा—"तुम अपने धर्म की महानता बताकर दूसरों को गुलाम आदि कहते हो, यह कहाँ तक उचित है जब कि तुम्हारे ही भाइयों ने दुनिया को गुलामी सिखायी। क्या यह भी ईशा बाइबुल में लिख गये थे? भाई, धर्म के नाम पर आज तक जो कुछ हुआ है वह किसी से छिपा नहीं। धर्म के नाम पर ही हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की स्थापना हुई, हजारों और लाखों निरपराध व्यक्ति मौत के घाट उतार दिये। धर्म के नाम पर ही ५०० प्रोटेस्टैंट जीते जी आग में जला दिये गये थे। ईशा ने तो तुम्हें यह कभी नहीं सिखाया था। उसने तो दुखियों और निर्धनों की सेवा में अपने को बलिदान कर दिया। उसकी पवित्र आत्मा को चंद पैसों के लालच में क्यों कलंकित कर रहे हो। आज भारत में राम, कृष्ण, मुहम्मद की भाँति ही ईशा के लिए भी लोगों के हृदयों में श्रद्धा है, आपकी इन बातों से वह भी समाप्त हो जायेगी। भारत ने यदि सभी धर्मों को स्वतंत्रता प्रदान की है तो उसका यह तात्पर्य नहीं कि आप लोग उसका दुरुपयोग करें। धर्म आज के मानव के लिए वरदान न होकर अभिशाप है और यदि धर्म के नाम पर इंसानियत के रुधिर से रंगी जाने वाली होली फिर देखनी है तो इस प्रकार की बातें करें। यदि ईशा के प्रति सच्ची श्रद्धा है तो उनकी आत्मा को स्वर्ग में शाँति देने के लिए इन्सान के सच्चे सेवक बनो धर्म के नहीं। चंद पैसों के लिए अपने महान कर्त्तव्य को न बेचो।" वह सज्जन यह कहकर चल दिये किन्तु वह चिल्लाते ही रहे—"हमें कोई भी इससे नहीं रोक सकता है। ईशा की गोद में न जाने वाला काफिर है।" इस बात पर कुछ मुसलमान गुंडे भी आ गये बहस गर्मा-गर्मी पर पहुँचने लगी फिर भी सज्जन यह चिल्लाते ही रहे—"मेरा

कोई कुछ नहीं कर सकता ?" आगे जाने क्या हुआ। सुषमा भी उनके उस मूर्खता पूर्ण प्रचार से कुंठित होकर चल दी वह सोच रही थी—"यह धर्म-प्रचार का कितना नग्न रूप है। धर्म क्या है, शायद उनको यही ज्ञान नहीं। इन सब कारणों से ही सुषमा के हृदय से ईशाई धर्म के प्रति रही सही श्रद्धा भी जाती रही। वह सोच रही थी कि आज भी लोग धर्म के नारे लगाते हैं। जब कि धर्म की भयंकरता से सभी परिचित हो गये हैं। कोई चोटी और जनेऊँ में ही अपना धर्म समझता है, कोई साफेऔर दाढ़ी में ही तथा किसी का टाई में और किसी का पाजामे में।' 'अगर धर्म इसी का नाम है तो इससे तो बेधर्म इन्सान अच्छा है।

स्टेशन पर आकर विकल ने ताँगे वाले को पैसे देकर तथा टिकट खरीद कर गाड़ी पर बैठ गया जिसे छूटने में केवल बीस मिनट ही रह गये थे।

विकल को उसके माता-पिता की अचानक मृत्यु का ध्यान कभी-कभी बहुत दुखी कर देता था, सुषमा प्रत्येक प्रकार से उसे प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती रहती। कभी उसे उदास देखकर ताश के पत्ते लेकर बैठ जाती; कभी कैरम लेकर खेलने लगती तथा कभी उसकी गोदी से लिपट जाती। रम्मूके आ जानेसे उसे थोड़ा और पारिवारिक आनन्द मिल जाता था।

आज जब शाम के समय विकल दफ्तर से लौट कर आया तो सुषमा ने उसे गर्म-गर्म चाय पिलायी और कुछ स्फूर्ति आने पर उसने कहा—"मुझे लगता है कि लड़की होगी क्योंकि मेरे पाँव हल्के पड़ते हैं। विकल बोला—नहीं लड़की। सुषमा अपनी बात पर अड़ गयी और विकल अपनी बात पर निर्णय के लिए यह तय हुआ कि यदि इकन्नी उछालने पर जो बात सही निकलते वह ठीक रही। सुषमा ने सन् लिया विकल ने सुतली। विकल ने पहले इकन्नी उछाली तो सुतली गिरी और वह सुतली कह कर हर्ष से चीख उठा, इसके बाद सुषमा ने उछाली तो सन् गिरा और वह 'सन्-सन्' कहकर चीख उठी। तीसरी बारी अंतिम थी कि यकायक रमेश आ गया। दरवाजा खोलते ही सुषमा ने उससे 'नमस्ते' किया तथा उसने यह शोर गुल सुनकर पूछा—"क्या बात है ?" विकल बताने ही जा रहा

था कि सुषमा ने लजाकर विकल को उँगली के इंगितसे मना कर दिया। विकल ने कहा—"मेरी सुतली है और इसका सन् अब तुम्हीं उछालो आखिरी बार क्या निकले ?" रमेश ने उछाली तो फिर सन् गिरा। सुषमा खुशी से उछल पड़ी और कहा—"मेरी बात ठीक है।" रमेश अभी समझ नहीं पाया था। वह बोला—"भाई बात क्या है? मुझे भी बताओ ना।" उसने अबकी बार कह दिया—"भाई बात यह है कि यह कहती हैं कि लड़की होगी और मैं कहता हूँ कि लड़का बताओ किसकी बात ठीक रही।" विकल को यह कहते सुनकर सुषमा कमरे के अन्दर चली गयी। रमेश ने कहा—"अच्छा मैं अभी निर्णय किये देता हूं, पहले एक गिलास पानी पिलाओ।" विकल हँस पड़ा—"वाह भाई खूब रही। हाँ, ज्योतिषी जी की पहले कुछ सेवा करो तभी तो मेवा मिलेगी।" इसी बीच रम्मू भी खेल कर आ गया। वह रमेश को देखकर कुछ झिझका तो, लेकिन विकल के कहने से उसने रमेश को नमस्ते किया।

रमेश ने रम्मू को प्यार से बुलाया वह उसके पास चला गया। रमेश ने उसे हँसाने तथा उसका मन प्रसन्न करने के लिए रम्मू से पूछा—"तू लड़का लेगा कि लड़की ?"

"लड़का।" उसने उत्तर दिया

"लड़का लेकर क्या करेगा ?"

"उसके साथ खेलूंगा।"

"भाई साहब आपके क्या होगा ?" रम्मू ने पूछा। उसे क्या पता था कि रमेश की शादी भी नहीं हुई।

"बस वही जो तुम चाहते।" कहकर रमेश ने उसका मन प्रसन्न कर दिया। वह प्रसन्नता से बोला—"तब तो मैं उसके साथ में खूब खेलूँगा।"

"खूब," रमेश ने कहा। सुषमा खड़ी-खड़ी यह सब सुन रही थी। उसने उस बात को बिल्कुल ही ठीक समझ लिया। वह बोली—"तो मास्टर जी आपने भाभी से मुझे क्यों नहीं मिलाया ?"

"तुमने कभी उन्हें याद ही नहीं किया।" रमेश बोला

"आपने कभी बताया ही नहीं ।"

"जब तुमने पूछा ही नहीं तो बताने का सवाल ही क्या ।"

रमेश, सुषमा से ऐसे बातचीत कर रहा था मानों वह बिल्कुल ठीक कह रहा हो लेकिन वह यह देख रहा था कि इसकी उत्सुकता कहाँ तक बढ़ेगी । सुषमा बोली—"अच्छा उन्हें एक दिन के लिए ले आइए ।"

"वह यहाँ नहीं आ सकतीं क्योंकि तुमसे अप्रसन्न हैं ।"

"तो मैं चलती हूँ ।"

"हाँ—हाँ ।"

"लेकिन यह खूब रही, आपने शादी कर ली मुझे बताया तक नहीं ।"

"इसमें बताने की क्या बात ? जैसे तुमने शादी कर ली थी और मुझे बाद में बताया । वैसे ही मैंने भी सोचा था कि बाद में बता देंगे ।" रमेश ने कहा । सुषमा कपड़े पहनकर जाने की तैयारी करने लगी । रमेश की इस बात से विकल को हँसी आ रही थी क्योंकि वह जानता था कि रमेश हँसी कर रहा है । हँसी को रोककर वह थोड़ा गम्भीर हो गया और सुषमा की बातें समाप्त होने पर वह रमेश से गम्भीरतापूर्वक इस विषय पर बात करने लगा—"रमेश, तुम पूरे योगी हो रहे हो । इतनी उम्र हो गयी है फिर भी शादी क्यों नहीं करते । क्या बात है ? तुम्हारे जीवन के इस रहस्य को मैं नहीं जान सका । स्त्री जब घर में आ जाती है तो कितना अच्छा होता है, कितना सुख मिलता है ।"

"विकल तुम बिलकुल ठीक कहते हो लेकिन इसके साथ और भी कुछ बातें हैं । भला, इस कार्यहीन, धनहीन, वैभवहीन अवस्था में मैं शादी की बात सोचूँ तो क्या मेरी यह एक कल्पना नहीं होगी ।" रमेश ने कहा ।

"रमेश, वैसे तो मैं तुम्हारी प्रत्येक बात को मान लेता हूँ, लेकिन इस बात को नहीं मानता । यदि किसी का प्यार तुमसे है तो वह प्रत्येक संभव सहायता से तुम्हें सुखी बनाने के लिए उद्यत हो जायेगी । सुषमा ने ही मुझसे कई बार नौकरी करने की चर्चा की लेकिन मैंने ही मना कर दिया । इसके अलावा यदि तुम स्वयं इस कार्य को करने में असमर्थ हो तो मैं

तुम्हारी शादी करवाने का उत्तरदायित्व लेता हूँ।

"इसके लिए तुम्हें धन्यवाद। चिन्ता की क्या बात विकल, समय आने पर यह भी बात पूरी हो जायेगी।"

सुषमा तैयार होकर बोली—"मास्टर जी चलिये।" विकल की ओर इंगित करके उसने कहा—"अच्छा आप भी तो तैयार हो लें।" विकल जानता ही था कि रमेश मजाक कर रहा है इसलिए उसने न जाने का बहाना करते हुए कहा—"मेरा तो मन आज ठीक नहीं है।"

"क्यों ?" सुषमा ने पूछा

"कुछ ऐसे ही।"

"आपका तो सदा ही मन ऐसा रहता है। जब मैं कहीं की भी जाने की सोचती हूँ तो आप तत्काल नहीं कर देते हैं। मैं भी अब कभी आपके साथ नहीं जाऊँगी।"

अच्छा तो रूठने की कोई बात नहीं, एक बात का उत्तर दो तब चल सकता हूँ।"

"क्या ?"

"यही कि तुम बुद्धू हो कि नहीं ?"

"मैं क्यों बुद्धू ?"

"और यदि मैं सिद्ध कर दूं तो।"

"हाँ आप तो सब कुछ सिद्ध कर सकते हैं। आपको इन बेकार बातों में क्या विशेष आनन्द आता है ? सुषमा ने फिर कहा—"अगर आप नहीं जायेंगे तो मैं अकेले ही जा रही हूँ।"

"हाँ-हाँ शौक से। लेकिन वहाँ जाओगी भी तो किसलिए।"

"यह भी कोई बार-बार बताने की बात है।"

"तभी तो मैं पूछता हूँ किससे मिलने जाओगी कोई है भी वहाँ।"

यह कहकर विकल हँस पड़ा, सुषमा भी समझ गयी और वह लजा गयी। "मास्टर जी भी अच्छे रहे, हमें खाँमखाँ में बेवकूफ बना दिया—" सुषमा ने कहा।

"लेकिन जो पहले से ही बेवकूफ हो उसे बेवकूफ बनाने की क्या बात? देखो बुद्धू रही कि नहीं, मैंने सिद्ध कर दिया। अच्छा उसी बुद्धू बनने की खुशी में तुम चाय पिलाओ।" लेकिन सुषमा ने चाय बनाने का ध्यान नहीं दिया, वह सोचती रही वह कैसे बुद्धू बन गयी और इसी बात पर विकल ने रम्मू के हाथ चार कप चाय तथा कुछ नमकीन पड़ोस की दूकान से ही मँगवा लिया।

"अरे, अब लजाने की क्या बात अब तो बुद्धू बन ही गयी हो अब चाय तो उसकी खुशी में पी ही लो।" विकल ने सुषमा से मजाक में कहा। सुषमा किसी प्रकार कमरे के बाहर से अन्दर बरामदे में सबके साथ बैठ गयी और फिर अन्य बातें होती रही। सबने चाय पी।

चाय समाप्त होने पर रमेश घर की ओर चल दिया वह रास्ते भर प्रेम के आनन्द और दुख को सोचता रहा उसने विभिन्न प्रकार के दम्पति देखे थे। उसने ऐसे भी दम्पत्ति देखे थे जिनका जीवन शादी के उपरान्त नारकीय बन गया था तथा ऐसे भी जिनका जीवन उच्च कोटि का और अत्यधिक आनन्दमय बन गया था, जैसे उनके जीवन में बसन्त किलकारियाँ भरता हो। सुषमा और विकल का आनन्दमय जीवन उनके हृदय में घर कर गया था। वह सोचता था कि यदि उसे भी सुषमा के समान सुन्दर तथा योग्य और सुचरित्र पत्नी मिलती तो कितना अच्छा होता लेकिन अपनी विवशता को देखकर मन मसोस कर रह जाता। विकल की यह बात—"मगर तुम्हारा ठीक प्रकार से कार्य न चले तो वह कमा सकती है।" उसकी भावनाओं से आँख मिचौनी खेलता रहा। उसे ऐसे लगा जैसे उसके हृदय का प्रेम सोते-सोते जाग उठा हो। स्त्री और पुरुष का मधुर मिलन, उनकी केलि-क्रीड़ा आदि जानें कितनी ही बार उसने अपनी दृष्टि से देखी थी, किन्तु उसने देखी अनदेखी कर दी थी। आज न जाने क्यों उसके मन में भी प्रेम के सपने डूबने और उतराने लगे थे किन्तु वे विवशता के तट पर आकर लहरों की भाँति विलीन हो जाते। उसने हृदय के इस उठते हुए उद्रेक को बरबस रोका किन्तु फिर भी

उसे मानसिक शान्ति न मिली। उसके मन में भौतिक आवश्यकताओं के संघर्ष के साथ-साथ प्रेम का संघर्ष भी प्रारम्भ हो गया था। प्रेम उसे एक कल्पना के समान लग रहा था फिर भी उसे साकार देखने का स्वप्न उसकी आँखों के सामने नाच रहा था।

रमेश वहाँ से आकर मन्दिर में लेट गया, किन्तु उसे नींद नहीं आ रही थी। वह इसी जागरण में एक गीत गुनगुनाता रहा--

"तड़प रही है मानवता धन की जंजीरों में,
प्यार सिसकियाँ लेता और कराहें भरता है।"

५

समय अपनी अबाध गति से चलता रहता है। क्षण-क्षण होते-होते दिन और दिन जुड़ते-जुड़ते मास और फिर वर्ष बन जाते हैं। मानव समय के साथ-साथ चलते-चलते जाने कितनी ही घटनाएँ छोड़ता हुआ चला जाता है जिनकी उसे स्मृति भी नहीं आती, किन्तु कुछ ऐसी बातें होती हैं जो उसकी स्मृति से कभी भी ओझल नहीं हो पाती और जो उसके हृदय की वेदना बन जाती हैं।

रमेश के हृदय में उस दिन विकल के यहाँ से लौटने के उपरान्त प्रेम की असह्य तृषा जाग उठी थी। उस दिन से विकल के शब्द तथा अन्य सब बातें उसके मन में गूंज रही थीं, यद्यपि वह विकल के यहाँ उस दिन के बाद भी कई बार गया और अनेक बातें भूल गया किन्तु उस दिन की बातें उसके मन की तृषा सदैव जगा देतीं थीं।

बरसात के दिन थे। आकाश में काले-काले मेघ मँडरा रहे थे। शीतल, मंद, सुगन्ध पवन अपने मृदुल स्पर्शी झकोरों से वातावरण को सुहावना बना रहा था। घटायें इस प्रकार अँगड़ाकर चल रही थीं कि मानों उनका यौवन झलका रहा हो। वृक्ष इस प्रकार झूम रहे थे मानों वह मधु की मस्ती में सराबोर हों, किन्तु रमेश का हृदय प्रेम की तृषा से व्याकुल हो रहा था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे कि वह किसी वेदना में समाया जा रहा हो। उसका यौवन प्रेम की मादक कल्पना से उसे रह-रह कर झकझोर देता था। वह सोच रहा था कि इस परिस्थितियों के चंगुल से तो वह इस प्रकार नहीं निकल सकता है लेकिन ज्वार-भाटे की भाँति उफनती हुई प्यास को भी वह अब न दबा सकेगा। आज तक उसने अपनी प्रत्येक इच्छा का हनन् किया था, प्रत्येक उमंग का गला घोंटा था। लेकिन

किसी बात की सीमा होती है । तृषा जितनी ही दबी रहती है, उतनी ही तीव्रता से जाग्रत होती है । प्रेम क्या है, वह सोच भी नहीं पाता था। क्या धन का ही प्रेम पर अधिकार है, यह प्रश्न बार-बार उसके मस्तिष्क में कौतूहल मचा रहा था । क्या वह किसी के विशाल हृदय का प्रेम पा सकेगा, यह बात उसके सामने अजेय चोटी की भाँति गर्वोन्नित खड़ी थी । आज वह यह सोचने में भी असमर्थ सा दीख पड़ता था कि प्रेम की प्यास सबसे बड़ी है या पेट की भूख ।

दिन बीतते गये, समय ने एक परिवर्तन लिया और वह एक अनाथालय का प्रबंधक हो गया । अनाथ बालकों के लिए उसके हृदय में असीम प्रेम था । वह अपने व्यवहार से प्रत्येक बालक तथा बालिका के हृदय में समा गया था । वह अपने वेतन का अर्ध भाग अनाथ बालक और बालिकाओं में बाँट देने से वह उनके हृदयों में समा गया था । भोजन उसे वहीं से प्राप्त होता था तथा निवास भी उसे वहीं पर करना पड़ता था । इस अनाथालय में बालक और बालिकाएें दोनों ही रहते थे ।

एक रात्रि में जब वह नौ बजे अपने कमरे में बैठा हुआ था । यकायक एक लड़की ने आकर उससे कहा—"मैनेजर साहब मेरे सिर में बड़ा दर्द है । क्या करूँ ?

"जाओ किसी लड़की से तेल की मालिश करवा लो ।"

"वह तो मैं करवा चुकी हूँ लेकिन फिर भी नहीं जाता ।"

ओह ! तो तुम इतने सिर दर्द से घबरा रही हो जीवन में तो कितने ही सिर दर्द लेने पड़ते हैं ।" वह लड़की रमेश के इस स्नेह पूर्ण वाक्य से भीग गई और कुछ देर तक मौन खड़ी रही । वास्तव में उसकी जबान उमंगें ही उसके लिए सिर दर्द का कारण बनी हुई थीं । वह सोचा करती थी कि कौन सी शुभ घड़ी होगी जब उसके मन का मीत उसे अपने प्यार की गोदी में दुलरा रहा होगा, जिसके आलिंगन-पार्श्व में वह अपने प्यार के मधुर स्वप्न सजा रही होगी ।

इस लड़की का नाम था प्रेमा । अनाथालय के खर्च से उसने इस वर्ष

इन्टर की परीक्षा दी थी। उसकी उम्र लगभग २० वर्ष की थी फिर भी वह अनाथालय के रजिस्टर में केवल १५ वर्ष की थी। अनाथालय ने उसे जीवन-यापन करने तक की शिक्षा दे दी थी। वहाँ के नियमों के अनुसार यदि उसके अभिभावक उसे ले जाने को न आते तो वह या तो अनाथालय की ओर से किसी की शादी के सूत्र में बांध दी जाने को थी अथवा उसे अपना व्यक्तिगत प्रबन्ध कर लेना था। अनाथालय के वातावरण में रह कर वह अपना रूप संवार-सिंगार तो अधिक नहीं पाती थी किन्तु, उसका स्वभाविक सौन्दर्य मानों फूट-फूट कर निखर रहा था। वह जब कभी शीशे के सामने अपने सौन्दर्य को निहारती तो जाने क्या-क्या अपने मन में सोचने लगती। रमेश के उच्च विचार तथा सुन्दर व्यवहार और उसके छलकते हुए यौवन से वह इस प्रकार आकर्षित हो गयी थी कि रमेश को शादी सुदा जानकर भी उसके प्रेम के सपने बुना करती थी। वह सोचती थी—काश यदि मैनेजर साहब कहीं कुँवारे होते तो कितना अच्छा होता। यही कारण था कि कभी-कभी वह अपने को बड़ी ही उलझन पूर्ण अवस्था में पाती। यौवन की उमंगें उसे बोझिल किये रहती थीं। कभी-कभी उसकी वेदना विकराल रूप से उसके समक्ष आ खड़ी होतीं। वह अपने हृदय के दर्द को किसी से व्यक्त भी न कर पाती। वह रमेश से कहे तो किस प्रकार कहे, यह सोच भी न पाती थी। उसे ऐसा करने का कभी भी साहस न हुआ। उसे जीवन से बहुत निराशा हो गयी थी और उसके कुछ व्यवहारों से रमेश को थोड़ा-थोड़ा आभास हो गया था कि प्रेमा उससे प्रेम करती है किन्तु वह एक उत्तरदायी स्थान पर था और उसकी,मर्यादायें तोड़ना घोर पाप समझता था। वह कुमार भी था लेकिन अन्य लोगों की जानकारी में शादी सुदा अन्यथा उसे वह नौकरी कदापि न मिलती।

आज जब होस्टल की सुपरिटेन्डेन्ट महोदया कुछ समय के लिए बाहर गयी हुई थीं तो वह चुपके से रमेश के कमरे में आगयी। उसने आज तै कर लिया था कि वह रमेश के सामने ही अपने प्राण दे देगी। इसके लिए उसने किसी प्रकार से विष का प्रबन्ध कर लिया था।

थोड़ी देर तक वह मौन खड़ी रही और फिर वह—"मैं जानती हूँ कि आप शादी सुदा हैं और आप मुझसे प्रेम न कर सकेंगे, किन्तु मैं आपके बिना जीवित नहीं रह सकती। मैंने आपको जी भर कर देख लिया शायद उस जन्म में मिल सकूँ। क्षमा करना मैं सदा के लिए विदा लेती हूँ"—यह कहकर वह विष की शीशी निकाल कर, डाट खोलकर जैसे ही मुख के समीप ले जाने वाली थी कि रमेश ने उसका हाथ पकड़ लिया। वह उसकी बांहों में 'बरसात' में राजकपूर और नरगिस वाले पोज की भाँति झूल गयी। रमेश एक पल ऐसी घटना से कुछ चौंक-सा उठा किन्तु उसको बांहों में लेते हुए उसे ऐसा लगा जैसे उसने जीवन की एक मधुर कल्पना साकार हो गयी हो। प्रेमा का इतना अधिक प्रेम और सौन्दर्य उसे अपने प्रेम की ओर खींच ले गया। वह अपने को न सँभाल सका उसके हृदय में प्रेम की प्यास तो बहुत पहले से जाग चुकी थी, इस अवसर पर वह अपने आतुर अधर और मन की जवान उमंगें न सँभाल सका। उसने प्यार से प्रेमा के अधर चूमे और अपने आलिंगन पार्श्व में बाँध लिया।

उसे अपने वक्ष से लिपटाते हुए उसकी भावुकता जाग उठी फिर भी उसने अपने मन पर नियंत्रण किया।

प्रेमा का हृदय प्रगाढ़ प्रेम और वेदना में डूब गया था। उसने कहा--"मैनेजर साहब आज ऐसा लगता है कि जैसे मुझे मौत ने फिर जिन्दगी दी हो, मगर मैं आपके प्रेम को कैसे पा सकूँगी आप किसी के बन्धन में जब बँधे हुए हैं। मैं आपके प्रेम में पागल हो गयी हूँ। मुझे मर जाना ही अच्छा है।"

"प्रेमा, मैं अपने हृदय की व्यथा कैसे कहूँ। मैं भी तुम्हारी ही भाँति प्रेम में खो गया हूँ। मैं शादी सुदा नहीं कुमार हूँ। लेकिन जानती हो कि यदि किसी प्रकार मेरे कुमार होने की बात तथा तुम्हारे प्रेम की बात का किसी को भी आभास हो गया तो आर्थिक सहारे से भी हाथ धोना पड़ेगा। लोगों की दृष्टि में बहुत गिर जाऊँगा। किसी के प्रेम को पल्लवित होते बहुत कम लोग देख सकते लेकिन किसी को बदनाम करने वालों की कमी

नहीं। हम दोनों के लिए यह सदैव के लिए कलंक सा हो जायेगा आखिर-कार रहना तो इसी समाज में है जो सदैव किसी के प्रेम की जड़ें काटने के लिए तत्पर रहता है।" रमेश ने कहा।

"मैनेजर साहेब, मुझे सब कुछ मिल गया है। अब मुझे संसार में किसी से डर नहीं है लेकिन वचन दो कि आप मुझसे ही शादी करेंगे। प्रणय का बन्धन किसी अन्य से आप न करेंगे। मैं आपकी नौकरी छूटने के पहले ही कहीं न कहीं नौकरी ढूँढ़ लूंगी। मेरा यहाँ से हटाकर कहीं और प्रबन्ध कर दो लेकिन मुझे पुरुषों से बड़ा डर लगता है। मैं जब एक घटना की याद करती हूं तो मेरा मन कसक उठता है। बहुत दिनों पहले उसे मैंने समाचार पत्र में पढ़ा था—लखनऊ के एक कालेज के प्रौफेसर शादी सुदा होते हुए भी एक अध्यापिका के प्रेम में पढ़ाते-पढ़ाते फँस गये। पहले तो उन्होंने उसे शादी का आश्वासन दे दिया किन्तु जब वह गर्भवती हो गयी और उसकी बदनामी होने लगी तो उसने उनसे शादी की बात छेड़ी किन्तु वह इन्कार कर गये। वह उन्हीं के सामने विष खाकर मर गयी किन्तु उनका पत्थर-हृदय फिर भी द्रवित न हुआ। उसकी लाश को उन्होंने गड़वा दिया, जिसे कुत्तों और जानवरों ने नोंच-नोंच कर इस नौबत तक पहुँचायी कि वह समाचार पत्रों की सामग्री बनी, कहीं ऐसा न हो। इससे तो अच्छा अभी मर जाना है।"

"प्रेमा, मैंने जीवन में पहली बार तुमसे प्यार किया है। मेरा वचन पत्थर की लकीर की भाँति अडिग है। मैं तुम्हें अब मरने न दूँगा। तुम मेरे जीवन की किरण हो। अब तुम्हारे बिना मेरी दुनिया में अँधेरा छा जायेगा। तुम चन्द्रिका की मंजुल रश्मि की भाँति मेरे जीवन में आई हो। लेकिन देखो, देर हो रही है, तुम चली जाओ नहीं तो कोई अन्य आ जायेगा और हम दोनों कहीं के न रहेंगे। रमेश ने उसे अलग करते-करते एक बार और प्यार से चुम्बन लिया। उसका मन नहीं चाहता था कि वह उसके अधर अपने अधरों से दूर करे, किन्तु समय बड़ा क्रूर है। सुषमा के पाँव कमरे से बाहर नहीं उठ रहे थे किन्तु विवश थी।

प्रेमा गयी ही थी कि उसके पाँच मिनट बाद सुपरिटेन्डेंट महोदया आ गईं। उन्होंने रमेश से थोड़ी देर बात की और लड़कियों के छात्रावास में चली गयीं। रात के दस बजे का समय था। अन्य लड़कियाँ सोने लगीं थीं किन्तु प्रेमा को नींद नहीं आती थी। सुपरिन्टेन्डेन्ट महोदया ने उससे पूछा—"क्या बात है प्रेमा ?"

"बात कुछ नहीं है, सिर में दर्द है।" यौवन की अवस्था में होने के कारण सुपरिन्टेन्डेन्ट महोदया का भी उस पर बहुत नियंत्रण रहता था। आज उसे नींद नहीं आ रही थी। आती भी तो कैसे आज उसके हृदय में प्रेम के मधुर स्वप्न अँगड़ाई ले रहे थे। सुपरिन्टेन्डेन्ट महोदया को भी कुछ आज उस पर शंका हो गयी थी। रात में वह जगीं और एक बार सोती हुई लड़कियों की ओर चक्कर लगाया तो देखा कि प्रेमा फिर भी जग रही है। उसने जाकर प्रेमा से पूछा—"क्या बात है प्रेमा ? सोयी क्यों नहीं ?" "ऐसे ही नींद टूट गयी।" प्रेमा ने कहा। बात यह थी सुपरिन्टेन्डेन्ट महोदया स्वयं रमेश से आकर्षित हो गयी थीं और उसे रमेश ने एक बार अच्छी तरह से समझा दिया था। उस समय यदि रमेश चाहता तो उन्हें नौकरी से भी अलग करवा सकता था, किन्तु उसने यह पूर्ण रूप से अन्याय समझा। अतः उसने ऐसा न किया किन्तु वह बदला लेने की ताक में थी। प्रत्येक का जीवन तो आदर्शवादी नहीं होता। रमेश के कारण उनकी दाल न गल पाती थी। उसे कुछ ऐसा आभास हो गया था कि प्रेमा का रमेश से कुछ आकर्षण है और वह उसे आकर्षित करने वाली सभी गुणों से पूर्ण है। वह रमेश और प्रेमा के प्रेम को तो कभी सहन ही नहीं कर सकती थीं, इसके अतिरिक्त वह कोई बहाना खोजकर रमेश को हटाना भी चाहती थीं ताकि उन्हें भी अपनी इच्छा पूर्ण करने का अवसर प्राप्त हो सके।

'शत्रु को जब मारना हो तो शत्रुता से नहीं मित्रता से' यही सिद्धान्त रखकर वे प्रेमा की शुभचिन्तक बन गयीं। वास्तव में उनका क्रोध प्रेमा से नहीं था। था तो रमेश से, किन्तु बिना प्रेमा के द्वारा उसकी किसी शिथिलता को जाने बिना वह यह कार्य भी तो नहीं कर सकती थी। यौवना-

वस्था बहुत भावुक होती है। छात्राओं के मध्य रहते-रहते तथा अपने आत्म-अनुभव से उन्हें इस मनोविज्ञान को समझने के कई अवसर प्राप्त हुए थे। अतः उन्होंने प्रेमा से किसी न किसी प्रकार यह जान लिया कि रमेश और प्रेमा का प्यार है, किन्तु प्रेमा को इस बात का बोध न था कि वह उसकी शुभचिन्तक न होकर अशुभचिन्तक हो जायेगी।

उस दिन सुपरिन्टेन्डेन्ट महोदया के आ जाने से वह ईश्वर को धन्यवाद ही देता रह गया कि बड़ा अच्छा हुआ जो प्रेमा कुछ देर पूर्व उसके कमरे से चली गयी, अन्यथा जाने क्या अनर्थ उसी समय हो जाता। रात में उसे भी नींद न आई और जाने क्या-क्या सपने बुनता रहा। किन्तु वह प्रेमा के प्रेम से चिन्तित भी हो गया था, सोचता रहा कि कहीं ऐसा न हो जाये कि यह बात फैल जाये और कुसमय ही उसे दुस्परिस्थिति का शिकार होना पड़े। प्रेमा के नौकरी करने के साहस से उसका पौरुष जाग-सा उठा। वह सोचता था कि यदि कोई लड़की होकर नौकरी कर सकती है, तो वह तो आखिरकार पुरुष ही है। इसलिए उसे नौकरी के छूट जाने का भी भय न रह गया था। वह सोचता था कि वह एक अबला से तो गया-बीता नहीं है। त्याग और संघर्ष ही तो प्रेम की वास्तविक कसौटी है। फूलों की सेज पर तो सभी आनन्द लेने को तत्पर रहते हैं, जो शूलों की सेज पर लेट सके वही साहसी इन्सान है और वही प्रेम, प्रेम है। यह सब सोचकर उसने प्रेमा को वहाँ से हटाकर विकल के पास पत्र देकर भेज दिया। उसने विकल को लिखा—

प्रिय विकल,

आप और सुषमा जिनसे मिलने को उत्सुक थे, वही अब आपके पास आ रही हैं। अब वह आप लोगों के पास ही रहेंगी, मैं भी दो-तीन दिन में आ जाऊँगा।

—तुम्हारा रमेश

प्रेमा इसे लेकर तथा अनाथालय छोड़ने का प्रार्थना-पत्र लिखकर स्वयं चली गयी। रमेश ने उसका प्रार्थना-पत्र स्वीकृत कर लिया था, किन्तु

यह बात अध्यक्ष महोदय के पास तक पहुँच गयी थी। अध्यक्ष महोदय ने रमेश को बुलवाया। वास्तव में उस लड़की की ओर कुछ प्रबन्ध-समिति के सदस्य भी आकर्षित थे और अध्यक्ष महोदय स्वयं ही। अतः इस विवाद को लेकर वे रमेश को कानून के शिकंजे में डालना चाहते थे, किन्तु वह किसी प्रकार से नहीं आ सकता था। वह बालिक थी तथा उसने स्वेच्छा से प्रेम किया था। रमेश ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि उसका उससे प्रेम है तथा वह उससे शादी भी अपने ढँग से कर चुका है। उसके चरित्र पर अध्यक्ष महोदय ने तरह-तरह के छींटे कसे किन्तु उसने भी उनका खूब तावड़-तोड़ उत्तर दिया और नौकरी छोड़ देना उसने उचित समझ-कर अपना त्याग-पत्र प्रस्तुत कर दिया। वह उसी दिन शाम को विकल के घर चला गया। उसका एक प्वाइंट बड़ा शिथिल था। उसने गलत लिखवाया कि वह शादी सुदा है। इससे भी बचने का उसने उपाय खोज लिया था। अध्यक्ष महोदय को भी यह पता हो गया था कि वह उसका वैधानिक रूप से उस सम्बन्ध में कुछ भी बिगाड़ न सकेंगे। अतः उन्होंने भी इस बात को आगे ले जाने का प्रयत्न न किया। किन्तु रमेश के वेतन का प्रश्न अवश्य उलझ गया था।

× × ×

रमेश और प्रेमा, विकल और सुषमा के साथ ही रहने लगे। विकल के पास तीन कमरे थे, अतः उसने एक कमरा रमेश को दे दिया। प्रेमा ने, वहाँ से आने के उपरान्त, निश्चय कर लिया था कि वह अपना आर्थिक भार रमेश पर अधिक न पड़ने देगी। उसने अपने साहस और संघर्ष से निराशा की गोद में भी आशा की किरण खोज ली। उसे करौल बाग के जूनियर हाईस्कूल में अध्यापन का कार्य प्राप्त हो गया। जीवन में कार्य करने का यह प्रथम अवसर था, अतः वह प्रसन्नता से फूले न समायी। किन्तु उसके पास अधिक अच्छे, आज के समाज के अनुकूल पहनने के लिए, वस्त्र न थे। रमेश इसके लिए बड़ा चिन्तित था। कई दिनों के उपरान्त उसने प्रयत्न करके अपना डेढ़ मास का वेतन प्राप्त कर लिया था और तीन सौ रुपयों में से उसने २ सौ रुपये के कपड़े प्रेमा के लिए ले लिये

तथा पचास रुपये की अन्य खाने की सामग्री ले आया ताकि कम-से-कम १ मास तक आराम से दाल-रोटी मिल सके और पचास रुपये अन्य खर्चों के लिए बचा लिये।

अब की बार की खरीददारी में चाँदनी चौक के दुकानदारों से वह इतना कुंठित हुआ कि उसका मन रह-रहकर यह कहता था—काश, यदि उसके हाथ में कोई ऐसा विनाशक यन्त्र होता तो कम-से-कम इन दुकानदारों को रूस के जमीदारों की भाँति अवश्य ही मौत की घाट उतार देता। उसे जितना गया-बीता व्यवहार यहाँ के दुकानदारों का लगा, शायद उसने अपने जीवन में अन्यत्र कहीं अनुभव न किया था। यहाँ पर उसने देखा था —कोई भी दुकानदार हजारपति से तो कम नहीं। लखपती और करोड़पतियों की भी कमी नहीं। कोई भी दुकानदार ऐसा न होगा जो साफ-सुथरे वस्त्रों में न हो। सरकार ने मानसिंह आदि डाकुओं को पकड़वाने के लिए लाखों रुपये व्यय कर दिये होंगे किन्तु आज तक इनकी डकैती को रोकने के लिए कोई भी सम्भव प्रयत्न न किया होगा और करे भी कैसे, वही चोर हैं और वही शाह। सरकार की दृष्टि में तो वे शरीफ ही हैं। पैसे की मार भी तो कम नहीं। कोई व्यक्ति अपने पैसे को जेब-कटों से बचा सकता है, किन्तु इनसे कोई ग्राहक बुरे या भले ढँग से फँसकर न जाये, यह सम्भव नहीं।

ये लोग इतने शरीफ हैं कि किसी को भी ग्राहक समझ कर बड़े प्यार से अन्दर बुलायेंगे किन्तु उसने कहीं यदि एक बार भी किसी वस्तु का भाव धोखे से भी पूछ लिया तो उसकी जेब के पैसे निकाले बिना नहीं रह सकते। यदि किसी की भी वेष-भूषा से आँक लिया कि यह देहाती है तथा दिल्ली के बाहर का है तो फिर क्या बिना वस्तु खरीदे वहाँ से निकल जाने दें। दिल्ली क्लाथमिल आदि की दूकानों को छोड़ कर कोई भी ऐसा दुकानदार न होगा जिसके यहाँ के भाव निश्चित हों। चार रुपये की वस्तु को आठ रुपया बताकर भाव करना तो यहाँ की बनियागीरी का सबसे प्रधान गुण है। और यदि ग्राहक को निर्बल तथा अकेला समझ

लिया तो उसकी कीमत दस रुपये बता देना भी इनके लिए कुछ कठिन नहीं। यदि उसने अपनी दृष्टि से कहीं दस की जगह छै कह दिये, तो उनका उत्तर "कभी तुम्हारे बाप-दादों ने भी खरीददारी की थी," आदि-आदि सुन्दर वाक्यों से नहलाने लगते हैं। फिर कोई बेचारा अपनी बेइज्जती न करवाकर वस्तु ले लेने में ही अपनी इज्जत समझता है। इसी कारण जो लोग समझदार हैं, वे यदि वहाँ जाते भी हैं तो अकेले नहीं।

जब से विभाजन हुआ इस प्रकार की शराफत यहाँ और भी अधिक बढ़ गयी।

उसने अपनी आँखों से एक बक्स की दूकान पर देखा कि एक बेचारा किसान इसी प्रकार के दूने-तिगुने भाव के कारण एक सन्दूक न ले सका। कहाँ तो वह लोहे की बक्स लेने जा रहा था और कहाँ चमड़े और कार्ड-बोर्ड की बक्स वाले दुकानदार ने उसे प्यार से बुलाकर फाँस लिया। कार्ड-बोर्ड की बक्स जिसके दाम पच्चीस रुपये कहकर अठारह पर दिया वह मुश्किल से ग्यारह-बारह रुपये की थी। रमेश ने भी एक ऐसी बक्स कभी खरीदी थी। वह बेचारा डर के मारे उसके दाम अठारह रुपये ही कह सका और उस पर भी उन्होंने कितनी भली-बुरी बातें उसे सुनायीं। वह बेचारा बड़ी मुश्किल से सब जोड़-गाँठकर उन्हें अठारह रुपये दे सका। उसके पास गाँव जाने को किराया भी न रह गया था। जब उसने अठारह रुपये बक्स के दे दिये तो उन्होंने रसीद फाड़कर नौ आने सेल टैक्स के माँगे। उसके पास अब शंखिया खाने के लिए भी एक पैसा न था। उसने हाथ तक जोड़ा, किन्तु वह एक भी मानने को न थे, न उसका पैसा ही वापस कर रहे थे, न बक्स ही दे रहे थे। रमेश को यह बात बहुत बुरी लगी और उसने इस कारण दुकानदार को समझाया कि वह कम से कम इतनी तो उस पर दया करे। कोई उसकी ओर से बोलने को भी तत्पर न था। दुकानदार प्रायः दुकानदार का ही पक्ष लेते हैं। रमेश भी अकेले था। उसने ऐसी स्थिति देखकर उस बेचारे की ओर से नौ आने देकर बक्स दिलवाया। वह तो यह भी कह रहे थे कि इसने मुझे कुछ पैसे ही नहीं

दिये। रमेश जानता था कि ये दिल्ली की चाँदनी चौक के दुकानदार हैं, उनका राम-रहीम और इमान-धर्म सब कुछ पैसों के नाम पर मर गया है। और उसके पास कोई प्रमाण भी तो नहीं हैं, न उसकी ओर से कोई बोलने वाला ही। बक्स खरीदवा देने के बाद उसने वृद्ध ग्रामीण सज्जन से प्रार्थना की—"बाबा, चाहे कहीं से सामान ले आना लेकिन दिल्ली की चाँदनी चौक से न लेना।"

सुषमा अपना ओवर कोट तथा साड़ी आदि पहनकर इतनी सुन्दर मालूम पड़ती थी कि मानों कोई स्वर्ग की अप्सरा हो। सुन्दर वस्त्रों के बिना भी सौन्दर्य अपूर्ण रह जाता है। प्रेमा के सौन्दर्य से रमेश को ऐसा लगता था मानों चाँदनी साकार होकर उसकी बाँहों में आ गयी हो। प्रेमा को अपने बाहु-पार्श्व में बाँधकर कभी-कभी तो उसे ऐसा लगता मानों वह कोई स्वर्णिम संसार में खो गया हो। उसे समय से स्कूल पहुँचने तथा उसकी सुन्दरता की वृद्धि के लिए उसने अपनी घड़ी और अँगूठी भी निकाल कर प्रेमा के हाथ में बाँध दी थी।

एक दिन प्रेमा स्कूल से लौटकर आई ही थी कि रमेश भी बाहर से आ गया। उसने ठीक से कपड़े भी नहीं उतारे थे। विकल और सुषमा तथा रम्मू भी कहीं बाहर गये हुए थे। रमेश उसे देखते ही मानों दिन-भर की अपनी थकान भूल गया और मजाक करते हुए बोला—

"ओह, अब तो तुम्हारे ठाठ ही ठाठ हैं। अब तो मेरी ओर मुड़कर भी नहीं देखोगी।"

प्रेमा प्रसन्नता और लज्जा से डूब गयी किन्तु वह भी मजाक करते हुए बोली—"और देखूँ भी तो क्यों? कोई आप ही बड़े खूबसूरत हैं।"

"हाँ भई, मैं कहाँ हूँ। चाँदनी के सामने तारों की क्या पूछ। कोई और खूबसूरत देख लो।"

"सो तो मैंने सोच रखा है, जल्दी ही शादी करने वाली हूँ। वह चाँद से कम नहीं होगा। चाँदनी के लिए तो चाँद चाहिए, तारों से क्या काम?"

"अच्छा तो मैं भी तैयारी आरम्भ कर दूँ। लेकिन अभी तो एक चुम्मी दे ही दो।"

"क्यों दे दूँ ? बड़े खूबसूरत हैं न आप।"

"सो तो बिलकुल नहीं, लेकिन क्या करे दिल तो मचला ही जाता है।" रमेश प्रेमा के निकट गया है और उसकी बाँहें पकड़ कर उसने अपने अंक में भर लिया। उसे ऐसा लग रहा था मानो उसकी गोद में कोई लता सजीव होकर आ गयी हो। वह बड़ी देर तक प्रेमा के अधर चूमता रहा और एक भावुकता में डूब गया।

"प्रेमा तुम कितनी सुन्दर लगती हो, मैं सोच भी नहीं पाता। मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं किसी स्वप्न की रंगीनियों में डूब गया हूँ। जाने क्यों मेरा मन प्रति क्षण प्रेम के भयावह विरह से डरता ही रहता है।" और यह कह कर वह एक गीत गाने लगा—

प्यार करता हूँ मगर डरता यही हूँ,
एक चुम्बन हो न जाये कल्पना सारी उमर की।

(१)

यह मधुर चितवन, तुम्हारा उर-समर्पण,
ये तुम्हारी श्वाँस की मधुमय फुहारें;
यह मिलन की रात, यह उनयी मधुरिमा,
प्यार की बातें, सुखद मनहर बहारें।
एक दिन तुमको न पाकर हो न जायें वेदना सारी उमर की।

(२)

डबती पलकें तुम्हारे रूप में हैं,
प्यार में अँगड़ाइयाँ लेती जवानी;
पर विरह संभावना उठती हृदय में,
अश्रु-पावस छा रही दृग के निलय में।
आज की अभिसार वेला हो न जाये यातना सारी उमर की।

(३)

मदभरी मुस्कान ये, आँखें नशीली,
य गुलाबी होंठ, ये अलकें घटा सी;

ये उभरते कुच, लता सी कटि तुम्हारी,
और आलिंगन, मधुर चुम्बन तुम्हारे।
एक दिन मुझसे बिछुड़ कर हो न जायें कामना सारी उमर की।

(४)

काल के कारण न हो ऐसा कहीं पर,
प्राण में पतझर, हृदय में वेदनायें;
नयन में सावन, निराशा के सपन ही
सिसकियाँ, आहें विरह ले आ न जाये।
और जीवन हो न जायें चिर-व्यथा की भावना सारी उमर की।

"प्रेमा, मुझे ऐसा लगता है जैसे तुम मेरी वेदना की अँधेरी रात में शरद पूर्णिमा की चन्द्रिका बनकर आ गई हो। मेरे पतझर से जीवन में तुम बहारें बनकर छा गयी हो, लेकिन फिर भी मुझे डर लगता है कि कहीं मैं कोई सपना तो नहीं देख रहा। कहीं ऐसा न हो कि मेरा यह सुहाना सपना विरह का संगीत बन जाये और मैं भी कीट्स की "हृदयहीन स्त्री" वाली कविता ही पढ़ता रह जाऊँ। प्रेमा, तुम्हारे प्यार में अपने जीवन के सारे सुख-दुःख भूल जाता हूँ। तुम्हारे सौन्दर्य में तो एक बार हिमालय का मन भी द्रवित हो उठे। प्रेमा मैं अधिक धनवान तो नहीं, किन्तु हृदयवान अवश्य हूँ।" रमेश कहता रहा।

"तुम ऐसा सब क्या सोचा करते हो, मैं जब तुम्हारी ये निराशा भरी बातें सुनती हूँ, तो मेरा मन रो उठता है। मैं बहुत दुखी हो जाती हूँ। आप ऐसी बातें न कहा करें।" प्रेमा ने दुखी होकर कहा। रमेश ने प्रेमा को दुखी देखकर तत्काल ही उसे इन बातों की ओर से हटा लिया।

"वाह, कितनी अच्छी लग रही हो? कितना अच्छा ओवर कोट है?"

"लेकिन तुम अपने लिए तो कुछ नहीं लाये।"

"मुझे आवश्यकता भी क्या? तुम्हें ही तो सुन्दर देखना चाहता हूँ।"

"मैं भी तो तुम्हें सुन्दर देखना चाहती हूँ। मैं अपने वेतन से देखो तुम्हारे लिए क्या-क्या लाती हूँ।" उसने मजाक करते हुए कहा, "अच्छा

थाड़ा तुम तो पहनकर इसे दिखाओ और उसने अपना ब्लाउज और ओवर कोट, उसकी कमीज तथा स्वीटर निकाल कर पहना दिया तथा अपनी धोती उतार कर उसकी एक पैंट और कमीज स्वयं पहन ली। वह उसके मुख की ओर देखती रही तथा खूब उल्लास भरती रही। रमेश भी कुछ नहीं बोल रहा था। वह प्रेमा को इस प्रकार से प्रसन्न होते देखकर स्वयं भी बहुत प्रसन्न हो रहा था। पुरुष चाहता भी क्या है ? प्रेमा मजाक ही मजाक में एक नाटक सा कर रही थी—

"अच्छा बीबीजी क्या पकाकर रखा है ?" प्रेमा ने मजाक ही मजाक में पूछा।

रमेश ने प्रेमा को अपनी ओर खींच लिया और अंक में भरते हुए बोला—"चुम्बन के फुलके।" और यह कहकर उसे चूम लिया। उनका यह प्रेमालाप तथा हँसी-मजाक हो ही रहा था कि विकल और सुषमा ने किवाड़ खटखटाये। रमेश एकदम से घबरा सा गया क्योंकि उसे प्रेमा ने जनाने कपड़े पहना दिये थे, वह झट से कमरे के अन्दर चला गया। प्रेमा विकल की बोली तत्काल ही पहचान गयी और दरवाजे खोल दिये।

'ओहो, आप तो बाबू जी बन गयी हैं।' विकल के यह कहते ही सुषमा भी हँस पड़ी रम्मू भी हँसता रहा। "और कहिये आवाज तो रमेश की भी आ रही थी, वह कहाँ गये ?" विकल ने पूछा। "वह तो यहीं थे।" सुषमा ने ऐसे कहा मानों वह भी नहीं जानती कि रमेश कहाँ है। कमरे के किवाड़ बन्द देखकर विकल समझ गया कि वह अन्दर है। विकल दरवाजे खटखटाता रहा। रमेश झटपट मरदाने कपड़े पहनने में लग गया कि प्रेमा ने गाना प्रारम्भ कर दिया—

बाबू के बन गये बीबी जी,
जमाना पलट गया। जमाना......।
पैंट कमीजें बीबी पहनें
और कटायें बाल;
बाबूजी अब ब्लाउज पहनें
सोलह करें सिंगार। जमाना...।

शर्म करें, अब बाबू जी
और बीबी करें न शर्म;
लाख मनायें बाबू जी,
बीबी के तेवर गर्म। जमाना...।
आफिस में बीबीजी जायें
बाबू जी अब घर में;
इस फैशन की बीमारी,
भी फैली नगर-नगर में।
जमाना पलट गया। जमाना...।

उसके गाने के बाद विकल, सुषमा और रम्मू आदि सबने प्रसन्नता से तालियाँ पीटीं। "ओह, तुम इतना अच्छा गाना गाती हो।" विकल ने कहा। रमेश भी कपड़े बदलकर बाहर आ गया, उसे भी प्रेमा की ध्वनि बड़ी पसंद आई। अभी तक उसका गाना किसी ने भी न सुना था, अतः उसकी सुरीली ध्वनि को सुनकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। विकल और सुषमा ने कभी २ प्रेमा को गुनगुनाते हुए अवश्य सुना था, किन्तु वे उससे अनावश्यक आग्रह न कर सके।

× × ×

प्रेमा का मधुर प्यार तथा प्रसन्न चित्त रहने वाला स्वभाव रमेश के जीवन में असीम आनन्द ले आया था, किन्तु आर्थिक संघर्ष उसके भौतिक जीवन के आनन्द को छीन रहा था। अभी तक वह पैसे का महत्व उतना अधिक नहीं मानता था, किन्तु अब वह अनुभव करने लगा था कि प्रेमा को सुखी रखने के लिए उसे कुछ निश्चित आमदनी अवश्य करनी है। इसके लिए उसे पुनः दर-दर भटकना पड़ा। इस बीच में वह जाने किस-किस प्रकार के लोगों से मिला। उसने काम की खोज में दिल्ली का कोना-कोना छान डाला। सब्जीमंडी, करौल बाग, पटेल नगर, नयी दिल्ली, शाहदरा, चाँदनी चौक, दरियागंज सब जगह की खाक छानी।

इस सम्बन्ध में सबसे पहले एक सेठ जी से मिला जो कई होटलों

के मालिक थे। उनके सम्बन्ध में उसने लोगों के मुख से बड़ी प्रशंसा सुन रखी थी कि वह प्रत्येक व्यक्ति से बड़े स्नेह तथा शिष्ट ढंग से मिलते हैं। उसने भी आशा बाँध रखी थी कि शायद उनसे मिलने से उसका कार्य्य बन जाये। इसीलिए एक दिन वह प्रातःकाल १२ बजे सेठ जी के होटल में गया। सेठ जी का भीमकाय शरीर तथा पेट से एक फीट आगे निकला हुआ तोंद, सिर के बाल तो शायद उनकी विशालता देखकर पहले ही छिप गये थे। मलमल का एक कुरता तथा चून सी सफेद धोती पहने और हाथ में सुनहरी जंजीर की घड़ी बाँधे मूछों पर ताव फेरते हुए मिले। वह उनसे मिलने की प्रतीक्षा में लगभग घंटे तक बाहर खड़ा रहा क्योंकि वह किन्हीं सज्जन से बातचीत करने में लगे थे। रमेश ने उन्हें देखते ही नमस्ते किया। 'नमस्ते जी नमस्ते' कहकर सेठ जी ने बड़े प्रभावोत्पादक ढँग से कहा "मेरे योग्य सेवा।"

"सेवक तो आपका मैं हूँ, और मैं आपके पास कुछ सेवा माँगने के लिए ही आया हूँ। आपके पास कोई क्लर्क आदि की आवश्यकता तो नहीं है। इसके अलावा मैं अन्य कार्य भी कर सकता हूँ, मेरी हिन्दी और इँगलिश में अच्छी योग्यता है।"

"आप क्या पढ़े हैं?"

"मैं बी० ए० हूँ।"

"अच्छा, हाँ मैं अभी आता हूँ"—कहकर वह डाइनिंग रूम की ओर चल दिये। रमेश आफिस में ही बैठा उनकी प्रतीक्षा करता रहा। वह सोचता रहा—सेठ जी का स्वभाव तो अच्छा है, शायद उसका कार्य बन जाये।

साढ़े बारह बजे सेठ जी डाइनिंग रूम से निकल कर मिस निर्मला के कमरे में चले गये। यह बाहर से आई थीं तथा होटल में चार-पाँच दिन के लिए ठहरी थीं। उनका सौन्दर्य से खिला हुआ यौवन, आकर्षक वेष-भूषा सभी कुछ सेठ जी के लिए आकर्षण थे। सेठ जी की उम्र तो लगभग पचास वर्ष की थी लेकिन वह लोगों के मन पर अपने सौन्दर्य के जादू

का डोरा डालने के लिए जवान बनने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। रात्रि में तो वह पेट पर पेटी भी बाँधते थे ताकि पेट कुछ हल्का हो जाये। उनके भरे-भरे गाल तथा चिन्ता रहित मुख और खिजाब से किये हुए काले बाल सब कुछ उनको आकर्षक तथा मोहक बनाने में सहयोग दे रहे थे। काश, कोई मन्त्र उन्हें कायाकल्प करने का मिल जाता तो शायद वह उसके लिए अपनी एक होटल भी बेच देते। पैसे की उनके पास कमी थी ही नहीं। उनके पास उन लड़कियों की भी कमी नहीं थी, जिनका किसी मनचले ग्राहक से सम्बन्ध करवाने में एक बार में ही वह पचास रुपया ले लेते थे। जाने कितनी ही धन की भूखी औरतें उनके होटल में आकर उनसे अपनी इज्जत का मोल कर जाती थीं। उनके होटल के कारनामे सब गोपनीय थे। और इन्हीं सब कारणों से तो उनके होटल चल रहे थे।

काफी देर हो गयी थी और रमेश सेठ जी से आशावादी उत्तर की प्रतीक्षा में बैठा था। सेठ जी मूँछों को सँवारते हुए अपने आफिस के कमरे में आ गये। पहले की अपेक्षा उनके मुख पर उल्लास अधिक था, शायद मिस निर्मला से कोई उनकी इच्छा पूर्ति होने की आशा हो गयी थी। आते ही उन्होंने रमेश से कहा—"अच्छा, तो आप नौकरी के लिए आये हैं। माफ करना मुझे कुछ देर लग गयी।"

"कोई बात नहीं।" रमेश ने कहा।

"आपका शुभ नाम ?"

"रमेश।"

"आप मैरिड हैं या अनमैरिड ?"

"रमेश ने तत्काल उत्तर दिया—'विवाहित' क्योंकि कई बार पहले शादी शुदा न होने के कारण उसे नौकरी और मकान न मिल सके थे। अब तो उसे झूँठ बोलने की भी बात न थी। इस कारण वह अपनी इस योग्यता के बढ़ जाने से और अधिक आशावादी हो गया था। सेठ जी के पास किसी विवाहित आदमी की आवश्यकता न थी। वह तो चाहते थे कि कोई जवान छोकरा जो किसी युवती से कम सुन्दर न हो

और बेकारी से घिरा हुआ हो कम पैसे पर मिल जाये। रमेश कुछ अधिक सुन्दर न था, किन्तु अधिक बुरा भी न था। सेठ जी ने पुनः एक प्रश्न किया—"आपका स्वास्थ्य भी तो नौकरी के योग्य नहीं है"—क्योंकि सेठ जी की दृष्टि में वह अधिक दुबला-पतला था यद्यपि साधारण तौर पर वह स्वास्थ्यहीन न था। उन्होंने अपना सुझाव देते हुए कहा—"पहले आप अपना स्वास्थ्य बनाइए, फिर मुझसे मिलियेगा।"

"सेठ जी, स्वास्थ्य तो भूखें पेट नहीं बनता है, शायद आपके यहाँ कार्य करने के उपरान्त बन जाये। मैं इसके पहले एक अनाथालय का मैनेजर था और उसके पूर्व भी मैंने कई स्थानों पर कार्य किया। आपके पास यदि कोई मेरी योग्यतानुसार कार्य हो तो रख लीजिये, यदि कोई कमी होगी तो उसे भी दूर कर लूँगा।"—रमेश ने कहा। उसे यह पता न लग सका कि सेठ जी किस प्रकार का व्यक्ति चाहते हैं। क्योंकि उनकी बात से यह भी प्रकट होता था कि जैसे किसी व्यक्ति की वह आवश्यकता भी अनुभव करते हैं।

"अच्छा मुझे तो देर हो रही है, आप फिर कभी मिलियेगा"—कह कर वह चल दिये। रमेश भी 'नमस्ते' कहकर चल पड़ा। दिल्ली में कार्य खोजने का यह भी उसका एक अनुभव था।

दिन के तीन बज चुके थे। वह वहाँ से निकलने के बाद चाँदनी चौक की कई अन्य दूकानों पर गया, किन्तु वहाँ भी उसे निराशावादी उत्तर के अतिरिक्त कुछ न मिल सका। किन्तु वह निराश नहीं हुआ नौकरी खोजता ही रहा। वह सोचता था—कितना विचित्र संसार है। कहीं पर विवाहित योग्यता है कहीं पर अविवाहित, जबकि इनका मनुष्य के वास्तविक कार्य तथा चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं। कोई विवाहित होकर भी अपने चरित्र को ठीक प्रकार से सँभाल नहीं पाता है, कोई अविवाहित होकर भी अपने चरित्र को अच्छा बना सकता है।

नौकरी की तलाश में जब वह चाँदनी चौक में भटक रहा था, उसने देखा, एक दूकान पर एक साइनबोर्ड में यह लिखा हुआ था—"आवश्य-

कता है युवकों तथा युवतियों की एक फिल्म के लिए"—इस बोर्ड को पढ़कर जाने ही कितने नवयुवक और नवयुवतियाँ वहाँ पर नित्य जाते क्योंकि फिल्म अभिनेता बनने के स्वप्न भी आज सहस्रों और लाखों युवक तथा युवतियां देखती हैं। यही कारण है कि फिल्म उद्योग एक वेश्या-वृत्ति का केन्द्र-सा हो गया है।

वह कलाकार बनने का इच्छुक तो नहीं था, किन्तु बेकारी की अवस्था में तथा इन चार सौ बीस कम्पनियों के सम्बन्ध में भी थोड़ा अनुभव प्राप्त करने की इच्छा से वह उस बोर्ड को देखकर ऊपर गया, जहाँ पर इस कंपनी के संचालक लोग अपना धंधा करते थे। वह सहमते-सहमते कमरे के अन्दर गया और एक सज्जन, जो वहाँ पर बैठे हुए थे, जो धूप का चश्मा लगाये, क्लीन सेव, फर्स्ट क्लास की टाई बाँधे तथा बढ़िया नीले रँग का सूट पहने हुए थे; उनको देखकर कोई यही सोच सकता था कि वह कोई भारत के बहुत बड़े कलाकार होंगे, उसने उनसे पूछा—"क्या डाइरेक्टर साहब हैं ?"

"वह अन्दर हैं, बैठिये"—कहकर उन्होंने अपनी शिष्टता प्रदर्शित की। इसे उन्होंने स्टूडियो की भाँति बना रखा था ताकि आने वाले लोग इस लुभावने तथा इंगलिश प्रणाली के स्टूडियो जैसे वातावरण को देख-कर प्रभावित हो सकें। कमरे में एक विभाजक लगाकर उन्होंने उसके दो कमरे बना लिए थे। पहला तो साधारण आगन्तुकों के बैठने के लिए था तथा दूसरा डाइरेक्टर महोदय का, जिसमें वह कलाकारों की परीक्षा लेते थे। पहले कमरे में दीवार से सटे हुए दो तीन सोफासेट तथा आठ नौ बेंत की कुर्सियाँ पड़ी थीं जिनपर कपड़े की गद्दियाँ रखी हुई थीं। दरवाजे और लकड़ी के विभाजक के बीच में थोड़ी सी दराज रह जाती थी। जिससे अन्दर की ध्वनि बाहर सुनाई देती थी। डाइरेक्टर महोदय किसी युवती की परीक्षा ले रहे थे। थोड़ी देर तक वह अपनी सुरीली ध्वनि से कोई गीत पढ़ती रही और उसके उपरान्त उन्होंने उसे बिठाया, बोले—"अच्छा तो तुम्हारी ध्वनि बहुत अच्छी है। हम तुमको अपनी कम्पनी में

ले लेंगे, फिर मिलना।" दरवाजा खुलने पर रमेश ने उस लड़की की एक झलक देखी जो अपनी ध्वनि तथा पढ़ने के ढंग से कई गुना अधिक सुन्दर थी। जवानी तथा फैशन उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा रहे थे। रमेश वास्तव में इस समय डाइरेक्टर महोदय के लिए एक विघ्न बन गया था। वह यह सोचकर कोई अच्छी मुर्गी फँसी है—आकर बोले—"अच्छा तो आप किसलिए पधारे हैं ?"

"मैं, आपके पास, आपका बोर्ड देखकर आया हूं। मैं सोचता हूं कि कलाकारों के अतिरिक्त आपके पास शायद किसी क्लर्क आदि की भी कोई आवश्यकता हो।" रमेश ने कहा—

"जी ऐसी तो कोई नहीं है। लेकिन हम आपको एक कलाकर के रूप में अपनी फिल्म कम्पनी में भर्ती कर सकते हैं, आप कलाकार जैसे लगते भी हैं। कुछ ही दिनों में आप प्रसिद्ध अभिनेता बन जायंगे।" डाइरेक्टर महोदय ने कहा।

रमेश उनके मुख की ओर देखता रहा। क्योंकि उसने तो अपने सम्बन्ध में कभी ऐसा सोचा भी न था। डाइरेक्टर साहब की उम्र ३५ वर्ष की होगी। सिल्क का कुर्त्ता और बढ़िया प्रकार की जवाहर कट तथा चूड़ीदार पैजामा, पहने हुए थे। पता नहीं चलता था कि वह डाइरेक्टर है या कोई नेता या इस वेषभूषा की आड़ में कोई बढ़िया शिकार के शिकारी हैं। रमेश मन ही मन प्रसन्न हो गया कि उसका भाग्य-परिवर्तन हो गया। वह सोच रहा था कि बिना कलाकार बने ही यदि वह कलाकर बन जाये तो कितना अच्छा हो। कलाकारों की तो सहस्रों रुपये की आमदनी होती है। लोग उनके नाम पर तो जान देने तक को तैयार रहते हैं। कहीं नरगिस, मधु-बाला, दिलीप या अशोक का आगमन होता है तो भगवान के दर्शन की भाँति भीड़ लगाकर उन्हें रास्ता चलना कठिन कर देते हैं।

उन्होंने रमेश से कहा—"मेरे यहाँ प्रत्येक कलाकार को कम-से-कम पाँच सौ रुपये के शेयर खरीदने की आवश्यकता होती है। आप यह शेयर खरीद लीजिये। मैं जल्दी ही एक चलचित्र 'पहली रात' तैयार करने जा

रहा हूं और आपको उसमें ही एक अच्छा सा रोल दे दूंगा। फिर क्या आप चमक गये और अगली फिल्म में नायक की प्रमुख भूमिका।"

"लेकिन मैं शेयर तो अधिक मूल्य देकर खरीद नहीं सकता—" रमेश ने कहा।

"अच्छा, तो हम आपके लिए रियायत कर देंगे। आप चार सौ के शेयर खरीद लीजिये और अपना पता लिखवा दीजिये। हम आपको कान्टैक्ट कर लेंगे—" उन्होंने कहा।

रमेश नमस्ते करके चल पड़ा। उसकी उत्पन्न आशाएँ पुनः निराशा में परिणित हो गयीं। उस समय तो उसे अपने पर बड़ा पश्चात्ताप होता रहा कि काश, यदि उसके पास चार सौ रुपये होते तो कितना अच्छा होता। कलाकार बनने का कितना स्वर्णिम अवसर था। बाद में उसने एक समाचार पत्र में पढ़ा कि वह कम्पनी लगभग ५ हजार रुपये इसी प्रकार से एकत्र करके गायब हो गयी। डाइरेक्टर महोदय का कुछ पता नहीं। यह भी एक लिमिटेड कंपनी थी। वह चाहे लिमिटेड हो या न हो लेकिन उन्होंने पर्चे इस प्रकार के अवश्य छपवा रखे थे। वहाँ से लड़कियाँ पटाकर बम्बई भेजी जातीं थीं, शायद वे बेच दी जाती थीं या क्या की जातीं थीं, ईश्वर जाने लेकिन एक बार भी उनकी कम्पनी के चंगुल में आई हुई लड़की अपने परिवार वालों को दुबारा न मिल सकी।

× × ×

प्रेमा एक तो वैसे ही सुन्दर थी, दूसरे सुन्दर वस्त्रों ने उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा दिये थे। उसको देखते ही किसी की प्रणय-कल्पनायें तथा काम-वासनायें जाग उठती थीं। वह भी दिल्ली के सड़क-सौन्दर्य का अंग बन गयी थी। करौल बाग के स्कूल से पढ़ा कर जब वह लौटती थी तो उसके सौन्दर्य पर एक घड़ी के दुकानदार की आँखें गड़ी हुई थीं। वह उसके स्कूल जाने तथा लौटने के समय उसके सौन्दर्य-दर्शन तथा किसी प्रकार पटाने के उद्देश्य से अपनी दूकान पर अवश्य होते थे। प्रेमा के पास रमेश की मरदानी ही घड़ी थी। उस दुकानदार ने अपनी दुकान को

बहुत सजा रखा था ताकि लोग उसकी दुकान की ओर विशेष रूप से आकर्षित हों। इससे उनके एक पंथ दो काज सिद्ध होते थे। एक दिन प्रेमा उनकी दुकान के पास से निकली और कुछ ठहर कर उनकी दुकान की विभिन्न प्रकार की घड़ियों को देखने लगी। उन्हें भी उससे कुछ कहने का अवसर मिल गया। कई दिनों से वह बेचारे इस प्रतीक्षा में थे। अन्य नवयुवकों की भाँति अशिष्टता से छेड़ने का वह दुस्साहस भी नहीं कर सकते थे क्योंकि, आखिरकार वह दुकानदार ही थे। अवसर उपयुक्त देखकर उन्होंने कहा—"बहन जी, आपकी घड़ी का डायल गंदा हो गया है, आप उसे बदलवा लें, पैसे आदि की कोई बात नहीं। हम बाजार से सस्ते दामों पर आपको बदल देंगे। इस बात का मेरा दावा है कि सारी दिल्ली में आपको इससे सस्ता नहीं मिलेगा। हम अपनी दुकान का प्रचार करने के लिए असली कीमत से पच्चीस प्रतिशत कमीशन देकर लगा देंगे। एक बार आपका काम अच्छा बनेगा और आपको पसंद आयेगा तो दुबारा आप हमारी दुकान पर स्वयं ही आयेंगी।"

"अच्छा सोचूंगी।" कहकर प्रेमा चल दी। प्रेमा सोचती रही कि आदमी तो भला है और बातचीत करने का ढंग भी बड़ा शिष्ट है।

इसके दो-तीन दिन बाद प्रेमा उसी स्थान से निकली। घड़ी साज महोदय ने बड़ी ही बेतकल्लुफी से—'बहन जी नमस्ते' कहा।

"नमस्ते।"

"आपने फिर बताया नहीं। बहन जी मेरा कहना मानिये, आप इसे अवश्य बदलवा डालें।"

इस बार वह रमेश से भी इस सम्बन्ध में पूछ चुकी थी। उसने उधार रखना ठीक न समझकर उसे दो रुपये डायल की बदलवाई दे दिये। घड़ी साज के पुनः आग्रह पर उसने घड़ी का डायल बदलने के लिए घड़ी दे दी। डायल बदल जाने पर जब वह पैसे देने लगी तो उन्होंने पैसे लेने में तकल्लुफी दिखाई। "जी, पैसों की क्या बात है, फिर आ जायेंगे। आप लोगों को तो पहली को ही पैसे खरचने में आसानी रहती है। हम जानते

हैं कि नौकरी वालों की क्या दशा रहती है। आप फिर दे दीजियेगा।"

जब प्रेमा के दो-तीन बार पैसे देने पर भी वह यही कहते गये तो उसने सोचा कि अच्छा रहेगा कि ये पैसे उसकी जेब में पड़े रहेंगे, अभी तो पहली तारीख के आठ दिन हैं। किसी समय आवश्यकता पड़ ही जाती है। उधर रमेश के पास भी इस समय पैसे अधिक नहीं हैं। यही सोचकर उसने फिर दो रुपये का नोट अपनी जेब में ही डाल लिया।

"बहन जी एक मेरी आपसे और अर्ज है। मेरा बच्चा आपके स्कूल में ही पढ़ता है। वह आपकी बड़ी प्रशंसा करता रहता है। यदि आपके पास समय हो तो इसे एक घंटा पढ़ा दिया करें। मैंने साठ-साठ रुपये देकर मास्टर रखे, किन्तु बच्चा आपसे ही पढ़ने का इच्छुक है। वह किसी से न पढ़ सका—" घड़ीसाज महोदय बोले।

"लेकिन मैं तो प्रायवेट ट्यूशन करती ही नहीं। मेरे पास एक मास्टर जी हैं, जो बहुत योग्य तथा बच्चों को बड़े अच्छे ढँग से पढ़ा सकते हैं। अगर आप कहें तो उन्हें भेज दूँ।"

"लेकिन वह अन्य किसी से पढ़ता ही नहीं। मैं बड़े आश्चर्य में हूँ कि वह आपसे पढ़ने को इतना क्यों उत्सुक है।"

"क्या नाम है आपके बच्चे का?"

"श्यामू।"

"अच्छा श्यामू आपका ही लड़का है?"

"जी हाँ।"

"वह तो बड़ा प्यारा है।"

"हँ-हँ—बस आपकी कृपा है।"

प्रेमा तैयार हो गयी क्योंकि उसने सोचा—रमेश भी इस समय बेकार है, स्कूल से तो उसे केवल अस्सी रुपये ही मिलते हैं और १५ रुपये तो किराये के प्रतिमास निकल जाते हैं फिर दो व्यक्तियों का खर्च इस प्रकार से कैसे चलेगा। अगर यह पचास-साठ प्रतिमास प्राप्त हो जाते हैं तो क्या बुरा।

"अच्छा बहन जी, फिर आप कब से आयेंगी ?" घड़ी साज महोदय ने पूछा ।

"कल से आ जाऊंगी ।"

"अच्छा नमस्ते ।"

"नमस्ते ।"

घड़ी साज महोदय का बातचीत करने का ढँग आदि ने प्रेमा को बहुत प्रभावित कर दिया था । उनकी उम्र लगभग पचास वर्ष की थी, किन्तु वह अपने फैसन और क्लीन सेव से तीस-पैंतीस वर्ष के नौजवान ही मालूम पड़ते थे । आँखों में हल्का-हल्का सुरमा, मुख पर पाउडर और सुडौल तथा गठा हुआ शरीर आदि प्रेमा के हृदय पर साधारण आकर्षण की छाप लगा गये । फिर उनकी आकर्षक बात-चीत उसके हृदय को और भी अधिक प्रभावित कर गयी । वह नित्य उनके यहां पढ़ाने जाने लगी । नित्य प्रति उसके लिए खाने को सुन्दर तथा स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थ मिलते। प्रेमा इन्हें खाने में कुछ झिझकती सी थी, किन्तु उसकी झिझक मिटाने के लिए उन्होंने पहले ही महीने भर की फीस उसे दे दी । अब प्रेमा को विश्वास होगया था कि वे लोग अध्यापक या अध्यापिका को प्रसन्न तथा आदर करने के लिए ऐसा करते हैं, अतः अब वह निःसंकोच हृदय से नास्ते आदि की सामग्री ग्रहण कर लेती । घड़ीसाज महोदय की पत्नी उनके काले कारनामों से छलनी हो गयी थी और वह उनके साथ आने वाली लड़की को संदेहवृत्ति से देखने लगती थी, किन्तु प्रेमा की प्रशंसा उन्होंने बहुत अधिक कर रखी थी ताकि वह उन पर इस सम्बन्ध में कभी शक न कर सके । इधर उनके बच्चे ने भी घर पर प्रेमा की बड़ी प्रशंसा की थी । वह प्रेमा से बहुत घुल-मिल गया था ।

प्रेमा के हृदय में भी घड़ी साज महोदय के लिए स्नेह बढ़ता गया । वह तो किसी उपयुक्त अवसर की खोज में ही थे । शिकार को इस ढँग से फाँसना चाहते थे कि किसी प्रकार वह उनके चंगुल से फिर न निकल सके । अतः बड़ी चतुराई से काम कर रहे थे ।

एक दिन जब प्रेमा पढ़ाकर चली तो घड़ी साज महोदय भी उसके साथ-साथ कुछ दूर तक भेजने के बहाने से चले और एक स्थान पर आकर बोले—"मेरे पास कल के लिए सिनेमा के दो पास हैं, यदि आपके पास समय हो तो चलिये।"

प्रेमा ने काफी दिनों से कोई चलचित्र न देखा था। इधर रमेश भी जीवन की आर्थिक परिस्थितियों से घिरा हुआ था। वह प्रेमा से प्रेम करते हुए भी उलझा रहता था। और कुछ दिनों से उसका स्वास्थ्य अस्वस्थ रहने के कारण वह उसकी वासनात्मक इच्छा की पूर्त्ति भी नहीं कर पाता था। प्रेमा का यौवन छलक रहा था। जवान स्त्री क्या चाहती है, कहने की आवश्यकता नहीं। स्त्री जवानी में केवल मनुष्य का प्रेम ही नहीं कुछ और भी चाहती हैं। घड़ी साज का आकर्षण उसे खींचता गया। उसका हृष्ट-पुष्ट स्वास्थ्य और साधारण सौन्दर्य तथा आर्थिक सहयोग सब उसके स्नेह को घड़ी साज के प्रति उभारने में समर्थ हो गये। दूसरे दिन वह घड़ी साज महोदय के साथ-साथ सिनेमा देखने चली गयी। वह अपने साथ एक जनानी घड़ी भी ले गये थे। रास्ते में एक स्थान पर एकान्त देखकर उन्होंने जनानी घड़ी प्रेमा को पहना दी—'अब आप कितनी अच्छी लगती हैं' कहते हुए उन्होंने उसका हाथ, एक बार फिर पकड़ कर घड़ी को देखने के बहाने, दबा दिया। उनके हाथ दबाने से मानों प्रेमा का प्रेम छलक उठा। उसकी काम-वासनायें अँगड़ा उठीं। उसने हाथ दबाते हुए ही समझ लिया कि उसका भी उससे प्रेम है।

"अगर आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ, मेरा मन चाहता है कि आपको जी भर कर देखता रहूँ। कितनी अच्छी लगती हैं आप, कह नहीं सकता।" घड़ी साज के इन वाक्यों से प्रेमा का हृदय प्रेम से छलक उठा। रमेश ने उसके रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा जाने कितनी की थी। आज उसके सौन्दर्य की शमाँ के दूसरे परवाने भी हो गये थे। स्त्री के हृदय में एक यह भी भावना रहती है कि कोई उसके सौन्दर्य की अधिक-से-अधिक प्रशंसा करें, चाहे उससे प्रेम करता हो या नहीं और यदि प्रशंसक की ओर

उसका मन स्वयं भी आकृष्ट हो जाये तो पूछना ही क्या, आग को ईंधन मिल गया। प्रेमा घड़ी साज महोदय के इन वाक्यों से मौन थी और उसके मौन से ही उसे ऐसा बोध हो गया कि वह उससे प्रेम करती है। अब उसे अपने हृदय की बात कहने का उपयुक्त अवसर प्राप्त हो गया।

"मैं आपको कितना प्यार करता हूँ कह नहीं सकता, लेकिन क्या तुम्हारे हृदय में भी मेरे लिए प्यार है ?" घड़ी साज महोदय के इन वाक्यों के उपरान्त भी प्रेमा मौन रही मानों उसका मौन इस बात का साक्षी बन रहा था कि जैसा वह चाहता है वैसा ही उधर भी है। उसने समय देख-कर प्रेमा का एक चुम्बन लिया। "प्रेमा, मैं तुमसे कितना प्यार करता हूँ कैसे बताऊँ। तुम्हें नौकरी करते देखकर मेरा मन बड़ा दुखी है लेकिन क्या करूँ, इतनी जल्दी कुछ भी नहीं कर सकता। तुम्हीं इस समय मुझे दुनिया में सबसे प्रिय हो। जी चाहता है कि संसार की हर वस्तु लाकर तुम्हारे हाथों में रख दूँ।"

प्रेमा सोच रही थी कि इसका प्रेम रमेश से भी अधिक है। उनके पास तो केवल वैचारिक प्रेम ही है, किन्तु इसके पास सब कुछ है। अगर इसे इतना प्यार न होता तो यह सब कैसे करता। इसके प्यार से शायद मुझे आर्थिक कठिनाई न रहे।

"प्रेमा, मेरा हृदय न तोड़ना, नहीं तो तुम किसी समाचार-पत्र में ही पढ़ोगी कि मैं इस दुनिया से अलविदा कर गया। जब तक तुम मेरे पास रहती हो, मेरे मन का उपवन विहँस जाता है, लेकिन तुम्हारे जाते ही वह मुरझा जाता है"—घड़ी साज महोदय ने कहा।

"लेकिन, मैं अधिक देर तक तुम्हारे साथ नहीं रह सकती, आखिरकार शादीशुदा हूँ। क्या करूँ, मैं भी चाहती हूँ लेकिन बेबसी के अलावा और मेरे पास है ही क्या ?" प्रेमा ने उत्तर देते हुए अपने हृदय का स्पष्टी-करण किया। वह सोचती थी कि रमेश के व्यवहार तथा विचारों और भावुक हृदय से वह स्वयं उसकी ओर प्रेरित हुई थी, लेकिन यह तो तन-मन-धन तीनों से मेरा अपना बन रहा है।

"क्या तुम आज मेरे साथ होटल में ठहर सकोगी ?' देखो यह समय बार-बार नहीं मिलता।" उसने पूछा। प्रेमा भी तत्पर हो गयी क्योंकि उसको भी कामुकता सता रही थी। कई दिनों से वह अकेले ही लेटती थी। रमेश उसके साथ सो नहीं पाता था। डा० ने रमेश का स्वास्थ्य ठीक न देखकर उसके स्त्री के साथ सोने के लिए सख्त मना कर दिया था। चलचित्र देखने के उपरान्त प्रेमा ने अपने घर के पड़ौस वालों को फोन करके यह इत्तिला करवा दी कि आज उसके स्कूल में कोई विशेष आवश्यक कार्य होने के कारण रात भर वहीं रहना पड़ेगा। रमेश को सूचना मिल गयी, उसे कुछ अच्छा तो न लगा किन्तु वह सोचता था—नौकरी तो नौकरी ही है, अगर वह इन बातों के आधार पर नौकरी छोड़ देगी तो फिर इस समय दोनों के भूखों मरने के अतिरिक्त क्या हो सकेगा।

प्रेमा घड़ी साज महोदय के साथ चलचित्र देखती रही और उनका स्नेहालाप भी चलता रहा। उसके उपरान्त वह उनके साथ नई दिल्ली के एक होटल में चली गयी। रात भर उनके साथ रही। रात भर उनमें आपस में तमाम बातें हुई प्यार निभाने की योजनायें बनती रहीं।

"मैं भी तुम्हें प्यार करती हूँ लेकिन मैं शादी शुदा हूँ और आप भी शादी शुदा हैं। क्या आप अपनी पत्नी छोड़ नहीं सकते ?" प्रेमा ने पूछा।

"यही तो कठिनाई है, नहीं तो मैं तुमसे अभी शादी कर लेता।" घड़ी साज महोदय की इस बात से प्रेमा बहुत निराश सी हो गयी। वह सोचती थी—यदि वह उससे शादी कर लेता तो वह कितनी बड़ी जायदाद की मालिक बन जाती।

"देखो, प्रेम शादी शुदा होने के उपरान्त भी किसी अन्य स्त्री से निभाया जा सकता है। मैं तुम्हें ईश्वर की सौगन्ध देकर कहता हूँ कि तुमसे प्रेम किसी अवस्था में कम न होगा।"

प्रेमा को सांत्वना हो गयी कि वह उससे प्रेम तो सच्चा करता है लेकिन विवश है, तो क्या करे। वे दोनों रात भर प्रगाढ़ आलिंगन और चुम्बन में डूबे रहे और सब कुछ हुआ। प्रातः प्रेमा और घड़ी साज महोदय

अपने-अपने घर पहुँचे ।

दुर्भाग्य से रमेश उस समय घर पर न था । वह दस बजे पुनः अपने स्कूल के लिए चली गयी । आज जब वह घड़ी साज महोदय के घर पर गयी तो उन्होंने अपनी बीबी को एक बहाना बना कर दूसरे रिश्तेदार के यहाँ भेज दिया, जहाँ जाने के लिए वह स्वयं भी कई दिनों से उत्सुक थीं । उन्होंने भी उस बेचारी से कुछ-न-कुछ बहाना खोजकर बात बना ली थी । घर पर केवल घड़ी साज महोदय ही थे । प्रेमा और घड़ी साज महोदय के बीच सामाजिक शिष्टता और लज्जा की दीवार भी नहीं रह गयी थी । अकेले घर में उन्होंने प्रेमा का आते ही चुम्बन लिया । वह भी भावुक हृदय की थी । घड़ी साज महोदय के अधिक रोकने से वह पुनः रुक गयी क्योंकि उसकी स्वयं भी इच्छा थी । उसे रमेश का ध्यान तो था लेकिन अपनी भावुकतावश वह कुछ भी अधिक न सोच सकी । उसने सोचा कि सुषमा ने उससे मेरे न आने के विषय में भी कह दिया होगा और कल फोन से मैंने उन्हें सूचना कर ही दी थी । वह सोच लेंगे कि आज भी स्कूल में काम लग गया होगा तथा यदि कोई शंका करेंगे तो अपने प्यार से वह समझा देगी ।

रमेश को आज की रात भी अकेली काटनी पड़ी । वह रात भर जाने क्या-क्या सोचता रहा कि आखिरकार बात क्या है ? किन्तु उसे प्रेमा के प्रेम पर सन्देह नहीं था । जाने किस प्रकार उसने अपनी दो रातें काटीं । और जब तीसरे दिन प्रेमा मिली तो उसका मन प्रसन्नता से झूम उठा । उसने कहा—

"प्रेमा, तुम दो रातें नहीं मिलीं, मैं रातों-रात जागता रहा । मुझे कुछ भी अच्छा न लगता था । प्रति क्षण यही सोचता था कि काश, तुम होती तो कितना अच्छा होता । खैर, कोई बात नहीं ।"

"मैं भी रात भर नहीं सोयी । तुम्हारी याद में बेचैन रही । मेरा तो मन चाहता था कि नौकरी ही छोड़ दूँ ।"

"नहीं-नहीं ऐसा कभी मत करना । नौकरी छूट गयी तो फिर कहीं

के न रहेंगे।"

"यही तो सोचकर मैं रुक गयी। नहीं तो' ' '"

"प्रेमा तुम कितनी सुन्दर हो, पता नहीं, मेरे जीवन की एक मधुर कल्पना हो या सत्य। इन मदभरी आँखों में मैं अपने सुख और शान्ति का सुन्दर संसार देखता रहता हूँ। मुझे ऐसा लगता है जैसे युगों-युगों बाद मेरे अभिशाप वरदान बन गये हों।" तुम्हें देखते ही मेरे हृदय की सुसुप्त कविता जाग उठती है। मेरी मौन भावनाओं में एक तूफान सा आ जाता है—" रमेश प्रेमा को अपनी गोद में लेकर कहता रहा।

प्रेमा अब असमंजस की अवस्था में आ गई थी। एक ओर धन-वैभव और फैशन में आकर्षित करने वाला घड़ी साज महोदय का प्रेम तथा दूसरी ओर रमेश का प्रेम। किन्तु प्रेमा का आकर्षण घड़ी साज की ओर अधिक बढ़ गया था। वह कभी-कभी यह सोचकर बड़ी हैरान हो जाती कि दोनों का प्रेम किस प्रकार निभ सकेगा। रमेश को यदि पता लग गया तो वह उससे प्रेम तोड़ देगा तथा घड़ी साज महोदय उससे शादी कर नहीं सकते। वह सोच नहीं पाती कि क्या करे और क्या न करे।

स्त्री का हृदय समय की भाँति बदलने में देर नहीं लगती। प्रेमा को घड़ी साज महोदय का प्यार रमेश के प्यार से कई गुना अधिक मालूम पड़ने लगा। वह दो-एक बार रात्रि में नहीं आई किन्तु उसके यह बताने से कि स्कूल में वार्षिक जलसे की तैयारी करने के लिए कुछ आवश्यक कार्य थे और उसके स्कूल की प्रधानाध्यापिका महोदया ने उसे विशेष रूप से रोक लिया। रमेश को विश्वास हो गया कि वह किन्हीं कारणों से स्कूल में रात्रि में रह गई, किन्तु एक दिन घड़ी साज महोदय दिन में ही उसे कहीं बाहर घुमाने ले गये। वह उस दिन स्कूल भी न गई किसी कारणवश वह उस दिन स्कूल चला गया। उस स्कूल की प्रधानाध्यापिका महोदया ने पूछा—"क्यों भाई साहब, आज आपकी श्रीमती जी नहीं आईं, क्या तबियत खराब है ?"

"नहीं ऐसी तो कोई बात नहीं ? वह घर से तो आईं थीं, पता नहीं

अब तक क्यों नहीं पहुँच सकीं।" रमेश ने उत्तर दिया। वह भी बड़े असमंजस् में पड़ा रहा कि आखिरकार बात क्या है। बाहर जाने पर प्रेमा और घड़ी साज महोदय प्यार में ही खोये रहे। शाम की आखिरी गाड़ी से लौटने का इरादा था, किन्तु गाड़ी छूट जाने के कारण वे लोग रात्रि भर वहीं रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल की गाड़ी से दिल्ली आये। रमेश रात्रि में भी प्रेमा के न आने पर बड़ी चिन्ता में रहा। विकल और सुषमा ने भी पूछा—"क्या बात है, प्रेमा आज स्कूल पढ़ाने भी नहीं गई और रात में घर भी नहीं आई।" किन्तु रमेश तत्काल कोई उत्तर न दे सका। वह बड़ा चिन्तित था, पहले तो उसने सोचा कि वह पुलिस को सूचना दे दे; किन्तु फिर इसे मान-मर्यादा के दृष्टिकोण से अधिक उचित न समझ कर उसने ऐसा न किया। वह इधर-उधर उसकी खोज में भटकता रहा। संयोगवश उसने प्रेमा को एक व्यक्ति (घड़ी साज) के साथ में स्टेशन की ओर से आते देखा। वह ऐसा देखकर भी कुछ न बोला। चुपचाप उन्हीं पांवों घर चला आया। उसके हृदय पर एक वज्राघात सा हुआ कि स्त्री के हृदय का कुछ भी पता नहीं। आसमान के बदलते हुए रँगों की भाँति उसका स्नेह भी बदल जाता है। प्रेमा के घर पर आने पर उसने केवल इतना पूछा—"आज कहाँ रहीं ?" उसे पता न था कि उसने उसे देख लिया है, अतः उसने फिर स्कूल का ही बहाना लिया। रमेश ने इससे अधिक कुछ भी उससे न पूछा। प्रेमा के स्कूल चले जाने के उपरान्त उसने विकल से कहा—"मैं बाहर कुछ दिनों के लिए कार्यवश जा रहा हूँ और प्रेमा के लिए एक गीत लिख कर—

इस दुनिया में कौन किसी का मीत है ?
झूठा है संसार, यहाँ की झूठी सारी प्रीत है।

(१)

हृदय लुटाया व्यर्थ किसी के प्यार पर,
हुआ प्रफुल्लित व्यर्थ किसी मनुहार पर;

हंसना तो केवल दो क्षण की बात है,
किन्तु रुदन जीवन का चिर संगीत है।

(२)

कहा सिन्धु ने था—"यह छलिया रूप है।
गिरि बोला था नीरस गोरी धूप है"
मुझे न था विश्वास किसी की बात पर,
यह सच है, अब हो रहा प्रतीत है।

(३)

मंजिल देखी निकट किन्तु वह दूर थी,
तृप्ति मिली थी सुखद किन्तु वह क्रूर थी;
स्वप्न बह गये किस करुणा के नीर में,
अकथ युगों की प्यास उम्र की जीत है।

प्रेमा तुम अपने प्रेम को बनाये रखना, अपने रंगीन सपने सजाना। मुझ अभागे को क्या पता था कि········।

—रमेश

रमेश का हृदय प्रेमा के छल-छद्म से युक्त प्यार से आहत हो गया था। वह सोचता रहा -- क्या संसार इतना छलिया है ? रमेश ने प्रेमा को सच्चे हृदय से प्यार किया था। उसे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय समझता था। वह कभी इस बात की कल्पना भी न कर सका था कि प्रेमा कभी उसे जीवन में इस प्रकार धोखा देगी। वह सोचता था कि जो स्त्री अपने प्रियतम के लिए किसी समय अपने प्राणोत्सर्ग के लिए तत्पर थी, आज जीवन के आर्थिक संघर्ष में उसे दुत्कार सा दिया। प्रेमा से उसे कभी इस प्रकार की आशा भी न थी। सुन्दरता कितनी विषैली है, आज उसे पता चला था। उसकी आँखों के सामने एक अंधेरा सा छा गया। वह प्रति क्षण प्रेमा के प्रेम की स्मृति में अपनी सुधि-बुधि भुला देता। उसकी दशा एक पागल के समान हो गई थी। वह सोच नहीं पाता था कि क्या करे क्या न करे तथा कहाँ जाये और कहाँ न जाये।

दिल्ली उसे पग-पग पर काट रही थी। कई बार उसके हृदय में भावना जगी कि वह आत्महत्या करले, किन्तु यह बात सोचकर रुक गया कि जीवन पर प्रेम का ही नहीं अधिकार है, कर्त्तव्यों का भी बोझ है और उसने यह संकल्प कर लिया कि वह दिल्ली एक क्षण भी न रहेगा। यही सोचकर वह दिल्ली से बम्बई के लिए चल दिया। उसकी जेब में केवल चार रुपये थे। वह बिना टिकट ही गाड़ी पर सवार हो लिया। संयोग की बात थी कि उस दिन गाड़ी में चेकिंग अधिक नहीं हुई, अतः होशंगाबाद तक वह बिना किसी रोक-टोक के चला गया। होशंगाबाद में चेकिंग प्रारम्भ हुई। टिकट चेकर ने उसके पास टिकट न देखकर तथा उसे पढ़े-लिखे व्यक्तियों जैसा आँक कर कहा—"तुम पढ़े लिखे आदमी मालूम होते हो और बड़ी लज्जा की बात है कि तुमने टिकट नहीं लिया।"

"यदि पढ़ा लिखा ही होता तो बिना टिकट सफर ही क्यों

करता"--रमेश ने केवल इतना ही उत्तर दिया। पैसों के कारण वह जुर्माना न दे सका और टिकट चैकर ने उसे गार्ड के डिब्बे में ले जाकर बिठा दिया। गार्ड उसे सभ्य व्यक्ति अनुमान करके उसके रहस्यमयी जीवन को जानना चाहता था, किन्तु वह एक शब्द भी न बोला। वह विधि उल्लंघन के घोर पाप से मुक्त होने के लिए दया की भीख नहीं माँगना चाहता था। बम्बई आने पर वह बम्बई की जेल में पन्द्रह दिनों का साधारण कैदी बना। सीखचों का जीवन व्यतीत करने का यह उसके जीवन में प्रथम अवसर था। पन्द्रह दिन की यातनाएं भुगतने के उपरान्त भी वह प्रेम की स्मृति को न भुल सका। जब कभी उसे प्रेमा की याद आ जाती तो उसे मूर्च्छना सी आ जाती। बम्बई के बेकारों की संख्या में वह भी सम्मिलित हो गया। यह शहर जितना ही अधिक औद्योगिक है, भारत की बेकारी बढ़ने में, यह इस क्षेत्र में भी होड़ लगाये बिना न रह सका। वहाँ पर वह बिल्कुल अजनबी व्यक्ति सा था। कोई बिना विश्वास के उसे चौका-बर्तन आदि करने के लिए भी नहीं रखना चाहता था। वहाँ की प्रमुख भाषाएं, गुजराती और मराठी से भी वह बिल्कुल अपरिचित था। अगर किसी पढ़े लिखे स्थान, जो उसके उपयुक्त होते, के लिए नौकरी के लिए पूछने जाता तो उसके कार्यानुभव आदि की बात खड़ी हो जाती, किन्तु वह दिल्ली का नाम भी नहीं लेना चाहता था जबकि आज के युग में इतनी अधिक भावुकता मानव जीवन के लिए अभिशाप है, उसे अत्यन्त कटु उत्तर ही प्राप्त होता। नौकरी की खोज में वह गली-गली सड़क-सड़क भटका, किन्तु उसे सफलता न मिली। उसे अपने रमेश नाम से भी घृणा हो गयी थी, क्योंकि जब कभी भी उसकी अपने अतीत की स्मृति सजग होती तो उसका मन कराह उठता। उसके सामने प्रेमा का क्रूर प्रेम और सौन्दर्य चित्रवत् हो जाता। यही सब सोचकर उसने अपना नाम रमेश के स्थान पर 'परिवर्तन' रख लिया था। लोग उसके इस नाम पर बड़ा आश्चर्य करते थे। कोई पूछता—क्या यह आपका वास्तविक नाम है ? कोई—क्या आपने स्वयं इसे रखा है ?

समय ने एक अँगड़ाई ली और टुन्ड्रा की रात के समान उसके दुखों की एक लम्बी रात्रि की भी समाप्ति हुई। उसे दुखों के आकाश में सुख की किरणें दिखाई पड़ीं। भटकते-भटकते उसे वहाँ पर चौपाटी में एक सज्जन से परिचय हुआ। यह उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे और लगभग दस वर्ष पूर्व बम्बई में आये थे। उन दिनों उत्तर प्रदेश के व्यक्तियों पर यहाँ के लोगों का बड़ा विश्वास था। उन्हें एक सेठ जी के यहाँ नौकरी मिल गयी थी। अपनी ईमानदारी तथा कार्य कुशलता से वह एक साधारण नौकर से उनकी एक बहुत बड़ी दूकान के मैनेजर हो गये थे। उन्होंने भी अपनी बेकारी के भयानक दिन देखे थे, अतः रमेश की इस दुस्परिस्थिति को जानकर उनके हृदय में रमेश के लिए एक विशेष स्नेह हो गया था। वह रमेश (परिवर्तन) को अपने साथ ले गये थे। परिवर्तन के दो तीन दिनों भूखा रहने के कारण, मुख से ठीक प्रकार से बोल भी न निकलते थे। कपड़े गाड़ी की यात्रा तथा जेल-यात्रा के कारण काफी गंदे हो गये थे। उन्होंने घर लाकर परिवर्तन को अपना एक पैंट तथा कमीज पहनने के लिए दे दिया और उन्होंने उसकी कोई आमदनी न होने तक अपने घर पर ही खाने का प्रबन्ध कर दिया। उन दिनों उसके मालिक की लड़की के लिए एक ट्युटर की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने उसे वहाँ पर पढ़ाने के कार्य के लिए लगा दिया। उसने पहले तो यह कार्य करने से आनाकानी की, किन्तु जीवन की आवश्यकता ने उसे प्रेरित किया कि वह इसे स्वीकार कर ले। उसक सामने सिद्धान्त, था किन्तु परिस्थिति के अंकुश के सामने किसी की नहीं चलती। इसके अलावा संसार में सब एक जैसे ही नहीं हैं। उसके सामने जीने का प्रश्न भी था जिसका हल उसके लिए आवश्यक था।

इस ट्यूशन के साथ ही साथ उसे एक जगह कुछ कालांश कार्य भी मिल गया। वह लड़की रमेश की पढ़ाई से बहुत प्रभावित हो गयी थी, इसी कारण संयोगवश एक दूसरी लड़की का भी ट्यूशन प्राप्त हो गया जो एक बहुत बड़े औद्योगिक की लड़की थी।

इस लड़की का नाम शिमली था। साँवले रंग के होते हुए भी अच्छे खाते-पीते घराने में पलने के कारण बहुत कुरूप न थी। परिवर्तन की पढ़ाई तथा उसकी सौम्यता और सौन्दर्य ने उसके हृदय में घर कर लिया था। उसके पिता जी ने उसको कार्यहीन तथा सचरित्र जानकर अपनी फर्म में नौकर भी रख लिया। उसे अपनी फर्म का, आगे चलकर, मैनेजर भी बना दिया। वह आर्थिक जीवन की चिन्ता से तो मुक्त हो गया था किन्तु प्रेमा की स्मृति उससे दूर न हुई थी। उसकी प्रेम की अतृप्त भावनाएँ कभी-कभी इस बेचैनी से जागृत हो जातीं कि वह अपने को भी भुला देता था। उसे कभी-कभी विकल और सुषमा तथा रम्मू की भी याद आती जो उसके रिश्तेदारों से भी अधिक निकट थे। विकल के हृदय में रमेश के लिए असीम प्रेम था।

× × ×

प्रेमा जब स्कूल से लौटकर आई तो उसने देखा कि उसकी मेज पर एक लिफाफा रखा हुआ था, जिसे रमेश दिल्ली छोड़ने के पूर्व लिखकर रख गया था। पढ़ते ही उसका हृदय दुखी हो गया। वह घड़ीसाज से ही प्रेम नहीं रखना चाहती थी रमेश को छोड़ना भी नहीं चाहती थी। घड़ीसाज के आर्थिक सहयोग तथा उससे यौवन की तृप्ति तो अवश्य उसकी हो जाती थी, किन्तु उसकी भावुकता उसे मानसिक तथा वैचारिक प्रेम के विरह को भी नहीं चाहती थी। वह दो नाव से अपने जीवन की सरिता पार करना चाहती थी। उसे भी अपने पर पश्चात्ताप होने लगा कि उसने बहुत बड़ी भूल की। वह बड़ी देर तक बैठी-बैठी आँसू गिराती रही।

उसके सामने सामाजिक समस्या भी गम्भीर होती गयी। कभी-कभी वह बड़ी हताश हो जाती कि किसी को क्या उत्तर दे और क्या न दे। कई बार विकल ने प्रेमा से पूछा कि रमेश का कोई पत्र अब तक नहीं आया किन्तु उसके पास "नहीं" के उत्तर के अतिरिक्त और कुछ न था। विकल रमेश का निकटतम मित्र था। अतः वह प्रत्येक प्रकार से रमेश की अनु-

परिस्थिति में प्रेमा के सुख और प्रसन्नता का ध्यान रखता रहा। दिन जुड़ते-जुड़ते माह बन गये थे, किन्तु रमेश का कोई भी पत्र प्राप्त न हो सका। एक लम्बे समय तक रमेश का कोई पत्र न आने के कारण सुषमा तथा विकल दोनों को सन्देह हो गया कि कहीं प्रेमा से आपस में कुछ अनबन तो नहीं हो गयी। किन्तु वह इस स्थिति को अपने मुख से स्पष्ट भी तो नहीं कर सकती थी।

विकल ने कई बार प्रेमा से पूछा—"क्या बात है प्रेमा, तुम बताती क्यों नहीं? तुम्हें तो उसका कुछ तो पता ठिकाना मालूम होगा। मैं चला जाऊँगा और उसे मना लाऊँगा। मुझ पर विश्वास करो।" किन्तु प्रेमा क्या उत्तर दे, वह सोच भी न पाती थी।

प्रेमा कुछ सँभल गयी थी वह सोचती थी—यदि वह अब किसी रात को घर में न आई तो उसके चरित्र पर उनको सन्देह हो जायेगा तथा उससे प्रेमा और विकल को भी घृणा हो जायेगी। उधर घड़ीसाज के रात-रात गायब रहने तथा एक बार प्रेमा और घड़ीसाज के प्रेमालाप को सुनकर उसकी स्त्री भी उससे बिगड़ गयी। घड़ीसाज को तो उसने जो कुछ कहा तो कहा ही, किन्तु प्रेमा को भी कुछ कहना शेष न रखा। उसने इस अपमान से घड़ीसाज के यहाँ का ट्यूशन छोड़ दिया। घड़ीसाज महोदय की इच्छा प्रेमा के सहवास से काफी तृप्त हो चुकी थी। प्रेमा से उसका प्यार केवल मात्र, एक कामुकता की हिलोर थी। वह अपने सामाजिक बन्धन तोड़ने में भी असमर्थ था और उसे कोई न कोई लड़की मिल ही जाती थी। नौकरी छोड़कर घड़ी की दूकान खोलने का उसका एकमात्र यही उद्देश्य था कि वह पैसा ही न पैदा करे बल्कि वह यह भी चाहता था कि दिल्ली में सोसाइटी गर्ल्स की कमी नहीं। उसके धन और जवानी के आकर्षण से कोई न कोई एक न एक दिन टकरा ही जायेगी। उसके हृदय में भी प्रेमा के लिए अब पहले जैसा प्यार न रह गया था। हाँ, उसका सौन्दर्य उसके लिए अवश्य अब भी आकर्षण था, किन्तु वह इतना अधिक मूल्य देकर इस सौन्दर्य को नहीं लेना चाहता था। उसका तो अपने जीवन का एक सिद्धान्त

था—"माँस-माँस चूस लो, हड्डी-हड्डा फेंक दो।"

प्रेमा भी अब उसके प्रेम से भला-भाँति परिचित हो गयी थी। उसका हृदय कुंठित हो गया था। एक की जगह उसके हृदय में अब दो दर्द आ गये थे।

महीने-महीने होते-होते दो वर्ष हो गये थे; किन्तु रमेश का कोई पता नहीं मिल सका था। विकल ने कई बार अखबारों में छपवाने की तथा पुलिस को सूचित करने की सोची किन्तु सुषमा तथा प्रेमा दोनों ने मना कर दिया। सुषमा को प्रेमा के विषय में इस प्रकार का बिल्कुल पता न था। दूसरे रमेश की ही भाँति उसमें भी सन्देहात्मक प्रवृत्ति न थी। विकल के लड़का हो गया था और वह अब लगभग डेढ़ वर्ष का हो गया था। विकल ने अपनी साहित्यिक प्रवृत्ति तथा साहित्यिक अभिरुचि के कारण इसका नाम विभाकर रखा था।

× × ×

शिमली की बड़ी इच्छा थी कि वह एक फिल्म कम्पनी खोले, किन्तु उसके पिता फिल्म लाइन को रंडियों और भँडुवों का कार्य समझते थे। किन्तु शिमली अपने हठ को पूरा करवाने के लिए भरसक प्रयत्न करती रही। उसके पिता उसका हृदय भी तोड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने परिवर्त्तन को एक बार बुलाकर पूछा—"क्या तुम फिल्म कम्पनी के काम से कोई अभिरुचि रखते हो? मेरी लड़की की बड़ी इच्छा है कि वह फिल्म कम्पनी खोले।"

"वैसे तो मुझे उस कार्य से कोई विशेष अभिरुचि नहीं है, किन्तु यदि आप इस कार्य के लिए मुझसे कहेंगे, तो मैं इसे सम्हाल अवश्य सकता हूँ।"

परिवर्त्तन के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में उसके पिता अधिक जानने की उत्सुकता न रखते थे और इस कारण उन्होंने उसके विगत इतिहास को भी कभी अधिक नहीं पूछा। उन्होंने उसे ईमानदार, सच्चरित्र पाया और उसके साथ घर का जैसा व्यवहार करने लगे। हाँ, एक बार उन्होंने परिवर्त्तन से यह अवश्य पूछा था—"क्या तुम्हारे घर में कोई नहीं?" उसने

उत्तर दिया था—"यह मेरा एक दुर्भाग्य है कि इस सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कह सकता।" आगे उन्होंने यह भी पूछा—"तुम्हारी बीबी बच्चे कहाँ हैं ?" उसने फिर वही साहित्यक ढंग से उत्तर दिया—"शायद कहीं नहीं हैं।" शिमली उस समय यह सुन रही थी। जब उसे यह पता लग गया कि परिवर्त्तन बाबू अभी तक कुमार हैं, तो उस दिन से उसने परिवर्त्तन बाबू पर अपना प्रेम पूर्ण रूप से न्योछावर कर दिया। उसने अपनी इस भावना को अव्यक्त ही रखा। उसकी उम्र लगभग १६ वर्ष की हो गयी थी और उसके पिता ने एक दिन उससे शादी के सम्बन्ध में पूछा भी था किन्तु उसने ना कर दी थी। शिमली के पिता को क्रोध सा आया क्योंकि वह इस भार से मुक्त होना चाहते थे, किन्तु लड़की से उन्हें अत्यधिक स्नेह था। वह स्वयं तो आधुनिक सभ्यता में न पले थे किन्तु जमाने की हवा देखकर तथा अपना कर्त्तव्य समझ कर वह विवाह के सम्बन्ध को शिमली की इच्छानुसार ही करना चाहते थे और उन्होंने वचन दे दिया था कि वह जिससे कहेगी उसी से वह शादी कर देंगे, लेकिन उसे यह समझा दिया था कि उसकी शादी की इच्छा हो तो वह अवश्य बता दे ताकि वह उसकी इच्छा का ही लड़का खोज सकें लेकिन नाम न बदनाम हो।

शिमली के हृदय का प्रेम रमेश के लिए दिन दूना रात चौगुना बढ़ता गया। शिमली को परिवर्त्तन बाबू के साथ स्वतंत्रता पूर्वक मिलने-जुलने तथा बातचीत आदि करने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। एक दिन शिमली ने परिवर्त्तन से सिनेमा देखने को कहा। सिनेमा का नाम सुनते ही उसे कुछ वेदना सी हुई, क्योंकि जो चलचित्र देखने को शिमली ने प्रोग्राम बनाया था वह चलचित्र एक महान प्रेम की करुणाजनक कहानी से ओत-प्रोत था और उसके सम्बन्ध में रमेश बहुत कुछ सुन चुका था। अतः उसका विगत अतीत उसके सामने साकार सा हो गया। प्रेम की स्मृति सजीव हो उठी, किन्तु उसे शिमली के साथ जाना ही था। वे लोग चलचित्र देखने चले गये।

चलचित्र देखकर जब लौटे तो शिमली ने कहा कि वह इंडिया गेट होते हुए चलेगी। बात यह थी कि चलचित्र देखने के उपरान्त वह यह

जानना चाहती थी कि परिवर्त्तन बाबू को चलचित्र पसंद आया अथवा नहीं तथा वह अपना प्रेम व्यक्त करने का कोई बहाना चाहती थी। वह कभी-कभी यह भी सोचा करती थी कि वह अधिक सुन्दर नहीं है, परिवर्त्तन बाबू उससे प्रेम न करें। शिमली ने वहां जाकर परिवर्त्तन बाबू से पूछा—"क्या आपको चलचित्र पसंद आया ?"

"मैंने तो ध्यान ही नहीं दिया।" परिवर्तन बाबू के इस उत्तर से वह कुछ आश्चर्य में पड़ गई और सोचती रही—क्या इन्हें चलचित्र अच्छे ही नहीं लगते। कितना अच्छा चलचित्र था। देखते समय शिमली की आँखों में आँसू उभर आये थे। उसने सोचा कि वह व्यर्थ ही परिवर्तन बाबू को परेशान करने के लिए ले आई। उसने यह भी सोच लिया कि यदि उन्हें चलचित्र अच्छे नहीं लगते तो वह भी चलचित्र नहीं देखेगी, लेकिन फिर उसने सोचा—यदि परिवर्त्तन बाबू चलचित्रों को पसन्द नहीं करते तो फिर वह अपनी इच्छा तथा जनता की इच्छा को लेकर कोई अच्छा चलचित्र कैसे बना सकेंगे। यही सोचकर उसने आश्चर्य तथा उत्सुकता से कहा—"अगर आप चलचित्र पसंद नहीं करते तो फिर कोई अच्छा चलचित्र कैसे निर्माण करेंगे ?" यह कहकर वह कुछ उदास सी होगयी। परिवर्त्तन बाबू ने उसे उदास देखकर कहा—"आज कोई चिन्ता सी लग रही थी, अतः पिक्चर को ध्यान से न देख सका। जहां तक चलचित्र बनाने की बात है, मैं कोई अच्छा ही चलचित्र निर्माण करूँगा। इसके अलावा चलचित्र भी कुछ अधिक मार्मिक था और मैंने इसे पहले भी देखा था, अतः दुबारा ध्यान नहीं दिया।"

"जाने क्यों मुझे आपके साथ पिक्चर देखना अधिक अच्छा लगता है ?" शिमली ने कहा।

"ऐसी क्या बात है ?"

"यह तो मैं भी नहीं जानती।"

शिमली के इस उत्तर से तथा उसकी स्नेह युक्त चितवन से वह भाँप तो गया कि उसे उससे प्रेम है, किन्तु वह प्रेम से मीलों दूर रहना चाहता था। उसने अनुभव कर लिया था कि प्रेम जितना ही आनन्दमयी

है, उतना ही वेदनामयी तथा जितना ही कोमल है उतना ही कठोर। वह जितना ही मधुर है उतना ही विषैला। इसके अलावा वह यह भी सोचता था—विद्यार्थी और अध्यापक का क्या प्रेम; धनवान और निर्धन का क्या प्रेम; नौकर और मालिक का क्या प्रेम। उसके विचार से इन श्रेणियों में आकर स्त्री और पुरुष जैसा प्रेम कोई उचित महत्व नहीं रखता है। यद्यपि वह प्रेमा से दूर था तथापि वह उसके दिये हुए दर्द की अमिट छाप के कारण प्रेम की कल्पना आते ही उसका गला घोंट देता था। वह सोचता था—प्रेम यदि वास्तविक प्रेम है तो वह महान है अन्यथा वह पतन का द्वार है। प्रेमा के निष्ठुर प्रेम से प्रेरित होकर वह अब अपने जीवन को राष्ट्र तथा मानव के हित में अर्पित करना चाहता था। फिल्म कम्पनी के व्यवसाय को उसने लाभ या आनन्द के लिए नहीं स्वीकार किया था, किन्तु वह उसकी आय से करुणालय की स्थापना करना चाहता था, जिसके द्वारा वह पीड़ित, शोषित तथा श्रम रहित व्यक्तियों के हितार्थ कुछ कर सके।

वह सोच रहा था कि शायद उसके दुर्भाग्य ने पुनः करवट बदली। एक बार के प्रेम ने उसकी लगी लगाई अच्छी नौकरी को मटियामेट कर दिया, कुछ लोगों की दृष्टि में भी वह गिरा तथा दिल्ली को भी छोड़ना पड़ा, दूसरी बार का यह प्रेम शायद पुनः कोई उससे भयंकर परिणाम लाये। शिमली बड़ी उदास सी हो रही थी। उसने अपने निराश शब्दों में पूछा—"क्या आपके हृदय में मेरे लिए बिल्कुल प्रेम नहीं है?" परिवर्तन बाबू थोड़ी देर तक मौन रहे, किन्तु फिर बुद्धि का सहारा लेते हुए बोले—"क्यों नहीं है?"

परिवर्तन बाबू ने यही सोचकर कहा था कि यदि वह प्रेम का स्पष्टीकरण माँगेगी तो वह कह देगा—जैसा विद्यार्थी और अध्यापक का प्रेम होता है वही है। किन्तु शिमली उसके उत्तर से आशाप्रद हो गई। उसके वचन लेने के लिए उसने पूछा—"अच्छा, तो यदि मैं अपने पिता जी से कह दूँ कि मास्टर जी से मेरा प्यार है और उनसे मेरी शादी कर दो

तो आपको इन्कार तो नहीं होगा।" शिमली के इन शब्दों से परिवर्तन बाबू थोड़ा दुःखी हो गये। वे थोड़ी देर तक मौन रहे। उनकी इस उलझनपूर्ण अवस्था तथा गम्भीर मौन को देखकर शिमली बोली—"क्या आप मुझसे अप्रसन्न हैं ? मेरे हृदय में आपके लिए जितना प्रेम है उतना किसी को नहीं। यदि आप मुझसे शादी न करेंगे तो चाहे सारी उम्र अविवाहित ही बनी रहूँ, किन्तु किसी अन्य से शादी न करूँगी। मैं जानती हूँ कि मैं आपके योग्य सुन्दर नहीं तथापि संसार में सौन्दर्य ही सबसे बड़ी वस्तु नहीं।"

परिवर्तन बाबू शिमली के सम्पर्क में लगभग दो वर्ष से भी कुछ अधिक समय से थे, किन्तु उन्होंने शिमली द्वारा यह प्रस्ताव रखे जाने की कभी अपने मन में कल्पना तक न की थी। शिमली के हृदय में श्रद्धा और स्नेह का अनुभव उन्होंने अवश्य किया था, किन्तु उसके आधार पर वह यह कभी नहीं सोच सके कि शिमली इतना आगे बढ़ जायेगी। वह यह भी सोचते थे कि औरत अपनी स्नेहपूर्ण बातों से पत्थर को भी पिघला सकती है, किन्तु जब वह अपना हृदय कठोर करती है तो किसी की उस पर नहीं चलती। उसके सामने पुनः प्रेमा की वे बातें याद हो आईं, जिन्हें उसने अपने प्रथम मिलन में कहा था। पूरा वार्तालाप का वार्तालाप उसे स्मरण हो आया। "तुम मुझसे प्रेम की बात न करो शिमली, मैं पागल हो जाऊँगा।" उसकी यह बात सुनकर शिमली सोचती रही कि परिवर्तन बाबू का प्रेम कहीं पर जुड़ कर टूट गया है, उसी कारण से वह ऐसा कह रहे हैं। अतः उसने अपने को स्पष्ट करने के लिए कहा—"देखो संसार में सब एक जैसे ही नहीं होते। मैं सौन्दर्य से अवश्य हीन हूँ, किन्तु हृदय और प्रेम से नहीं। लेकिन यदि आप मेरी लाश ही जलाना चाहते हैं, तो आप अवश्य ऐसा कहिये।"

उसे होटल वाले के शब्द पुनः याद आ गये कि अच्छे और बुरे की किसी पर मोहर नहीं लगी है। कोई बेइमान आदमी अपने छल और धोखे से ईमानदार आदमी का रास्ता भी बंद कर जाता है। शिमली

आगे कुछ न बोली। वे उठकर घर की ओर चल दिये। घर पर शिमली निराशा में डूबी रही। न कुछ खाया न पिया न किसी घर के व्यक्ति से बातचीत ही की। उसकी ऐसी दशा देखकर उसके पिता ने कई डाक्टर बुलवाये, किन्तु उसके मर्म का किसी को पता न चला। अन्त में उसके पिता ने पूछा—"मुझे बता दे शिमली तुझे क्या हो गया है ? मैं तेरी हर इच्छा को पूरी कर दूंगा।"

उसे अपने पिता के शब्दों पर विश्वास था और यही सोचकर उसने यह उचित समझा कि उनसे वह अपने हृदय की बात कह दे, शायद उनके विवश करने से परिवर्तन बाबू उससे शादी के लिए तत्पर हो जायें। उसने अपने पिता से पुनः वचन लिया—"क्या आप सचमुच मेरी बात पूरी कर देंगे ?

"हाँ, अपनी सौगन्ध, तेरी हर इच्छा जो भी पूरी कर सका, अवश्य करूँगा। तू ही बता, क्या आज तक मैंने तेरी कोई इच्छा पूरी नहीं की है।" उसके पिता ने कहा।

उसको आगे कहने का साहस न हो रहा था, किन्तु संसार में प्रत्येक कठिन कार्य के लिए साहस की आवश्यकता होती है। यही सोचकर उसने कहा—"अच्छा तो मेरी शादी मास्टर जी से करवा दें।"

"मास्टर जी से !"

"मास्टर जी से" शिमली के मुख से ऐसा सुनते हुए उनकी त्योरियाँ चढ़ गयीं। वह हताश से हो गये। फिर भी अपने को रोकते हुए बोले—"तूने यह अच्छा नहीं कहा।'

"लेकिन पिता जी आपने मुझसे वादा किया था और अब भी आपने वचन दिया तब मैंने आपसे बात कही। आप पिता होकर भी यदि अपने वचन से बदल गये तो हम लोग अपने वचन कैसे पूर्ण करेंगे। आप यदि मेरी बात नही मानेंगे तो यह निश्चित है कि, मैं जीवित नहीं रह सकूँगी, ऐसा मैंने निश्चय कर लिया है।"

उसके पिता का क्रोध बढ़ रहा था और वह सोच रहे थे कि एक छोटा-सा नौकर, जिसके प्रेम में वह अपने घर पर कलंक का टीका लगा

रही है। "तू एक छोटे नौकर के प्यार में फँस गयी। उसका तेरे ऊपर ऐसा जादू चल गया।"

"पिता जी आप सब कुछ कहें, लेकिन परिवर्तन बाबू को कुछ न कहें। इन्सान पैसे से नहीं अपने चरित्र और विचारों से बड़ा होता है। आज आप मेरी जिन्दगी और मौत के सवाल को अपनी क्षणिक इज्जत और रिश्तेदारों के नाम पर छोड़ रहे हैं, लेकिन आपने ही बताया था कि जब आप मुसीबत में थे तब आपका किसी ने साथ नहीं दिया था। आप धन के चश्मे से किसी की इन्सानियत का मूल्यांकन न करिये। धन हाथ का मैल है। आज है कल नहीं, किन्तु इन्सानियत का धन कभी नहीं मरता। परिवर्तन बाबू से मेरा किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहा है और न मैंने शादी के पूर्व उसे उचित ही समझा है। उनका जादू मेरे ऊपर नहीं चला। उनके विचार व्यवहार तथा सचरित्रता ने मुझे आकर्षित कर लिया। आज जब मैंने अपने हृदय में किसी को स्थान दे दिया है, तो उसे मरकर भी अलग न होने दूंगी। मैंने जिससे प्यार का संकल्प कर लिया है, वह सदा के लिए अटल है और यदि आपको मेरी बात ठुकरानी है तो अपने हाथों से मेरा गला घोंट दें।" और उसने एक लम्बी साँस ली—"आह ? पिता इतने निष्ठुर होते हैं ?" कहकर वह फूट-फूट कर रो उठी। उसके रुदन से मानों उसके पिता का पत्थर-हृदय द्रवित हो गया। यह उसके बचपन के बाद का पहला अवसर था, जब वह इस प्रकार मर्माहत करने वाली ध्वनि से रोयी थी।

बाप का बेटी के प्रति सहज स्नेह जागृत हो उठा। वह सोचने लगे कि यह अपनी हठ की पक्की है, यदि इसने ऐसा सोच लिया है तो उससे मुख नहीं मोड़ सकती। लड़की की आत्मा को बिना अपराध के दंड देना महा पातक है। यदि वह आत्म-हत्या आदि जैसी कोई बात कर बैठी, तो वह इस संसार और उस संसार में कहीं भी मुँह दिखाने योग्य न रहेंगे, यही सोचकर उन्होंने यही उचित समझा कि उसकी परिवर्तन बाबू से शादी कर देना ही ठीक है। यदि उसे धन मिल गया तो वह भी मेरी ही भाँति एक बड़ा आदमी बन सकता है। फिर उसके पास ईमानदारी और

चरित्र भी तो है, जो मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है। यही सब सोचकर उन्होंने परिवर्तन बाबू को बुलाया।

परिवर्तन बाबू इंडिया गेट से आने के उपरान्त बड़ी उलझन पूर्ण अवस्था में फँसे रहे। वह सोच नहीं पा रहे थे कि क्या करें। दूसरे दिन इसी उलझन के कारण वह दफ्तर तक न गये। उन्होंने सोच लिया था कि उनका रहना अब यहाँ एक क्षण भी ठीक नहीं है। यही सोचकर उन्होंने अपना नौकरी से त्याग-पत्र लिखकर रख दिया था। और आज सोच रहे थे कि वह जाकर दे दें तथा उनका हिसाब-किताब समझा दें। उसके पिता के बुलाने पर उन्होंने त्याग-पत्र साथ में ले लिया और उनके पास चले गये। आते ही परिवर्त्तन बाबू ने सबको यथा योग्य नमस्ते किया और अपना त्याग-पत्र तथा हिसाब-किताब को लिखित रूप से दे दिया। उसके पिता के मस्तिष्क में एक बात आयी कि परिवर्त्तन बाबू का इसमें कोई दोष नहीं है और दोषी तो उनकी लड़की है। यदि कोई लड़की पुरुष को अपने प्यार की ओर आमंत्रित नहीं करेगी वह कैसे आजकल के समाज में प्रेम के लिए अपना पग बढ़ा सकता है। वे सोचने लगे कि यह इन्सान कितना ऊँचा है।

"इसमें तुमने नौकरी छोड़ने का कारण नहीं लिखा।"

"मैंने यही उचित समझा।"

यह कहकर वह चल दिये। उनको जाते देखकर शिमली फूट-फूट कर रो उठी।

"थोड़ा रुको" शिमली के पिता के यह शब्द सुनकर परिवर्त्तन बाबू रुक गये।

"आज तक तुम मेरे नौकर थे, किन्तु अब नहीं। इन्सानियत को जीवित रखने के लिए आज मैं तुमसे कुछ माँगना चाहता हूँ।" शिमली के पिता ने कहा—

"लेकिन मेरे पास है ही क्या। आज तक मैं जो भी सेवाएँ आपकी कर सका, वे मैंने कीं, किन्तु परिस्थितियों वश, आज मैं आपसे अलग हो रहा हूँ।"

"तुमने स्वयं कहा था कि तुम्हारी बीबी शायद कहीं नहीं हैं। आज मै तुम्हें एक बहुत बड़ा भार सौंपना चाहता हूँ। तुमने आजतक मेरी आज्ञा का पालन किया है। आशा है, तुम पुत्र की भाँति मेरी इस आज्ञा का और भी पालन करोगे। अगर तुम इस बात को नहीं मानोगे तो मेरी फूल सी पली हुई बच्ची की लाश मुझे ही अपने कंधों पर ढोनी पड़ेगी।" कहते-कहते शिमली के पिता की आँखों में आँसू आ गये। यह पहला अवसर था जब परिवर्त्तन बाबू ने शिमली और उसके पिता की आँखों में आँसू देखे थे। उनका हृदय छलक उठा। परिवर्त्तन बाबू पास में पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गये। वह अपनी आँखों से शिमली की इस करुणाजनक अवस्था को न देख सके। उनका हृदय छलक उठा। उसके पिता ने अपने हाथ से शिमली का हाथ परिवर्त्तन बाबू के हाथ में पकड़ा दिया।

"मैं आपकी आज्ञा से विमुख तो नहीं होना चाहता, किन्तु सोचता हूँ कि कल तक जिसके सामने एक अध्यापक की तरह था आज उसके सामने पति की भाँति उपस्थित होना पड़ेगा और फिर समाज पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा।" परिवर्त्तन बाबू ने कहा।

"बेटे परिवर्त्तन, मैं तुम्हारी स्थिति और भावनाओं को भली भाँति समझता हूँ; किन्तु अन्य बातें भूलकर प्रसन्नता और उत्साह से इस कर्त्तव्य को निभाओ। अध्यापक अपनी पत्नी को भी तो पढ़ाता है और फिर समाज की कहाँ तक चिन्ता की जायेगी। समाज तो अगर एक वृद्ध पुरुष को भी अपनी लड़की के साथ देख ले तो जाने क्या-क्या उसके सम्बन्ध में धारणा बनाने लगता है।"—शिमली के पिता ने उसे समझाते हुए कहा।

पंडित से महूर्त्त पूछकर शिमली के पिता ने भारतीय पद्धति से शिमली की शादी परिवर्त्तन बाबू के साथ कर दी। परिवर्त्तन बाबू ने अपनी फिल्म कम्पनी अँधेरी में खोल दी और वहीं पर एक फ्लैट लेकर रहने लगा। उसने शिमली के नाम से एक फिल्म बनाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। इस कहानी का निर्माण अपने जीवन की घटनाओं पर ही आधारित किया। उनका अपना विचार था कि यह फिल्म जीवन के उन्हीं पात्रों से

अभिनीत करवाई जाये जो उसके वास्तविक जीवन के रंगमंच पर आकर अपना अभिनय कर चुके हैं। इसको लोकप्रिय बनाने तथा उच्च निर्देशन से निर्देशित करने का भी उसने प्रबन्ध कर लिया। शिमली के सच्चे स्नेह ने उसके जीवन में कर्मठता तथा जिन्दगी की नयी चेतना प्रदान की फिर भी उसका मन कभी-कभी प्रेमा की थी निष्ठुरता की याद आते ही कसक उठता था।

परिवर्त्तन बाबू 'करुणा प्रोडक्शन' की 'शिमली' नामक चलचित्र की सूटिंग के लिए एक सरदार का वेष बनाकर दिल्ली आये। यहाँ पर आकर उन्होंने एक स्थान को अपने निवास तथा स्टूडियो के लिए ले लिया। दिल्ली के अन्य प्रमुख व्यक्ति, जो उसके जीवन में अनेक मार्मिक घटनायें छोड़ गये थे, उनकी वार्त्तालाप उसने अपनी स्मृति के सहारे लिख कर उनसे पढ़वाकर उसकी सूटिंग कर ली। इसके उपरान्त उसने विकल तथा प्रेमा आदि से उनका उसी प्रकार अभिनय करवाने के लिए सोचा। विकल के गीत उसने अपने चलचित्र के लिए ले लिये तथा विकल का अभिनय भी उसने अपने स्टूडियो में करवा लिया। कई वर्षों से रमेश विकल से न मिल सका था तथा उसके परिवर्तित स्वरूप और वेषभूषा से वह परिवर्त्तन बाबू में रमेश के स्वरूप का अनुमान न कर सका। प्रेमा को भी उसने पत्र द्वारा बुला लिया था तथा उसका भी अभिनय ले लिया। चलचित्र का अन्त करुणाजनक होते हुए भी कर्त्तव्य की कसौटी पर खरा उतारने के लिए एक ज्योतिषी के रूप में प्रेमा के घर गया। उसे अपना हाथ दिखाने तथा ज्योतिषी द्वारा भाग्य का पता लगाने की भी विशेष इच्छा रहती थी। अबकी बार वह केवल टेप रिकार्डर अपने साथ ले गया। बातचीत करते हुए चित्रों का निर्माण तो फोटो ग्राफर ने अपनी कला से स्टूडियो में ही कर देने का वचन दे दिया था।

पहले उसने विकल तथा सुषमा का हाथ देखा और उसे आशाप्रद भविष्य की बातें बतायीं। प्रेमा भी ज्योतिषी जी के आगमन को जानकर अपना हाथ दिखाने की भावना से ज्योतिषी जी के पास आई, किन्तु उन्होंने

पहले ही कह दिया था कि जितनी बातें वह पूछेंगे उनका उसे ठीक-ठीक उत्तर देना होगा।

"तुमने अपने प्रेमी को धनके लालच में धोखा दिया है ?" ज्योतिषी जी के यह वचन सुनते ही प्रेमा क्रोधित हो गयी और बोली—"क्या आप यही कहना चाहते थे ?"

"मैं कहना तो नहीं चाहता था, लेकिन तुमने पूछा था। अतः मेरा कर्त्तव्य है कि मैं ठीक-ठीक बात बताऊँ तथा पूछूं और तभी अच्छे और बुरे भविष्य की बात भी कह सकूँगा। मैंने जो बात कही है और यदि वह सत्य नहीं है तो मेरी गर्दन उड़ा दी जाये। मैंने ज्योतिष देव-विद्या के द्वारा प्राप्त की है।" ज्योतिषी जी ने कहा।

प्रेमा उसकी बातों से क्रोधित तो अवश्य हो गयी, किन्तु वह उसकी बातों से प्रभावित हो गयी। वह अपनी पोल विकल तथा सुषमा के सामने नहीं खुलवाना चाहती थी। यही सोचकर उसने कहा कि आपकी ज्योतिष सच है या झूँठ, मैं इसके लिए आपसे पुनः बातचीत करूँगी आप अपना पता बतावें, मैं फिर आपसे मिलूंगी।"

"आपकी इच्छा, मैं यहाँ का नहीं बाहर का रहनेवाला हूँ। मेरा कोई पता नहीं, लेकिन आप यदि मेरी सच्चाई अथवा झूँठाई का पता लगाना चाहती हैं, तो आप चार बजे शाम को दिल्ली गेट के पास मिलिये, वहीं पर एकान्त में बैठकर मैं आपको बहुत कुछ बता सकूँगा।' यह कहकर ज्योतिषी जी चलदिये। विकल ने उन्हें कुछ रुपया भेंट करना चाहा, किन्तु उन्होंने अपना प्रभाव डालने के लिए रुपया लेने से इन्कार करते हुए कहा—"मेरा तो काम सेवा करना है, मैं अपनी विद्या को बेचता नहीं।" और वह सबके नमस्ते का उत्तर देते हुए चल दिये। प्रेमा ज्योतिषी जी की निर्भीक तथा सच्ची वाणी और व्यवहार से बहुत प्रभावित हो गयी। उसने वचन दे दिया कि वह चार बजे अवश्य उनके दर्शन करेगी।

परिवर्त्तन बाबू चार बजे टेप रिकार्डर तथा फोटो ग्राफर को साथ लेकर ज्योतिषी के भेष में दिल्ली गेट के पास आ गये। वहाँ पर अना-

वश्यक भीड़ न हो जाये इसका भी उन्होंने प्रबंध कर लिया था और यह भी प्रबंध कर लिया था कि इस प्रबंध से प्रेमा को किंचित पता न चले कि वह वही डाइरेक्टर है, जिसने उनके अभिनय से अपना चलचित्र तैयार करवाया है। प्रेमा भी वहाँ ठीक समय से पहुँच गयी। वह ज्योतिषी जी को नमस्ते करके घास पर बैठ गयी और उससे पूछा—"क्या आप और कुछ भी बता सकेंगे ?"

"हाँ, मै बहुत कुछ बता सकूगा, लेकिन यदि आप मेरे प्रश्न का उत्तर बिना लज्जा और संकोच के सही-सहा बतायेंगी, अन्यथा मेरी ज्योतिष नष्ट हो जायेगी। यह विद्या देवी के कोप से झूठ प्रश्नों का उत्तर देने तथा झूँठी बात बताने, दोनों से नष्ट हो जाती है।"

परिवर्त्तन बाबू ने यह कहकर अपनी बात बना ली। उसे वास्तव में ज्योतिष तो आती नहीं थी, यदि कोई अन्य प्रश्न प्रेमा पूछ लेती तो वह कदाचित ठीक उत्तर न दे पाते और जो प्रभाव उन्होने ढोल में पोल के आधार पर बना लिया था, वह तत्काल ही समाप्त हो जाता। अतः प्रश्न पूछने की बात उन्होंने अपनी ओर से ही रखी।

"तुम्हारे नये प्रेमी ने तुम्हारे यौवन का आनन्द लेकर तुमको ठुकरा दिया, क्या यह सच है ?"

वह मौन रही।

"क्या तुम्हारे हृदय में अपने पहले प्रेमी के लिए प्रेम है ?"

"था तो, किन्तु अब नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि वह मुझको छोड़कर चला गया।"

"वह तुम्हें छोड़ कर चला गया, यह ठीक है। किन्तु क्या तुमने उसके होते हुए, किसी अन्य से प्रेम नहीं किया था?"

वह पुनः मौन रही।

"और वास्तव में वह तुमको छोड़कर नहीं गया; किन्तु तुमने ही उसको धोखा दिया। क्या तुमने स्कूल का बहाना कर-करके दूसरे आदमी

के साथ सहवास नहीं किया ? उसने अपने तन-मन-धन तीनों से तुम्हें प्यार किया था। जब उसने अपनी आँखों से देख लिया, तब उसके हृदय पर एक वज्राघात सा हो गया। उसकी जेब में चार दिन खाने भर को भी पैसे न थे। दर-दर की ठोकरें खाकर भी तुम्हारी याद न भुला सका। मेरी ज्योतिष कहती है कि शायद उसका विवाह किसी ने उसकी इच्छा के विपरीत कर लिया है और वह अपने उत्तरदायित्व को निभाता हुए भी कदाचित् तुम्हारी याद में ही अपने प्राण त्यागेगा। वह अब आर्थिक उलझनों से मुक्त है, काफी सुखी है, किन्तु तुम्हारी याद उसका सब सुख लूट चुकी है। उसके हृदय में तुम्हारे लिए स्नेह है, किन्तु वह कर्त्तव्य की शृंखलाओं में बंधा हुआ है।"

ज्योतिषी जी के इन वाक्यों से प्रेमा का हृदय मर्माहत सा हो उठा। उसे रमेश के सच्चे प्यार की याद बड़ी बेचैनी से आ गई। सारा अंग-अंग पीड़ा से कसक उठा। उसकी आँखों में घुचघुची आ गई।

"क्या वह मुझे अब कभी न मिल सकेंगे ?"

"वह भी तुमसे मिलना चाहता है, किन्तु तुम्हारे धनलोलुपता और निष्ठुर प्रेम की याद करते ही उसका मन कसक उठता है। वह चाहता है कि तुम्हें कभी भी न देखे।"

"ज्योतिषी जी ऐसा न कहो। भूल हर इन्सान से होती है। किसी के सच्चे प्रेम का तो तभी वास्तव में पता लगता है, जब कोई अन्य उसे धोखा देता है। आज मेरे हृदय में उनके लिए कितना प्रेम उमड़-उठा है, मैं नहीं जानती। मेरा मन चाहता है कि एक बार उन्हें खूब जी भर कर देख लूं, उनकी गोद में ही यह प्राण निकल जाएँ।" वह रो उठी और ज्योतिषी के चरणों पर गिर पड़ी। "ज्योतिषी जी मैं बड़ी अभागिन हूँ जो ऐसे प्रेमी को पाकर भी अपना न बना सकी। मुझे कोई उपाय बता दो कि में एक बार उन्हें जी भर देख लूँ।"

"लेकिन तुम प्रेम को धन-वैभव के आधार पर चाहती थी। धन और वैभव प्रेम को नहीं खरीद सकते। प्रेम तो दुखों और मुसीबतों के बीच

में रह कर भी हरा-भरा रहता है। प्रेम एक आन्तरिक तथा आध्यात्मिक आनन्द है, वासना या सुख का नाम प्रेम नहीं। बेटी, अब मैं जाता हूँ, क्षमा करना, यदि मैंने कोई कटु या अप्रिय शब्द तुम्हें कहे हों। संसार को अच्छी राह बताना ही मेरा कर्त्तव्य है। दक्षिणा स्वरूप में तुमसे केवल इतना ही चाहता हूँ कि प्रेम को धन और वैभव की कसौटी पर कभी न परखना। इस पुण्य भूमि को जहाँ सीता, सावित्री और दमयन्ती की कण-कण में ध्वनि गूँज रही है, उसे कलुषित न करना।"

ज्योतिषी जी के पैर पकड़े वह सोचती रही कि रमेश कितना महान प्रेमी तथा सच्चरित्र मनुष्य था। उसने उसके प्यार में अपने को भुला दिया था। उसने कभी किसी लड़की की ओर मुड़कर भी न देखा था। उसने भूखों रहकर भी उसके लिए सब कुछ किया। वह सोच रही थी—उसने व्रत लिया था कि वह सामाजिक सुधार में अपने पग उठायेगी। अपने जीवन को कर्त्तव्य की वेदी पर बलिदान कर देगी, किन्तु आज वह कुछ भी न कर सकी। धन तथा सुख और वासना की इच्छा ने ही उसे अपने जीवन के सच्चे प्रियतम से दूर कर दिया। उसकी आँखों से अविरल आँसू गिर रहे थे।

ज्योतिषी के वेष में परिवर्त्तन बाबू का प्रेम छलक उठा और उनकी आँखों में भी आँसू आ गये। उसने पहली बार प्रेमा के नेत्रों में इतने आँसू देखे थे। उसका हृदय भी पपीहे की भाँति कराह उठा। लेकिन वह करता भी तो क्या करता, उसको अपना उत्तरदायित्व भी निभाना था। उसने शिमली से प्रेमा जैसा प्रेम तो न किया था, किन्तु उसके सच्चे स्नेह और पतिव्रत भावना के कारण वह पूर्ण रूप से उसके जीवन से सम्बद्ध हो चुका था। सच्चरित्र तथा आदर्शवादी होने के कारण वह प्रेमा से प्रेम करके भी प्रेम न कर सकता था।

"ज्योतिषी जी आपने मेरी अन्धी आँखों को प्रकाश दिया है, भटकती हुई नाव को किनारे तक जाने का साहस दिया है अब मुझ अभागिन पर केवल इतनी ही कृपा करो कि कोई रास्ता बता दो ताकि मैं उनसे मिल

सकूँ। नहीं तो मेरे प्राण असह वियोग में निकल जायेंगे।"

"लेकिन मरने पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। यदि तुम अपने प्रियतम को पाना चाहती हो तो अपने जीवन को कर्त्तव्य की राह पर मोड़ दो। मनुष्य के कर्त्तव्य केवल प्रेम तक ही नहीं सीमित हैं। वह भी तो तुम्हें सामाजिक सुधार तथा अन्य कार्यों में साहस के पग उठाते हुए देखना चाहता था। तुमने एक बार उसे वचन दिया था कि तुम अपने जीवन को सामाजिक सुधार के लिए बलिदान कर दोगी, वह भी शायद ऐसा ही कर रहा है। उसे सुखों से नहीं दुखों से प्यार है।"

"ज्योतिषी जी मैं वचन देती हूँ कि अब ऐसा ही करूँगी किन्तु एक बार उन्हें जी भर कर देखना चाहती हूँ"—प्रेमा ने बड़े ही दयनीय शब्दों में कहा।

"तुम यदि उससे सच्चा प्रेम करती हो, तो तुम्हें वह जीवन के प्रत्येक कार्य में दिखाई पड़ेगा। प्रत्येक चित्र में उसका ही चित्र दिखाई देगा। मजनू जब लैला की याद में परेशान था तो उसे प्रत्येक स्थान, प्रत्येक, फूल, प्रत्येक कली में लैला की ही सूरत दिखाई पड़ती थी। वह तुम्हारे साथ छाया की भांति लगा रहेगा। तुम्हें मेरे रूप में भी रमेश दिखाई पड़ेगा।"

यह शब्द सुनते ही प्रेमा विस्मित सी ज्योतिषी के मुख की ओर अपने सकरुण नेत्रों से देखने लगी। उसे ऐसा लगा जैसे रमेश ही नकली दाढ़ी मूछें आदि लगाये उसके सामने खड़ा हो। उसकी बोली आदि से सन्देह तो उसे पहले ही हो गया था, किन्तु इस समय उसे ऐसा लगा जैसे सचमुच ही रमेश उसके सामने खड़ा हो। उसके मुख से एकायक "रमेश" निकल गया। ज्योतिषी के वेष में रमेश का प्रेम छलक उठा। वह भी अपने को सम्हाल न सका। ज्योतिषी के वेश की मर्यादाएँ तोड़कर वह रमेश के रूप में प्रकट हो गया। यह इतना करुणाजनक दृश्य था कि फोटोग्राफर की आँखों से भी आँसू छलक उठे। उसके दाढ़ी-मूछें हटाते ही प्रेमा करुणाजनक स्वर में कह उठी—"रमेश! मुझे क्षमा कर दो। मैंने

वास्तव में तुम्हें धोखा दिया, किन्तु मैं तुम्हारी ही हूँ और तुम्हारी ही रहूँगी। मुझे अपने चरणों की दासी बना लो। उसे अपनी गोद में सम्हालते हुए वह बोला—"प्रेमा तुम्हारे प्रेम को मैं मिटाकर भी नहीं मिटा सका हूँ, लेकिन अब मैं तुम्हारा होकर भी तुम्हारा नहीं हो सकता। मेरी आत्मा पिंजड़े में बन्द पंछी की भाँति बन्दी है। मैं शरीर से तुम्हारा नहीं हूँ, किन्तु मन से तुम्हारा ही हूँ। अगर तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम है तो तुम मुझे भूलकर मेरी आत्मा को दीन-दुखियों आदि की सेवा में देखो। वहीं पर मेरी आत्मा भटक रही है। क्या तुम इस कर्त्तव्य को पूरा करोगी?"

"तुम जो कुछ भी कहोगे उसे पूरा करूँगी। लेकिन···"

"लेकिन को भूल जाओ, प्रेम एक त्याग और तपस्या है। मैं जी नहीं सकता था; किन्तु तुम्हारे मिलन की एक कामना रखकर जीवित रहा। मुझे अपने आंसुओं के आँचल की ओर न खींचो, कर्त्तव्य की वेदी पर ही मेरा बलिदान होने दो। मैं भूलकर भी तुमको भुला नहीं सकता।"

"मुझे अपने साथ रखलो अपनी फिल्म कम्पनी में रखलो।"

"यह सम्भव नहीं। तुम इस राह की ओर अपनी चाह को मत मोड़ो। सिनेमा का जीवन कोई जीवन नहीं है। वहाँ केवल वाह्याकर्षण हैं। ऐसी दल-दल में जाकर अपने कर्त्तव्य की निर्मम हत्या न करो। मैंने इस लाइन को अपनी इच्छा से नहीं अपनाया है, एक उद्देश्य के लिए। मैं इसकी आमदनी का उपयोग भी समाज-सेवा तथा मानव-हित के लिए करूंगा। तुम सामाजिक सुधार तथा मानवता की भलाई के लिए कटिबद्ध हो जावो, यही भूल के प्रायश्चित की अन्तर्ध्वनि है; यही प्रेम की सच्ची पुकार है। मैं तुम्हें मिलूंगा, इस जन्म में भी और उस जन्म में भी। अपने उठते हुए प्रेम के तूफान को कर्त्तव्य की राह पर मोड़ दो। जवानी के उठते हुए उफान को साधना के छींटे से रोक दो।" परिवर्त्तन बाबू यह कह कर पुनः दाढ़ी और मूंछें लगा कर चल दिये।

प्रेमा की दर्द भरी ध्वनि से एक गाना फूट निकला—

जाते हो चले जाओ मगर भूल नहीं जाना।
तेरी याद ही है अब जीने का बहाना।
अपने हो मगर फिर भी पराये हो आज तुम।
सपने की तरह पास में आये हो आज तुम।
आँसू में बदल जायेगा रंगीन जमाना।
तुमसे न शिकायत है मेरी, कुछ न गिला है।
इक भूल हुई जिसका ये अन्जाम मिला है।
अब दर्द ही होगा मेरे जीवन का तराना।
जाते हो चले जाना मगर भूल नहीं जाना।

परिवर्त्तन बाबू उसके इस दर्द भरे गाने को सुनते रहे तथा फोटोग्राफर फोटो लेता रहा और उसने टेप रिकार्डर पर उसकी ध्वनि भी भर ली। परिवर्त्तन की आँखों में आँसू आ गये। एक ओर उसका कर्त्तव्य खींच रहा था दूसरी ओर प्रेम की हृदयद्रावक पुकार। उसके उत्तर स्वरूप उसके मुख से भी कुछ पंक्तियां निकल गयीं—

यों प्यार की आवाज न दो मुझको चले जाने दो।
तकदीर के हाथों से अभी और छले जाने दो।
इस दर्द की गोदी में ही सारी उमर जीना है
कर्त्तव्य समझ करके मुझे प्यास अभी पीना है
तकदीर को रोने से कोई काम नहीं बनता है
इक दर्द लिए दीप कोई सारी रात जलता है।

इसके बाद परिवर्त्तन बाबू अपना वास्तविक वेष बना कर घर की ओर अपने अन्य साथियों सहित चल दिये। प्रेमा भी उनके साथ-ही-साथ उसके घर पर गयी। बड़ी देर तक परिवर्त्तन बाबू और प्रेमा में अपने-अपने प्रेम के स्पष्टीकरण के लिए बातें होती रहीं। घर से फिर वे विकल के यहाँ चल दिये। विकल रमेश को देखते ही प्रसन्नता से उछल पड़ा। सुषमा के हृदय में भी हर्ष की लहर दौड़ गयी। उसने रम्मू को भी खूब प्यार किया तथा विभाकर को भी खूब चूम-चाटकर प्यार किया। विकल और

सुषमा की कितनी ही उसने उलाहना सही, किन्तु जीवन के रहस्य को नहीं बताया क्योंकि वह प्रेमा का चरित्र उन लोगों की दृष्टि में गिराना नहीं चाहता था। इस कारण उसकी दूसरी शादी को जानकर विकल तथा प्रेमा को उससे बड़ी खिन्नता हुई। वह उस रात वहीं रहा, किन्तु दूसरे दिन बम्बई के लिए चल पड़ा। सब लोग उसे स्टेशन पर बड़े स्नेह से भेजने गये। प्रेमा बड़ी उदास हो रही थी उसे रमेश को बम्बई जाते हुए देखकर बड़ी रुलाई-सी आई, किन्तु आँखों के आँसू रोककर उसने उसे विदा किया। कई दिनों तक उसकी दशा बड़ी खराब रही किन्तु उसने रमेश को वचन दिया था कि वह अपना जीवन कर्त्तव्य की राह पर ही मोड़ देगी। अतः उसने अपनी व्यथा को धैर्य्य से थाम कर सामाजिक सुधार की ओर पग बढ़ाया। उसने प्रतिज्ञा कर ली जब तक वह समाज से वेश्यावृत्ति का निरोध न कर लेगी, चैन की साँस न लेगी।

७

उसके इस कार्य में सुषमा ने भी अपना सहयोग दिया यद्यपि उसे एक बच्चे की माँ तथा एक बच्चे की भाभी होने का भी उत्तरदायित्व निभाना था। वे वेश्याओं और विधवाओं के जीवन में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील हो गयीं।

उन्होंने वेश्याओं से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किए तथा उससे वेश्या होने के कारण पूछे और उन्होंने बताया कि करौलबाग में उन्होंने वेश्याओं के सुधार के लिए तथा विधवाओं के सुधार के लिए एक स्कूल खोला है जिसमें किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता; उन्हें वहाँ उचित कार्य मिल सकता है। दूसरे दिन से विधवाओं और वेश्याओं का ताँता लगने लगा। वहाँ पर प्रारम्भ में तो विशेषकर वेश्याएँ तथा विधवाएँ यही सोच कर गयीं कि उनका आर्थिक लाभ किसी अच्छे ढँग से होगा। उनमें से कोई बंगालिन, कोई मराठिन, कोई पंजाबिन, कोई गुजरातिन, कोई मुसलमान, कोई क्रिश्चियन और कोई ऐंग्लो इण्डियन थी। वहाँ पर जाकर उन्हें ऐसा लगता जैसे अँधेरे से निकलने के लिए कोई किरण मिल गयी हो। प्रेमा जब किसी से स्नेहपूर्वक उनकी सहृदया बनकर पूछती—"बहन, तुमने जीविका के लिए यह व्यवसाय क्यों अपनाया ?" तो किसी का उत्तर होता—'रोटी पेट का कोई अन्य रास्ता न था।' कोई कहती कि वह धोखे से भगा लायी गयी। कोई घर में परतंत्र रहने का कारण बताती। कोई अपने विधवापन को उसका कारण कहती, कोई जवानी के जोश को न रोक सकने का कारण बताती। किसी ने घर की ताड़नाओं के कारण ऐसा किया। किसी ने अपने पति के आचरण भ्रष्ट होने अथवा शराबी होने की आदत न छुड़ा सकने के कारण यह पेशा अपनाया। किसी ने

समाज की उपेक्षिता होने के कारण ऐसा किया। इस प्रकार प्रत्येक वेश्या ने अपनी-अपनी विवशता बतलाई।

कुछ को छोड़कर प्रायः सबने ही पेट की समस्या का कोई और उपाय न देख कर इस व्यवसाय को अपनाने की बात अवश्य कही। कुछ के यहाँ यह खानदानी पेशा था, यह भी पता चला।

वे अपनी बातों से प्रत्येक को प्रभावित कर लेतीं। "बहन संसार में पेट ही सबसे बड़ी वस्तु नहीं है। यदि पेट की समस्या का हल करने का रास्ता कुपंथ ही है तो इससे मर जाना अच्छा है। होठों पर लगी हुई लिपस्टिक, गुलाबी तथा श्वेत पाउडर, बढ़िया साड़ियाँ, सैंडिल, रेशमी दुपट्टे आदि से ही शरीर की शोभा नहीं बढ़ती। मनुष्य के शरीर की शोभा तो उसके आचरण और उत्तम विचार हैं। यदि ऐसा न हो तो इन्सान और नाली के कीड़ों में अन्तर ही क्या रह जाये। जो अपने पेट के लिए उचित परिश्रम से सूखी रोटी ही कमा सके, उसकी वे सूखी रोटियाँ किसी के अनुचित परिश्रम से कमाई हुई खीर-पूड़ी से अच्छी हैं। यदि तुम्हारे सामने पैसे की ही समस्या थी तो छोटे-से-छोटा काम कर लेती जो इतना नैतिक स्तर से गिरा न होता। रूखी रोटियाँ खाकर दिन बिता लेती। यदि पुरुषों की ताड़ना इसका कारण थी तो उनके विरुद्ध आवाज उठाती। यह वही देश है जहाँ की नारियाँ अपने सतीत्व और अच्छे आचरण की रक्षा के लिए प्राण दे देना तक स्वीकार कर लेतीं थीं, आज वहीं पर इतनी अनैतिकता स्त्रियों में आ गई है। बहनों, हमारी स्वतंत्रता की यह आर्त्त पुकार है कि आप लोग चरित्र और कर्मों की उज्ज्वलता के लिए अपने जीवन के सुख और आनन्द को छोड़कर, कष्टों को साहस से चूम कर उचित मार्ग की ओर अग्रसर हो जाओ। कर्त्तव्य की बलि-वेदी पर आत्म-समर्पण कर दो। संसार की अबला जाति को सबला बनाने के लिए प्रयत्न-शील हो जाओ। हमें इस बात की शपथ लेनी चाहिए कि इस प्रकार के कीचड़ में फँसी हुई स्त्रियों को मिलकर निकालने के लिए हम जीवन उत्सर्ग कर देंगी।"

प्रेमा और सुषमा के इस प्रकार के विचारों से अनेक वेश्याएँ प्रभावित हो गयीं और उन्होंने अपने को उस मार्ग से अलग करके सद्मार्ग की ओर आवृत्त कर लिया सरकार तथा समाज के सहयोग से यह स्कूल इस प्रकार की स्त्रियों को रहने तथा जीविकोपार्जन के लिए अन्य कार्य सीखने का सहयोग देता रहा। उन्होंने वेश्याओं और विधवाओं में सुधार की चिनगारी फूँक दी। वेश्याओं के केन्द्रों में उनका अभाव-सा होने लगा और इस कारण उनके एजेण्टों का कार्य ढीला पड़ गया। वे लोग प्रेमा तथा सुषमा के जीवन के घातक बन गये, किन्तु फिर भी वे अपने लक्ष्य से न डगमगाईं। कितनी ही वेश्याएँ उस स्कूल में आकर सिलाई, कढ़ाई, बुनाई तथा अन्य प्रकार की दस्तकारी के कार्य सीखतीं थीं। वे निर्भय थीं और सोचती थीं कि शुभ कार्यों की पूर्ति में मनुष्य के बलिदान ही उसे अमरत्व प्रदान करते हैं। यही सोचकर वे निःसंकोच होकर अपने-अपने कार्य में संलग्न थीं। स्कूल उत्तरोत्तर उन्नति करता गया। उसके द्वार पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था—"धन के नाम पर प्रेम बेचना पाप है, शुभ कार्य तथा अपने कर्तव्यों के पालन से ही मानव, मानव बनता है," "ज्ञान ही सारे सुखों की कुंजी है"; "दूसरों का दुख अपने दुख से बढ़कर है"; "मनुष्य की सेवा में मरने वाला व्यक्ति कभी नहीं मरता।"

सुषमा तथा प्रेमा को मार डालने के विचार से वेश्यागृहों के गुण्डे चक्कर लगाते रहे किन्तु उन्हें सफलता न मिली, उनकी योजनाएँ फिर भी बढ़ती रहीं। सुषमा तथा प्रेमा ने स्कूल पर कोई आँच न आने देने के लिए पुलिस का भी यथोचित प्रबन्ध कर लिया था। वेश्यागृहों के एजेण्टों और मालिकों ने मिलकर इनको मार डालने वालों का इनाम एक हजार से बढ़ाकर पाँच हजार कर दिया था। सुषमा को अपनी जान की चिन्ता न थी, किन्तु बच्चे की ममता अवश्य थी। विकल और रम्मू परिवर्तन बाबू के साथ बम्बई चले गये थे।

प्रेमा परिवर्तन बाबू के शब्दों का पूर्णतया पालन करती थी। उसने अपने भावुक हृदय को कठोर कर लिया था—

कोमल प्राण कठोर बन गये घात व्यथा की सहते-सहते ।
नीर स्वयं पाषाण बन गया पाषाणों में बहते-बहते ।

उसे जब किसी क्षण विरह का झकोरा प्रवल वेग से लगता तो वह उसे साहस से झेल लेती और परिवर्त्तन बाबू के ये शब्द याद करने लगती जो वह अन्तिम समय में कह गये थे । सुषमा के हृदय में विकल का प्रेम तथा रम्मू का स्नेह पाने की भावना कभी-कभी इस प्रकार अँगड़ाई लेने लगती जैसे समुद्र में ज्वार भाटा आ रहा हो । कभी-कभी उसका मन यह भी करता कि वह कर्त्तव्य की दीवारों को तोड़कर प्रेम के उपवन में बैठकर थोड़ी देर हृदय को शांति दे, किन्तु इन सबको वह किसी-न-किसी प्रकार सहन कर लेती । विकल तथा रमेश के पत्र आते ही उनकी व्यथा को कुछ आसरा और शांति प्राप्त हो जाती। सुषमा कभी-कभी यह सोचती भी कि वह बम्बई चली जाये किन्तु वह यही सोचकर रुक जाती कि प्रेमा का अकेला जीवन और अधिक दुष्कर हो जायेगा ।

परिवर्तन बाबू अपने चल चित्र में सहयोग देने के लिए विकल को भी अपने साथ ले आये थे । रम्मू भी विकल के साथ-साथ गया था । परि-वर्त्तन बाबू को रास्ते भर प्रेमा की स्मृति बड़े वेग से आती रही; किन्तु सबके साथ में होने से वह कुछ इसे भुलाये सा रहा । विकल के साथ बहुत बातें हुईं । दोनों ही अपने-अपने जीवन में आने वाली अनेक घट-नाओं तथा बातों की चर्चा करते रहे ।

बम्बई पहुँचने पर परिवर्त्तन बाबू ने शिमली तथा अन्य मित्रों से विकल का परिचय करवाया । वह परिवर्त्तन बाबू के साथ ही रहने लगा तथा उसने यहाँ की आमदनी अधिक देखकर अपनी नौकरी के लिए त्याग-पत्र भेज दिया । परिवर्त्तन बाबू का बनाया हुआ चलचित्र तैयार हो गया था । इसे उसने तन-मन-धन से मौलिक ढंग से तैयार किया था । जीवन की अनेक करुणाजनक घटनाओं के होते हुए भी चलचित्र आदर्श-वादी तथा मानव जीवन में सुधार का मन्त्र फूँकने वाला था । उसने इसके अन्तर्गत बहुत सी सामाजिक तथा राजनैतिक और आर्थिक

समस्याओं को लिया था, किन्तु फिर भी सेन्सर बोर्ड ने उसे स्वीकृत न किया।

परिवर्त्तन बाबू के हृदय पर एक तो वैसे ही प्रेमा के विरह की असीम वेदना थी, दूसरे चलचित्र के अस्वीकृत हो जाने से उसके सारे प्रयत्न और साधना पर पानी फिर गया था। उसका हृदय सेन्सर बोर्ड की इस निर्दयता से टूट सा गया। उसको सबसे बड़ा दुख था कि वह करुणालय की स्थापना न कर सकेगा। यह उसके जीवन की एक महान आकांक्षा थी। उसने चलचित्र बनाने के पूर्व ही इस बात का संकल्प किया था कि वह इसकी अधिकतम आय का उपयोग करुणालय की स्थापना में लगायेगा। बम्बई में भिखारियों के झुंड, दीन और अनाथों की पीड़ा। बेकारी से अक्सर नवयुवकों के आत्महत्या कर लेने के समाचार सभी उसके मस्तिष्क को बोझिल किये रहते थे। वह जीवन की किसी प्रसन्नता से प्रसन्न न होता। इसका जीवन वेदना से परिपूर्ण उपन्यास की भाँति हो गया था। प्रत्येक क्षण उसके पास किसी-न-किसी वेदना का ही डेरा लगा रहता था।

करुणालय की स्थापना वह चन्दा एकत्र करके अथवा अन्य किसी प्रकार से नहीं करना चाहता था। वह उसकी स्थापना अपनी गाढ़ी कमाई से ही करना चाहता था। क्योंकि उसका अनुभव था चन्दा लोग मानव की भलाई अथवा अपने कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर नहीं देते। सोचने की बात है जो सदैव जनता के शोषण को ही अपना मूलमन्त्र समझता हो, दूसरों का रुधिर पीकर ही अपने सुखों की सामग्री एकत्र करता हो, वह परोपकार या धार्मिक कार्यों में क्या अभिरुचि लेगा ? लेकिन उसकी परोपकारिता अथवा धार्मिक कार्यों के लिए उनके नाम के आगे गजों लम्बे विशेषण अवश्य जोड़े जाते हैं और जो वास्तव में परोपकार करते हैं, उनका नाम समाज कृतघ्नता की नींव में २०० फीट नीचे डाल देता है। यही तो है हमारे समाज की विडम्बना। प्रासाद की गगनचुम्बी चोटियों के वैभव की सराहना सभी करते हैं, किन्तु उसको

अपनी छाती पर साधने वाले नींव के रोड़ों की सराहना कौन करता। चन्दा लेने वालों को विवशतः उन्हीं लोगों की प्रशंसा करनी पड़ती है जो वास्तव में उसके पात्र नहीं हैं। जनता भी उसी प्रकार के व्यक्तियों की प्रशंसा करती है, जिनके कुकर्मों को, यश की चद्दर में ढँक दिया जाता है। जनता की यह मनोवृत्ति को सोचकर उसे याद आई—एक भेड़िया किसी आदमी को न देखकर एक गड़रिये की तीन भेड़ों पर झपटा और उनमें से एक मारकर खा गया दूसरी को पंजा लगाकर घायल कर गया तथा तीसरी बिलकुल छोड़ दी। जब वह आया तो उसने एक भेड़ जीवित देखकर तथा एक भेड़ केवल घायल देखकर ईश्वर को धन्यवाद देने के साथ-साथ उस भेड़िये को भी धन्यवाद दिया जो कम-से-कम उसकी दो भेड़ें तो छोड़ गया। वह सोचता था अगर कोई और भेड़िया होता तो कदाचित् एक भी जीवित न छोड़ता। लेकिन उसको यह पता न था कि वह तीसरी भेड़ खाता भी तो कैसे खाता। उसके पेट में कोई रबड़ का इतना बड़ा तो थैला था नहीं कि जितना चाहता उतना भर लेता। जितना वह खा सका उसने खाया और जितना पुनः अवसर मिलेगा उतना पुनः खायेगा। ठीक इसी प्रकार ये दीन दुखियों के पालक उनके पालक नहीं हैं। जितना ये उनका शोषण कर सकते हैं, करते हैं और जो उनकी सामर्थ्य के बाहर होता है उसे वे छोड़ देते हैं ताकि आप उनकी अमानवता पर भी उनके कृतज्ञ बने रहें। ये मन्दिर, ये गिर्जाघर, ये मस्जिदें क्या मनुष्य की सेवा के लिए बनवाई गयी हैं ? ये तो सब उनके शोषण के प्रलोभन हैं। जिस प्रकार कोई बधिक बकरे का गला काटने के पहले उसे बढ़िया वस्तुयें खाने को देता है। जिस प्रकार कोई बहेलिया चिड़ियों को फँसाने के लिए जाल के नीचे दाने डाल देता है, ठीक उसी प्रकार से ये धनिक लोग दीन और दुखियों की सेवा करते हैं।

हमारा समाज भी क्या है ? एक व्यक्ति को पेट भर भोजन भी न मिले फिर भी दीन, नीच तथा पतित आदि के विशेषणों से विभूषित

किया जाये। दूसरी ओर मनुष्य का शोषण करने वाले व्यक्तियों को महान् बताया जाये। यही हैं हमारे समाज के श्रद्धा से नतमस्तक किये जाने वाले नियम।

लेकिन प्रश्न तो यह उठता है जिनके लिए समाज में कोई ऐसे अन्याय और जघन्यता के विरुद्ध आवाज उठाने का प्रयत्न करता है, क्या वे उसकी आवाज के पीछे चलने को तत्पर हैं? जिनके सूखे हुए गालों पर कोई उनके अधिकारों की सुषमा बिखराना चाहता, उनका आनन्द उन्हें वापस दिलवाना चाहता है, क्या वे स्वयं भी उसके लिए चाहते हैं? शायद चाहते हैं, संघर्ष से नहीं, उनकी दया की भीख माँगकर। ये हिन्दुस्तान की गायें हैं जो खूँटे पर बँधे-बँधे ही मरेंगी और मालिक को पेट भर दूध देंगी। उन्हें जो खोलने का साहस भी करेगा तो उसके पहले ही सींगें भोंक देंगी।

परिवर्त्तन बाबू इन सब बातों को जानकर भी अपने लक्ष्य के लिए प्रयत्नशील थे, किन्तु चलचित्र के अस्वीकृत हो जाने से उनका हृदय टूट-सा गया था। वह निरुत्साहित से हो गये थे, किन्तु फिर भी उन्होंने अपने धैर्य को सँभाला। उनके चलचित्र के अस्वीकृत होने का कारण चलचित्र का स्तर आदि नहीं था बल्कि कारण था कि वह अन्य डाइरेक्टरों की भाँति घूस नहीं दे सके थे। शिमली के पिता ने घूस देकर उसे पास करवाने के लिए भी कहा, किन्तु परिवर्त्तन बाबू ने मना कर दिया। उनके हृदय में अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने के विचार उमड़ रहे थे। उन्होंने संकल्प कर लिया कि वह इसके विरुद्ध अवश्य आन्दोलन करेंगे। जनता के सामने चलचित्र दिखाया जायेगा ताकि वे भी समझ सकें कि सेन्सर बोर्ड कितना न्याय करती है।

दूसरे दिन सेन्सर बोर्ड के सामने विकल तथा शिमली, परिवर्त्तन बाबू तथा शिमली के पिता और उसके अन्य समर्थकों का ताँता लगा हुआ था। सबके हृदय में आज अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का जोश उमड़ रहा था। कुछ कायर प्रकृति के लोग उसे वहाँ भी यही सलाह दे रहे थे कि वह किसी प्रकार से घूस देकर चलचित्र स्वीकृत करवा ले

व्यर्थ का विवाद बढ़ाने से क्या लाभ।

किन्तु ऐसी शिक्षा देने वालों को उसने मुँह तोड़ उत्तर दिया—"घूस लेने वाले से अधिक दोषी घूस देने वाला है। वह अपने स्वार्थ के लिए सारे देश के साथ गद्दारी करता है।"

उसे हृद रोग का दौरा प्रारम्भ हो गया था, किन्तु उसने अपना साहस नहीं तोड़ा था। उसने अपनी निर्भीक वाणी में सब समर्थकों और साथियों के बीच में आकर एक भाषण दिया—"साथियों, मैंने एक चल-चित्र बनाया था। वह अपनी जेब ही नहीं भरने के लिए, बल्कि यह सोचा था कि इसके धन से दीन और दुखी व्यक्तियों के जीवन में कुछ सहयोग दूँगा, लेकिन घूस न दे सकने के कारण वह अस्वीकृत कर दिया गया है। यह मेरे साथ ही नहीं सारे देश के साथ गद्दारी है। आप लोगों से मेरा यही निवेदन है कि आप लोग उनसे स्वीकृति लेकर उसे देखें तथा यदि आप लोगों को यह दिखाई पड़े, कि मैंने उसके द्वारा किसी प्रकार की अनैतिकता का प्रचार किया है तो चलचित्र की क्या बात मेरी गर्दन तक उड़ा दी जाए। यह चलचित्र मेरा नहीं है, जनता का है, आप लोगों का है। मैंने संकल्प किया है कि इसकी आय का धन अधिकांश रूप से जनता की सेवा में व्यय होगा। इस चलचित्र में मैंने घूस आदि की बात अवश्य कही थी लेकिन क्या यह आपके सामने नग्न सत्य नहीं है? कोई अपने कुकर्मों को अपने अधिकार की चादर से ढकना चाहता है। पर्दे-नशीन कुचरित्र स्त्री की भाँति अपनी अनैतिकता को छिपाकर ही रखना चाहता है। किसलिए? कि जनता उसे वोट दे। किसलिए? कि जनता उसकी महानता के गुण गाये। क्या यही है हमारे देश का प्रजातन्त्र? हर दर्द भरी आवाज को गले से निकलने के पहिले ही गला समेत उसे घोंट दिया जाये। आज समाचारपत्रों पर इसलिए पाबन्दी लगायी जा रही है कि इन बातों के उपरान्त भी जनता सरकार के दोषों के विरुद्ध कुछ न कह सके। जो लोग गाँधी और जवाहर की आँख मूँद कर जय न बोलें, उन्हें बलि का बकरा बना दिया जाये। कोई हमारे गालों पर तमाचे पर तमाचा

मारता रहे और सिसकने पर भी रोक लगायी जाये ।

साथियों, यदि तुम्हें देश में वास्तविक प्रजातन्त्र लाना है तो अन्याय और अनैतिकता की जड़ को मिटाना ही पड़ेगा। प्रजातन्त्र का गला घोंटने वालों का सामना करना पड़ेगा । हमने स्वतंत्रता की लड़ाई मिलकर लड़ी है । कल तक हमने विदेशी दानवों के विरुद्ध संघर्ष किया था । अब हमें उन देशी दानवों के विरुद्ध करना है जो हमारे देश के प्रजातन्त्र के नाम पर कलंक है । जो मनुष्य के मौलिक अधिकारों का हनन् करते हैं ।"

परिवर्त्तन बाबू के इन शब्दों ने जनता में जान फूँक दी । कितने ही निराश व्यक्ति थे, जिनकी फिल्में भी इस प्रकार के अन्याय की आग में भस्मसात् कर दी गई थीं, इसके विरुद्ध विद्रोह करने का संकल्प कर लिया । उनके निराश हृदयों को मानों नवीन चेतना प्राप्त हो गई हो । इस आन्दोलन को बढ़ते देखकर अधिकारी वर्ग में खलबली सी मच गई। पुलिस को फोन पर फोन किये गये । तत्काल ही पुलिस आ गयी । उसने भीड़ को तितर-बितर करने के लिए अश्रु गैस का प्रयोग किया । लोगों की आँखों से ठप्‌टप्‌ आँसू गिरने लगे । कितनों की आँखें तो बिल्कुल ही लाल हो गईं । बेंतों के पड़ने से कितनों की हड्डियाँ तक टूट गईं । इस बीच में कुछ कायर लोग भाग भी गये, लेकिन जिनमें अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने का दृढ़ विचार हो गया था, वे लोग इतनी यातनायें झेलकर भी पीछे न मुड़े । इसमें ऐसे लोग भी थे जिन्होंने लड़ाई झगड़े के नाम पर अपने मकानों की खिड़कियाँ तक बन्द कर ली थीं । यह केवल परिवर्तन बाबू के चलचित्र न पास हो सकने का ही प्रश्न न था बल्कि यह सम्पूर्ण जनता का प्रश्न था । जिन्होंने जीवन में एक बेंत भी नहीं खाया था, आज अपने को इस पुण्य यज्ञ की आहुति बना रहे थे । उनके हृदय में यह बात जाग चुकी थी कि उन्हें अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए अयोग्य अधिकारियों से अन्तिम क्षणों तक संघर्ष करना है। जब तक बकरियाँ अपने को निर्बल समझेंगी, भेड़िया उन्हें खायेगा ही । संसार पत्थर की भाँति कठोर है । कोई भी अपने सुख और आनन्द को दूसरे के दुख के लिए

बाँटने को तत्पर नहीं है। उनका विचार था कि कोई भी सरकार अनुचित कार्यों पर उतारू होकर अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। चाहे जितने उसके पास भयंकर अस्त्र-शस्त्र हों—उन्हें गाँधी जी का यह सिद्धांत याद था। कोई अन्याय के विरुद्ध भड़कती हुई आवाज को कब तक दबायेगा। सहने की एक सीमा होती है और कहने की भी एक सीमा होती है। मनुष्य को अपने अधिकार पाकर अपने कर्त्तव्य को नहीं भूलना चाहिए। परिवर्त्तन बाबू विशेष रूप से उन्हें यही तो दिखाना चाहते थे कि किसी को, समृद्धि और सुखों की गोद में जाकर, दीन और दुखियों का दुखदर्द नहीं भूलना चाहिए। आकाश में उड़कर जमीन पर रहने वाले व्यक्तियों पर नहीं थूंकना चाहिए।

यह बात सरकार के कानों तक पहुँची और वहाँ के कुछ अधिकारियों का स्थानान्तर भी हुआ। सरकार को यह विदित हुआ कि कुछ ऐसे अधिकारी वहाँ पर अवश्य हैं जो इस प्रकार के कार्य करते हैं, किन्तु जब तक कोई उन्हें पकड़वा न दे तब तक वह उनके सम्बन्ध में कोई पग कैसे उठा सकती। लेकिन घूंस लेने वाले भी तो बहुत हाथ सम्भाल कर कार्य करते हैं। ऐसी अवस्था में कुछ अधिकारियों का स्थानान्तरण ही हो सका।

नये अधिकारियों के आने से करुणा प्रोडक्शन तथा सेन्सर बोर्ड के बीच एक समझौता सा हुआ और उन्होंने एक कुछ दृश्यों को काटकर उस चलचित्र को स्वीकृत कर लिया।

चल चित्र को प्रदर्शित होने का अधिकार तो प्राप्त हो गया, किन्तु उस दिन के संघर्ष से परिवर्त्तन बाबू को हृदयरोग का दौरा आरम्भ हो गया था। अनेक डाक्टरों का इलाज हुआ, किन्तु कोई विशेष लाभ न हो सका।

कुछ दिनों से परिवर्त्तन बाबू को ऐसा लगा रहा था जैसे वह बिल्कुल ही मृत्यु के सन्निकट हैं। शादी के उपरान्त परिवर्त्तन बाबू के पारिवारिक जीवन को कुछ सुखमय बनाने वाली एक लड़की भी हो गई थी।

शिमली ने इसका नाम आशा रखा था। वह अब चलने फिरने भी लगी थी और अपनी तुतली बोली से कभी-कभी उनकी चिन्ताओं के आवरण को हटा देती थी, किन्तु फिर भी परिवर्त्तन बाबू का जीवन सुखी न बन सका था।

इधर कुछ दिनों से परिवर्त्तन बाबू की दशा काफी खराब सी हो गयी और उन्हें ऐसा लगा कि जैसे वह अपनी अन्तिम साँसें गिन रहे हों। इधर प्रेमा के प्रेम और विरह से ओतप्रोत पत्र पाकर उनकी मानसिक वेदना और भी बढ़ गयी थी। अबकी बार उत्तर में उन्होंने प्रेमा के देखने की अभिलाषा से बुला लिया था क्योंकि उनका विचार था शायद वह अपनी अन्तिम साँसों में भी उसे न देख सकेंगे—

प्रिय प्रेमा,

मेरे जिन्दगी के दीपक का तेल अब समाप्त होने की अवस्था में है। इससे जो भी प्रकाश की किरणें अब तक बिखरती रहीं, शायद वे अब न बिखर सकेंगी। मेरी इच्छा है कि इसके बुझते-बुझते मैं अपने अतृप्त और मलिन नेत्रों से तुम्हें जीभर कर देख लूँ। तुम्हारे जीवन में कर्त्तव्य और कर्मठता की प्रेरणा साकार हो सके, इसके लिए मेरी आत्मा मरते समय भी प्रसन्न रहेगी। मुझे दुख है कि मैं विवशता की श्रृंखलाओं को तोड़कर भी नहीं तोड़ सका। तुम्हें अपनाकर भी नहीं अपना सका।

प्रेमा, मैं नहीं जानता कि वहाँ पर तुम किन परिस्थितियों में हो। मेरे अन्तिम क्षणों तक आ सकोगी या नहीं, लेकिन मेरे मन की अतृप्त चाह तुम्हें देखने के लिए प्रतीक्षा की घड़ियाँ गिन रही हैं।

प्रतीक्षा की अन्तिम घड़ियों में
तुम्हारा अपना ही—
रमेश

इन दिनों प्रेमा और सुषमा दोनों की जान के लाले पड़े थे। परिवर्त्तन बाबू का पत्र पाते ही प्रेमा निराशा तथा दुख की आंधी से

घिर गई। उसके नेत्रों के सामने अंधेरा सा छा गया। वह उससे मिलने के लिए बेचैन हो उठी। सुषमा के हृदय में भी एक खलबली सी मच गयी। किन्तु समय ने एक ऐसी भयंकर स्थिति उत्पन्न कर दी थी कि वे दोनों विवशता की शृंखलाओं में जकड़ी हुई थीं। कई दिनों से गुंडे उन्हें मारने के चक्कर में घूम रहे थे। उनकी योजनाएँ कम न हुई थीं। वे लोग प्रतिक्षण किसी न किसी अवसर की खोज में रहते थे।

परिवर्तन बाबू का यह पत्र प्रेमा को तार सा लगा। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली। वह सोच भी नहीं पा रही थी कि क्या करे और क्या न करे। उस दिन बम्बई जाने वाली प्रातःकाल की गाड़ी जा चुकी थी। वायुयान से जाने का उनके पास किराया न था। लाख प्रयत्न करने पर भी तत्काल किराये का कोई प्रबन्ध न हो सका। सुषमा और प्रेमा ने अपनी-अपनी घड़ियाँ बेचकर भी अवसर के समय किराये का प्रबन्ध न कर पाया। उन्हें दूसरे दिन की गाड़ी का ही भरोसा करना पड़ा। शायद ईश्वर का कठोर हृदय उनकी इस परिस्थिति से करुणार्द्र हो उठा हो। उस स्कूल के संरक्षक लाला मूलचन्द्र ने अपनी कार से बम्बई भेजने का प्रबन्ध करवा दिया। उससे वे दूसरे दिन के बारह बजे पहुँच गयीं।

परिवर्तन बाबू दो दिन से सुषमा और प्रेमा के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। इस बीच में उन्हें दो-तीन बार बड़े ही भयानक दौरे आये। उनकी हृदयगति रुकते-रुकते भी न रुक सकी मानों उसे भी परिवर्त्तन बाबू से कुछ सहानुभूति सी हो गयी थी। कई बार तो ऐसा हुआ कि लोगों ने फूट-फूट कर रोना प्रारम्भ कर दिया। उन्हें बिस्तर से उठाकर जमीन पर लिटा दिया गया। डाक्टर ने इंजैक्शन पर इंजैक्शन लगाये, दवा पर दवा पिलाई और इस कारण वह मरते-मरते भी न मर सका।

सुषमा और प्रेमा के यकायक आते ही परिवर्त्तन बाबू के हृदय में आनन्द की लहर दौड़ गयी। उसकी महानतम निराशा आशा के गीत

गा उठी। उसकी मौत जिन्दगी का मधुर स्वप्न बनकर उसके सामने आ गई।

प्रेमा, सुषमा! विभाकर! कहकर वह एक महान आनन्द में डूब गया। उसके मन में एक असीम आनन्द की लहर सी उठी जो जीवन के तट पर आकर विलीन हो गयी। एक झोंका सा आया जो देखते ही देखते ओझल हो गया। एक वृहदाकार बुलबुले की भांति उठा और फिर टूट गया। सबने उसे मुस्कराते हुए देखा और उनके होठों पर मुस्कान दौड़ गयी। लेकिन तत्काल ही वह एक गहरी सी नींद सो गया जिसे कमरे की दीवारें हिला देने वाली सबकी आर्त्त वाणी भी न तोड़ सकी। अनेक अभिनेता और अभिनेत्रियाँ, मित्र, शिमली, आशा, प्रेमा, सुषमा, रम्मू और सभी रो उठे। शिमली और आशा तो इस प्रकार रो उठे मानों उन पर कोई बिजली सी गिर पड़ी हो। उनके रुदन से मानों कमरे की ईंट-ईंट रो उठी हो। काल कितना क्रूर है, सबने अपनी आंखों से आज देखा? कौन ऐसा था जिसका हृदय वेदना और करुणा से ओतप्रोत न हो गया हो। कौन ऐसा था जिस पर उदासी की काली घटा न छा गई हो? प्रेमा के मर्माहत रुदन से शिमली को और भी दुख हो गया। वह प्रेमा के विषय में बहुत कुछ जान चुकी थी। वह जानती थी कि प्रेमा का दर्द उसके दर्द से काफी बड़ा है। यही सोचकर उसने अपनी आँखों के आँसू पोंछते हुए प्रेमा को समझाया—"बहन थोड़ा धीरज धरो। जिस वस्तु पर अपना कोई अधिकार नहीं, उसके लिए क्या किया जा सकता है। हम लाख प्रयत्न करके भी उन्हें न बचा सके।"

प्रेमा के मुख से 'रमेश!' कहकर एक लम्बी चीख निकली और वह धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी। रमेश के नाम से कुछ लोग आश्चर्य में भी पड़ गये क्योंकि उसे तो यहाँ पर सब 'परिवर्त्तन' के नाम से ही जानते थे।

जिन्दगी एक ऐसी घड़ी के समान है जो कभी-कभी चलते-चलते बन्द हो जाती है तथा कोई झटका लगते ही बन्द होते-होते पुनः चलने लगती

है। ठीक यही स्थिति हृदयरोग की बीमारी से रमेश की हो गयी थी। प्रेमा की चीख, शायद उसके कानों के पर्दों को फाड़ती हुई, उसके हृदय पर इस प्रकार लगी कि उसे होश आ गया। उसके मुँदे नेत्र खुल गये। और वह 'प्रेमा' कहकर चारपाई से उठ बैठा। उसने उठकर प्रेमा के शीश को अपने हाथों से उठाकर अपनी गोदी में रख लिया। प्रेमा को भी कुछ होश सा आ गया था और वह उसे होश में लाने के लिए समझाते हुए बोला—"प्रेमा तुम मेरे लिए इस प्रकार अधीर न हो। कारावास की शृंखलाओं में रहकर भी बन्दी का मुस्कराते रहना ही कर्त्तव्य हैं। जीवन की कठोर परिस्थितियों से मुख मोड़ना इन्सान की सबसे बड़ी दुर्बलता है। अभी तुम्हें बहुत देर जागना है, अपने लिए तथा अपने कर्त्तव्य के लिए। तुम उठो, मुस्कराओ अब मैं बिल्कुल अच्छा हूं। आशा को बुलाओ।"

"वह तो तुम्हारे पास ही खड़ी है।" शिमली ने कहा और परिवर्त्तन बाबू ने उसको अपने हाथ में पकड़कर खूब प्यार किया। "आशा, तू रो रही है।" परिवर्त्तन बाबू के इतना पूछते ही आशा की व्यथा मर्माहत होकर उभर उठी। वह सिसक् कर रो उठी। इतनी देर से वह खड़ी थी। उसने अपने पिता से एक बार भी प्यार का शब्द न सुना था। सबको रोते हुए देखकर वह भी रो रही। वह उसे बड़ी देर तक चुपकारते रहे। "मैं तो सो गया था। अब कभी इतनी देर न सोऊँगा। शिमली, तुम डाक्टर को फोन करके बुलाओ, प्रेमा की दशा बड़ी चिन्तनीय है।"

"वह भी यही हैं"—शिमली ने कहा।

डा० ने तत्काल ही, बाहर के कमरे से आकर प्रेमा को दवा दी और उसे होश आ गया।

"प्रेमा तुम इतनी निराश क्यों हो? पहले की ही भाँति हँसो, मुस्कराओ। जब तुम हँसती थी तो ऐसा मालूम होता था जैसे कोई गुलाब का फूल हँस रहा हो। तुम मुस्कराती थी तो ऐसा लगता था जैसे विद्युत की किरण चमक उठी हो। अँधेरी जिन्दगी में भी उजेला छा जाता था। मैं जानता हूं तुम्हारे हृदय में कितनी वेदना है। किन्तु इस वेदना का हल

आत्मसंतोष ही है। तुम अपने धैर्य को थोड़ा सँभालो। तुम तो आज ऐसे कार्य में लगी हुई हो जिसके लिए सारी अबला जाति तुम्हारे यश के युग-युग तक गीत गायेगी। अपने लिए ही नहीं मेरे लिए तथा संसार के लिए हँसो। तुम्हारे अभिनय से 'शिमली' चलचित्र को जो सफलता मिली है, उसका भी तुम्हीं गौरव हो। तुम्हारी कीर्त्ति अमर हो, यही तो मैं चाहता हूँ। कल सब लोग चल चित्र देखने के लिए चलेंगे।" रमेश ने उसे उद्बोधन कराते हुए कहा।

प्रेमा होश में आ गयी। प्रेमा तथा परिवर्तन बाबू के होश में आ जाने से सबको प्रसन्नता हो गयी। और सब लोग प्रसन्नतापूर्वक अन्य बातें आदि करने लगे।

दूसरे दिन शाम को परिवर्त्तन बाबू, शिमली, प्रेमा, विकल, रम्मू, आशा तथा विभाकर सब लोग चलचित्र देखने के लिए चल दिये। विकल सुषमा तथा विभाकर और रम्मू एक कार में बैठे तथा परिवर्तन बाबू, शिमली और प्रेमा तथा आशा दूसरी कार में। आपेरा हाउस के सामने लोगों की अपार भीड़ लगी हुई थी। बड़े-बड़े, मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था—शिमली पिक्चर का उद्घाटन आज इसके डाइरेक्टर परिवर्त्तन बाबू करेंगे। साधारण रेट की दरें बढ़ा दी गयी थीं। साढ़े दस आने का टिकट साढ़े तीन रुपये का और इसी प्रकार अन्य रेट भी कर दिये गये। फिर भी कोई टिकट शेष न बचा था। पहले से ही दर्शकों से हाल खचाखच भरा था। भीड़भाड़ तथा गुण्डागर्दी के लिए भी पुलिस का भी यथोचित प्रबन्ध कर लिया गया था पर न जाने कौन सी अशुभ घड़ी थी जब ये लोग घर से चले थे।

दिल्ली के ये गुंडे भी प्रेमा तथा सुषमा की बम्बई आने की सूचना पाकर उसी दिन हवाई जहाज से आ गये थे। उन्हें यह भी पता चल गया था कि वे परिवर्त्तन बाबू, डाइरेक्टर आफ करुणा प्रोडक्शन, के यहाँ गयी हैं। जब उन्हें यह पता लग गया कि शिमली फिल्म का उद्घाटन करने के लिए वे कल आपेरा हाउस छै बजे जायँगे तो वे पहले से ही वहाँ

पहुँच गये । उन्होंने टैक्सी वाले को सौ रुपये देने को कहा था कि यदि वह डाइरेक्टर महोदय की कार के पीछे-पीछे अपनी टैक्सी ले चलेगा ।

इन गुंडों को अभी तक प्रेमा और सुषमा के त्याग और जीवन के विषय में ठीक से बिल्कुल पता न था और न उन्होंने उन्हें समझने की आवश्यकता ही समझी क्योंकि वे लोग तो उन्हें मारकर पाँच हजार की धनराशि प्राप्त करना चाहते थे । ये पाँच के गिरोह में आये थे । सबने चलचित्र देखा किन्तु उसको देखने के उपरान्त उनमें से दो व्यक्तियों के विचार बदल गये। वे सोचने लगे कि वे कितने बड़े जघन्य कार्य को अपने स्वार्थ के लिए करने जा रहे हैं । प्रेमा की साधना, उसके त्याग तथा स्वार्थ-रहित भावना से कार्य करने को देखकर वह अत्यंत ही प्रभावित हो गये। उसके लिए उनके हृदय में स्नेह और श्रद्धा उत्पन्न हो गयी । इन दोनों के हृदय बड़े कोमल थे किन्तु परिस्थितियों ने उन्हें कठोर बना दिया था। पेट की जठराग्नि के कारण उन्हें ऐसे जघन्य कार्य्य की ओर भी प्रेरित होना पड़ा था । वे सोच रहे थे कि वे कितने बड़े निरपराध व्यक्ति को मारने जा रहे हैं ।

चलचित्र समाप्त होते ही वे परिवर्त्तन बाबू की कार के पीछे-पीछे अपनी टैक्सी में बैठकर चल दिये । उनमें उन दो व्यक्तियों ने उन तीन व्यक्तियों को रोका जो उस कार्य को किसी भी मूल्य पर करना चाहते थे । उनके हृदय दया और स्नेह से रहित थे । वे गुंडागीरी को ही अपनी वीरता का द्योतक समझते थे और यह भी सोचते थे कि यदि इस कार्य्य में वे सफल हो गये तो पैसा मिलने के साथ उनका दबदबा भी बढ़ जायेगा । उन्होंने उन आदमियों को अपना विरोधी समझ कर उनके मुँह दबा कर गोली मार दी तथा परिवर्तन बाबू की कार पर बम फेंक दिया । विकल की कार परिवर्त्तन बाबू की कार से लगभग १ फर्लाङ्ग आगे निकल गयी थी और परिवर्त्तन बाबू की कार आपेरा हाउस से काफी दूर निकल गई थी । गुंडों वाली टैक्सी का ड्राइवर थोड़ी-सी असावधानी कर गया और वह टैक्सी परिवर्त्तन बाबू की कार से टकरा

गयी ।। तीनों आदमी तथा ड्राइवर घटना होते ही टैक्सी से जान बचाने के लिए कूदे, किन्तु प्राण खो बैठे । परिवर्त्तन बाबू और प्रेमा अगली सीट पर थे तथा शिमली और आशा पीछे की सीट पर । बम पीछे से फेंका जाने के कारण आशा और शिमली तो उसी समय अपने प्राण त्याग गई और परिवर्त्तन बाबू, प्रेमा और एक गुंडों का गोली खाया हुआ आदमी बेहोशी मे आ गया । धड़ाके का शब्द सुनकर तथा कार उलटने का शब्द सुनते ही विकल ने अपनी कार पीछे की ओर मुड़वा ली । वे तत्काल ही घटनास्थल पर आ गये । तुरन्त ही आहतोपचार गाड़ी बुलवा कर सबको अस्पताल भेजवा दिया ।

ये लोग स्पेशल वार्ड में रखे गये तथा तीमारदारी और इलाज में भी कमी न रही । किसी प्रकार परिवर्त्तन बाबू तथा प्रेमा अच्छे हो गये और वह गुंडा आदमी भी । वह भी उनके साथ-ही-साथ परिवर्त्तन बाबू के घर चला आया ।

शिमली के पिता शिमली तथा आशा की मृत्यु का समाचार सुनते ही इस संसार से कूच कर गये । उन्होने अपनी बच्ची को कितने प्यार और दुलार से पाला था, यह उनका ही हृदय जानता था । विधि के विधान पर किसी का नियंत्रण नही है, किन्तु कभी-कभी जीवन की घटनाएँ मनुष्य पर इस प्रकार प्रभाव डालती हैं कि वह अपनी विचार-बुद्धि सब कुछ खो देता है।

उनके घर का कारोबार भी रमेश के माथे आ पड़ा क्योंकि उनके कोई अन्य सन्तान न थी ।

प्रेमा और परिवर्त्तन बाबू साथ-साथ रहने लगे, किन्तु उन्हें शिमली और आशा की याद कभी-कभी बेचैन सी कर देती थी । मनुष्य किसी से प्रेम अथवा स्नेह करता है तो सौंदर्य की अपेक्षा स्वभाव और गुण उसके सबसे बड़े माध्यम होते है । शिमली एक सेठ की लड़की थी, लेकिन फिर भी उसके हृदय मे पैसे का किसी प्रकार का अभिमान न था । परिवर्त्तन बाबू की सारी शान-शौकत, उन्नति और यश सभी कुछ उसके पिता के धन पर ही आधारित थे फिर भी कभी उसने ऐसा एक क्षण भी न आने

दिया था कि जब परिवर्तन बाबू को ऐसा कुछ सोचने का अवसर मिलता। वह कुछ साँवली थी फिर भी देखने में अधिक बुरी न थी। उसने पूर्ण रूप से अपना पतिव्रत जीवन व्यतीत किया।

प्रेमा के हृदय पर भी उसने सद् व्यवहार की एक अमिट छाप लग गयी थी। वह सोचती थी कि एक स्त्री ही नहीं उससे कुछ और अधिक थी। वैसे स्त्रियां अपने पति के प्रेम को किसी अन्य स्त्री से जानकर उनसे घृणा करने लगती हैं किन्तु शिमली ने कभी प्रेमा के लिए एक शब्द भी न कहा था। यही कारण था कि रमेश ने प्रेमा से प्रेम रख कर भी शिमली की शादी के उपरान्त उससे प्रेम का शारीरिक सम्बन्ध नहीं स्थापित किया था। शिमली सोचा करती थी कि मनुष्य के जीवन के साथ-साथ कितनी ही कहानियाँ जुड़ी रहती हैं जिनके अध्याय अलग-अलग होकर भी एक ही कहानी से सम्बन्ध रखते हैं।

प्रेमा को याद आती थी कि जब वह रमेश की बेहोशी देखकर अत्यन्त दुखी हो गयी थी तब उसने कितने प्यार और सहानुभूति से उसे समझाया था। वह जानती थी कि विरह के क्षण कितने भयंकर होते हैं, फिर प्रेमा ने तो अपने को उसकी आहुति बना दिया है—यही सोचकर उसके हृदय में प्रेमा के लिए पर्याप्त स्नेह था।

आशा का तुतला-तुतला कर बोलना और स्नेह से कभी-कभी उसकी गोदी से लिपट जाना उसके मस्तिष्क के बोझिल बना दिया करते थे।

उस आदमी को परिवर्त्तन बाबू ने तथा प्रेमा ने बड़ी बड़ी मूंछो वाला कहकर पुकारना प्रारम्भ कर दिया था। उसकी मूंछें उसके सारे शरीर में अपनी विशेषता रखती थी। पहले तो उसे कई दिनों बुरा लगा, किन्तु बाद में उसे यह भज गया। वह परिवर्त्तन बाबू को शिमली तथा आशा की याद में बेचैन होते देखकर बड़ा दुखी हो जाता था। दूसरे उसे और अधिक दुख इसलिए होता था कि परिवर्तन बाबू कितने महान उद्देश्य को लेकर चल रहे हैं तथा उनकी याद से उनका हृदरोग बढ़ता ही जायेगा। जो संसार तथा समाज के लिए कुछ कर सकते हैं वह न कर

पायेंगे लेकिन उनकी व्यथा को कम करने का कोई उपाय वह न सोच पाता और वह यह सोचकर कभी-कभी अपने पाप के प्रायश्चित के लिए पगला सा उठता। वह सोचने लगता कि उसने अपने पेट के लिए देवता जैसे आदमियों का भी खून करवाया। उसके हृदय की मानवता कभी-कभी उसके प्रायश्चित के लिए झकझोरने सी लगती। वह सोचने लगता—यदि उसने पहले ही इसका विरोध किया होता तो शायद यह बात इस सीमा तक न पहुंच पाती।

उसके हृदय में कभी कभी यह बात विकराल रूप से जागृत हो उठती कि वह अपने पाप को परिवर्त्तन बाबू से कह दे तथा इसके लिए यथोचित दंड भोगे। मनुष्य जब तक अपने पाप का प्रायश्चित नहीं करता है तब तक उसकी आत्मा कलुषित बनी रहती है।

बरसात की एक अँधेरी रात थी। प्रेमा तथा परिवर्त्तन बाबू अपनी नयी फिल्म की सूटिंग के लिए बाहर गये हुए थे। बड़ी-बड़ी मूँछों वाला घर पर अकेला ही था। अकेले में मनुष्य के अनेक विचार मस्तिष्क में आते हैं। शिमली तथा आशा की मृत्यु का भयंकर दृश्य उसके नेत्रों के सामने झलकने लगा। उसे याद आया कि जब उसकी औरत साँप के काटने से मर गयी थी तो किसी ने अपनी लड़की की शादी उससे नहीं की थी। स्त्री के वियोग में ही वह मेरठ से दिल्ली चला आया। कोई काम न मिल सकने के कारण, पेट की ज्वाला को शांत करने के लिए उसे वेश्याओं की एजेन्टी करनी पड़ी। परिवर्तन बाबू के जीवन तथा चरित्र से वह काफी प्रभावित हो गया था। वह सोचता था कि जिसकी औरत तथा बच्चे की जान लेने में वह साझीदार था, उसी के वहाँ वह आज गुलछर्रे उड़ा रहा है, इससे बढ़ कर पाप क्या हो सकता है। यही सोचकर वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ सा हो गया। उसकी समझ में नहीं आ सका कि क्या करे और क्या न करे। उसने एक चिट में लिख कर रख दिया—"मैं अपने पाप के प्रायश्चित के लिए फाँसी लगाकर आत्म-हत्या कर रहा हूं।" और मेज पर खड़े होकर भीतरी छत से लटकते हुए एक लोहे के छल्ले से

अपनी गर्दन बाँध ली तथा तत्काल ही मेज को पांव से गिरा दिया। उसके पाँव मारते ही मेज बड़े धड़ाम के शब्द से जमीन पर गिर पड़ी। अचानक परिवर्त्तन बाबू और प्रेमा भी इसी समय सूटिंग से लौटकर आ गये। धड़ाम का शब्द सुनते ही प्रेमा कुछ हिचकी, किन्तु रमेश ने साहस से दरवाजे खोले। वह बाहर के दरवाजे बन्द करना भूल ही गया था। प्रेमा ने अन्दर देखा तो बड़ी-बड़ी मूंछों वाला कह कर चीख पड़ी। परि-वर्त्तन बाबू ने मेज खड़ी करके उसकी रस्सी खोली। उसके प्राण नहीं निकले थे। वह अभी छटपटा ही रहा था। लिटा देने तथा पानी पिला देने से उसे कुछ होश आया।

"बड़ी-बड़ी मूंछों वाले तूने यह क्या किया ?"

"बाबू जी, मैंने जो कुछ भी किया वह अपने पाप के प्रायश्चित के लिए किया।"

"मूर्ख, पाप का प्रायश्चित गले में फंदा डालने से नहीं होता।

"बाबू जी, मैंने इतना बड़ा पाप किया है कि जिसका प्रायश्चित बिना मौत के हो ही नहीं सकता। मैंने आपके साथ बहुत बड़ा पाप किया है।"

"मेरे साथ ! वह कैसे ?"

"मुझे यदि यह पता होता कि मैं आपके जैसे महान व्यक्ति के साथ अन्याय करने जा रहा हूं तो कदाचित ऐसा न होता।"

"इसमें तुम्हारी क्या भूल है अगर किसी अन्याय अथवा पाप करने वाले को यह पता लग जाये कि वह ऐसा करने जा रहा है तो वह कदापि ऐसा कार्य न करे। उसकी स्वार्थान्धता, उसकी आँखों पर पट्टी बाँध देती है। अपने स्वार्थ के अतिरिक्त उसे कुछ भी नहीं दिखाई देता।"

"आपसे कुछ भी छिपाते हुए मुझे ऐसा लगता है जैसे कि यह भी मैं एक पाप कर रहा हूँ। आप इन्सान नहीं देवता हैं। आपके साथ अन्याय करके मैंने जो पाप किया है उससे मैं हजारों पुण्य करने के उपरान्त भी न उऋण हो सकूंगा। मुझे यह बात हर घड़ी अखरती है कि मैंने आपके साथ पाप किया है। मुझे ऐसा लगता है जैसे कि मेरा पाप बड़ेरी चढ़ कर मुझे

प्रायश्चित के लिए पुकार रहा हो। बीबी जी तथा आशा देवी का खून मैंने ही किया।

"तुमने ?" रमेश आश्चर्य में आ गया, और कैसे !" "अच्छा सुनिये, बीबी के मरने के बाद जब मैं दिल्ली में आया तो मुझे यहां पर कोई काम न मिला। मुझे विवश होकर वेश्याओं की एजेन्टी करनी पड़ी। हमें तो गिने टके ही मिलते थे किन्तु इसके बल-बूते पर वेश्यागृहों के मालिकों ने अपने-अपने मकान तक खड़े कर लिये। जब प्रेमा देवी तथा सुषमादेवी ने वेश्या वृत्तिनिरोध आँदोलन चलाया तो जाने कितनी ही वेश्याएं सुधर गईं और मालिकों की आमदनी दिन पर दिन घटने लगी। इस व्यवसाय के आदमियों का लाभ दिन पर दिन मंदा पड़ने लगा। उसके व्यवसायियों ने प्रेमा देवी तथा सुषमा को मार डालने के लिए एक हजार से लेकर पांच हजार तक का इनाम कर दिया। हम लोगों में पाँच आदमी थे। हम लोगों ने कभी इतनी बड़ी रकम अपनी आँखों से भी न देखी थी। कभी दो रुपये मिल गये तो कभी एक और कभी चार आने ही पैसे पर दिन काटना पड़ता था। जब ये लोग दिल्ली से बम्बई आईं तो हम लोग भी उनको मार डालने के इरादे से बम आदि का प्रबन्ध करके बम्बई आये, किन्तु यहाँ पिक्चर देखने के उपरान्त हम में से दो व्यक्तियों के इरादे बदल गये और हमने यह महान पाप स्वीकार किया। जब उन तीन आदमियों का विरोध किया तो उन्होंने हमें गोली से मार दिया। इसके बाद मुझे कुछ मालूम नहीं। मैं अस्पताल से आपके घर चला आया।

यह सुनते-सुनते परिवर्त्तन बाबू तथा प्रेमा की आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली वह भी अपने को सँभाल न सका। फूट-फूट कर रो उठा। और बोला—"बाबू जी, मुझे गोली से मार दो। मैंने आपके साथ बड़ा अन्याय किया। है मुझ मरकर इसका प्रायश्चित करने दो।"

परिवर्त्तन बाबू दुखी होकर उस व्यक्ति के मनोविज्ञान को समझते रहे। उन्होंने सोचा—यह व्यक्ति पापी प्रवृत्ति का तो नहीं मालूम होता है अन्यथा इसमें इतनी सच्चाई और प्रायश्चित करने की भावना कैसे

बलवती होगी। इसीसे उन्होंने सोचा इस प्रकार का व्यक्ति समाज तथा देश के लिए अत्यंत उपयोगी होगा। यह सोच कर उन्होंने कहा—"तो क्या तुम अपने पाप का प्रायश्चित्त पाप से करना चाहते हो। आत्म-हत्या स्वयं एक पाप है, और पाप का प्रायश्चित कभी पाप से नहीं होता। यदि तुम्हें इसका प्रायश्चित ही करना है तो अपने पुण्य-कर्मों में चेतना का संचार करो। अपने पवित्र कर्त्तव्य के लिए उद्यत हो जाओ। अपने जीवन को इन्सानियत की सेवा में अर्पित कर दो। यही तुम्हारे पाप के प्रायश्चित करने का एकमात्र उपाय है।"

"बाबू जी, आप कितने दयालु हैं। आपने मुझ पर जो उपकार किया है, मैं उसका एक जन्म क्या हजार जन्म में भी ऋण न उतार सकूंगा। आप मनुष्य के वेष में देवता हैं। आप महान हैं। यही कारण है कि जब मैं आपकी आँखों में बीबी जी तथा आशा जी के वियोग के आँसू देखता हूँ तो मेरा मन कसक उठता है और मुझे ऐसा लगने लगता है कि मैं इस पाप की छाया से मुक्त होने के लिए संसार से विदा माँग लूँ। अब मेरी जिन्दगी पर मेरा किंचित् भी अधिकार नहीं है। आप जो कुछ कहेंगे मैं उसे पूरा करूँगा।" यह कहते-कहते वह पुनः फूट कर रो उठा।

"लेकिन रोने या फाँसी लगाने से कोई लाभ नहीं। कही हुई बात और बीता हुआ समय जिस प्रकार वापस नहीं आता ठीक उसी प्रकार किया हुआ कार्य भी वापिस नहीं आता। तुम अब भूल जाओ कि तुमने कोई पाप किया है। अपने जीवन के सामने केवल एक ही उद्देश्य रखो कि तुम्हें कोई महान कार्य करना है। तुम मेरे दुखदर्द की बात बिल्कुल न सोचो। मेरी ही भाँति तुम्हारे पास भी दुखदर्द है। इन दुखों से घबरा कर साहस छोड़ने वाले इन्सान, इन्सान नहीं होते। जिन्दगी की महानता भी इन दुखों के ही कारण है। जब तक इस पृथ्वी पर दुख और दर्द हैं तभी तक यहाँ पर इन्सानियत जीवित है। यदि दुख न हो तो सुखों का क्या महत्व रहे। यदि आकाश में काली रात्रि का अंधकार न छाये तो चाँद सितारों और सूरज को भी कौन पूछे। शिमली देवी के निकट रहकर भी मैं उनके

गुणों तथा उनकी महानता से अधिक परिचय न कर सका था किन्तु आज उनसे दूर होकर भी उनके पास हूँ। शीतल वायु का तो वास्तविक आनन्द तभी मिलता है जब गर्मी की प्रचंडता से मन ऊब जाता है। फिर दुखों की उपेक्षा क्यों की जाये ? मैं चाहता हूँ कल तक तुम जिस कार्य के लिए जान लेने को तत्पर थे आज तुम उसी कार्य के लिए जान देने को तत्पर हो। अब तुम अपने अन्दर एक महान इन्सानियत को जगाओ। तुम्हारे सामने अब एक ही रास्ता है या तुम अपने सुख के लिए दुनिया को भुला दो या दुनिया के सुख के लिए अपने को।"

रमेश के इन शब्दों से बड़ी-बड़ी मूछों वाले के शरीर में बिजली सी दौड़ गयी। वह मानवता की सेवा के लिए कटिबद्ध हो गया।

"बाबू जी मैं वादा करता हूँ कि वेश्यावृत्ति को समाज से मिटाकर ही दम लूंगा।"

परिवर्त्तन बाबू उसमें नव साहस के संचार के लिए कहते रहे—"तुम आने वाली आँधी से मत डरो। दीपक कभी अँधकार की भयंकरता देख कर अपना साहस नहीं तोड़ते। आने वाली आँधी से भी डटकर सामना करते हैं।"

ऐसा लग रहा था जैसे वह चलचित्र का ही कोई संवाद बोल गये हों। वह इतना कहते-कहते मौन हो गये। वह सोचने लगे कि दीपक तले तो अँधेरा ही है। वह तो संसार को कर्त्तव्य का बोध कराते हैं कि किन्तु स्वयं होटलों, रेस्ट्राँओं, स्टूडियों और अन्य रमणीक तथा सुन्दर स्थानों में विचरण करते हैं। वह सोचते रहे फिल्म उद्योग में भले कोई आदर्शों की पीठ पर अपने जीवन का बोझ ढोये, किन्तु 'काजल की कोठरी में जाइकै एक रेख लागि है पै लागि है।' उनके मस्तिष्क में आया कि वह लाख प्रयत्न करने पर भी करुणालय की स्थापना न कर सके जिसे उन्होंने अपने जीवन एक महान लक्ष्य बनाया था। दूसरे कोरे-कोरे आदर्श वाद को जनता चाहती नहीं। वह क्या करे और क्या न करे के अन्तर्द्वन्द में आ गये थे कि ठीक इसी समय विकल आ गया।

"विकल, मैं बड़ी देर से यह सोच रहा हूँ कि फिल्म व्यवसाय को कब तथा किस प्रकार त्याग दूँ। मैं जानता हूँ कि इसमें रह कर भी मैं जनता तथा समाज की सेवा अपनी भावनाओं के अनुसार न कर सकूंगा। क्या तुम इस कार्य को सँभाल लोगे ?" परिवर्त्तन बाबू ने कहा।

"ठीक तुम्हारी ही भांति मैं भी सोचता हूँ कि मैं हल्के-फुल्के गीत लिखकर साहित्य की कुछ भी सेवा न कर सकूंगा। मैं तो अपनी लेखनी को उन दीन और दुखियों की सेवा में लगाना चाहता हूं जिनके दुखों को कोई भी वाणी देने वाला नहीं। मैं अब प्रेम और विरह के गीत ही न गाकर तन, मन, धन तीनों से उनकी सेवा करना चाहता हूँ।" विकल ने कहा—

"लेकिन तुम्हारे परिवार का बोझ कौन सम्हालेगा ?"

"अब मुझे इसकी चिन्ता नही है। सुषमा को मैंने एक स्थान पर टाइपिस्ट के कार्य के लिए लगा दिया है। वह आसानी से अपना तथा विभाकर का उदर-पोषण कर सकती है। मैं तुम्हारी ही भाँति अपने जीवन को भी उच्च आदर्शों पर ढाल कर ले चलना चाहता हूँ।"

"तुम ठीक कहते हो विकल, किन्तु मेरा विचार है कि तुम इस परिवारिक जीवन से पलायन न करो। इन्सान क्या नहीं कर सकता ? तुम अपने इस प्रकार के जीवन से भी मानव जाति का भला कर सकते हो। प्रत्येक व्यक्ति यदि अन्याय का विरोधी तथा मानवता का प्रेमी अपनी स्थिति में रहकर भी हो जाये तो देश का चित्र ही बदल सकता है।"

"यह सच है रमेश, तो तुम फिर फिल्म उद्योग से अपने आदर्शवाद के लिए पलायन क्यों कर रहे हो। तुम भी तो अपने आदर्शों और विचारों के द्वारा इसमें अभ्युत्थान की शंख ध्वनि फूँक सकते हो। एक कमल जिस प्रकार अपने सद्गुण से सारे तालाब के कीचड़ को ढाँप लेता है, ठीक उसी प्रकार तुम इस फिल्म उद्योग को सद्मार्ग की ओर प्रेरित कर सकते हो।

"लेकिन फिर करुणालय की स्थापना कैसे होगी, यह मेरे समक्ष एक ऐसा प्रश्न है जो कभी-कभी मुझे किंकर्त्तव्य विमूढ़ सा बना देता है।"

"तो क्या तुम्हारा विचार है कि तुम चंदे के बल पर इसकी स्थापना कर लोगे। चंदा तुम्हें कहाँ से मिलेगा। उन्हीं लोगों की जेब से जिनका तुमने सदैव विरोध किया है। क्या ये फाके मस्ती करने वाले, झल्ली वाले, खोमचे वाले और टोकरी वाले तुम्हारे इस कार्य को पूरा कर देंगे। मुझे ऐसा लगता है जैसे कि तुम सचमुच ही रमेश से 'परिवर्त्तन' हो गये हो। मुझे तो ऐसा लगता है जैसे कि तुम सच्चाई तथा ठोस कार्य को छोड़कर भावुकता की लहरों में डूब रहे हो। कर्त्तव्य से विमुख होकर कोरे-कोरे आदर्शवाद की ओर भाग रहे हो। कल्पना के पंख पर चाँद तक जाने की उड़ान भर रहे हो।"

"लेकिन फिर उस दिल्ली के स्कूल का काम कौन देखेगा? प्रेमा अभिनय का कार्य करना नहीं चाहती। वह अपनी निर्मित संस्था के लिए ही अपने को उत्सर्ग करने को तत्पर है।

"तो तुम एक प्रेम के लिए अपने कर्त्तव्य को ठोकर लगा रहे हो। मैं जानता हूँ तुम्हारे हृदय में प्रेम गहरी नींद सोकर मादक अँगड़ाई लेता हुआ जागा है लेकिन तुमने सदैव कर्त्तव्य को प्रेमा से महान समझा है। अगर प्रेमा इस कार्य के लिए उद्यत है तो उसे जाने दो। तुमने ही तो उसमें कर्त्तव्य की ज्योति जलाई है।"

"किन्तु वह अकेले वहाँ क्या कर सकेगी?"

"इन्सान अकेले क्या नहीं कर सकता? और सुषमा के स्थान पर मैं तथा बड़ी-बड़ी मूंछों वाला।"

"लेकिन विकल तुम्हारा जीवन पतझर के समान हो जायेगा।"

"तो तुम्हारा जीवन ही कहाँ बसंत की बहार है। हम दोनों एक ही रास्ते के पथिक हैं। मैं जानता हूँ तुम नीरज की भाँति नीर में रह कर भी उससे अलग हो। फिल्म उद्योग के आकर्षणों में रहकर भी उनसे परे हो। तुम्हारे जैसे व्यक्ति ही इसे ऊँचा उठा सकते हैं वरना यह कला भी वेश्यावृत्ति का केन्द्र बन जायेगी, नित्य नयी-नयी छोकरियाँ लाने का इन डाइरेक्टरों का क्या मतलब है। यदि कोई लड़का है तो उसे शायद

उम्रभर डाइरेक्टरों के पास नाक रगड़ने के उपरान्त भी कोई रोल न मिले किन्तु यदि कोई लड़की है तो चाहे उसे बोलना भी न आये, कुछ दिनों में प्रसिद्ध अभिनेत्री और प्रसिद्ध तारिका बन जाये। और फिर इन डाइरेक्टरों के पीछे-पीछे चन्द पैसों और लोलुपता के लिए उनकी जूतियाँ साधती फिरे उनके हाथों अपनी इज्जत बेचती फिरें। आने वाला समाज क्या उसको वेश्यावृत्ति का कार्य न समझेगा। क्या अभिनय-कला का यही मूल्य होगा। तुम्हें कला को वासना की दुर्गन्ध में सड़ते हुए देखकर भी तरस नहीं आता ? क्या इस कार्य में सुधार की आवाज फूँकना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं। तुम एक कवि भी थे। आज एक कलाकार तथा निर्देशक भी, किन्तु क्या कला के उत्थान की भावना तुम्हारे मन में किंचित भी नहीं। परिवर्तन बाबू, कर्त्तव्य को एक क्रूर ठेस न लगाओ। इन्सानियत के घायल और श्रमित पगों में एक चेतना का संचार करो। धरती पर हैवानियत का एक छत्र राज्य है, लेकिन इन्सानियत फिर भी जीवित है। इसे मत भूलिये, तुम जैसे लोगों को ही इसकी रग-रग में शक्ति और साहस का संचार करना है।"